

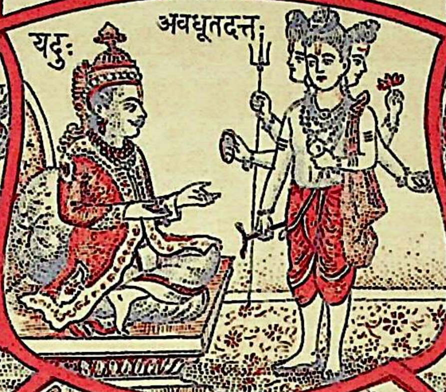


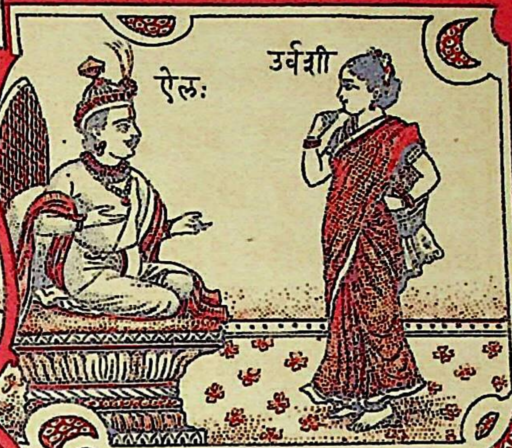
# ॥ श्रीमद्भागवतैकादशस्कंधभाषा ॥

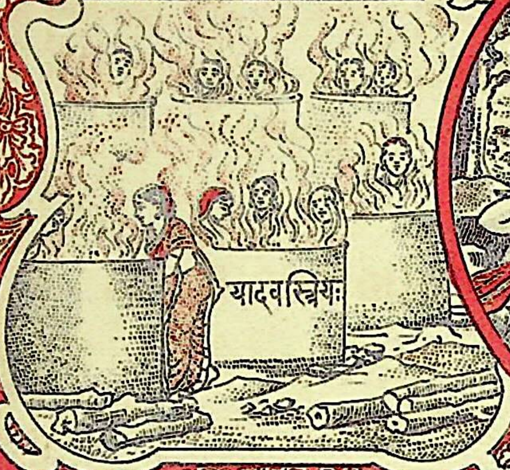

पुस्तकालय,
मुमुक्षु भवन, अस्सी, काशी.

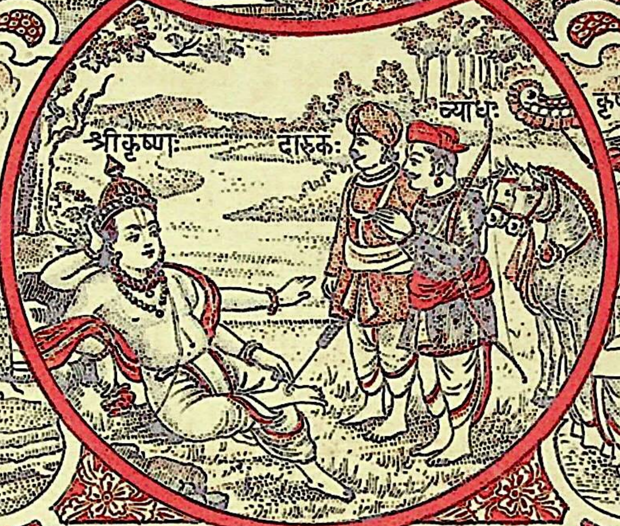
# एकादश स्कंधः


जनकः
नवयोगिनः


यदुः
अवधूतदत्तः


ऐलः
उर्वशी


यादवस्त्रियः


श्रीकृष्णः
दारुकः
व्याधः


कृष्णपरिग्रहः
अर्जुनः

॥ श्री ॥

सर्वेश्वरो विजयतेतराम्.

# ॥ अथ श्रीमद्भागवत भाषा एकादशस्कंधकी प्रस्तावना ॥



श्रीविष्णुभगवान्के अवतारभूत परमाचार्य श्रीवेदव्यासजीनें एक वेदका चार प्रकारमैं विभागकरिके तिन वेदनके वाक्यनकी व्यवस्थाअर्थ ब्रह्मसूत्ररूप उत्तरमीमांसा शास्त्रकूं रचिके वेदविषे अनधिकारी जो स्त्री शूद्र और द्विजबंधु ( द्विजाधम ) आदिक हैं तिनकूं वेदार्थका ज्ञान होवै इस हेतुसैं महाभारतादि इतिहास और अनेक पुराण अरु उदपुराणकूं रचते भये। तिनसैंभी जब असंतोषकूं प्राप्त भये तब नारदके उपदेशतै नारायण ब्रह्मा और नारदकी परंपरासैं प्राप्त सर्वपुराणोत्तम भक्तिवैराग्य और ज्ञानके अनेक प्रसंगों करिके युक्त धर्म अर्थ काम अरु मोक्षके बोधक और शुक परीक्षितके संवादकरिके युक्त श्रीमद्भागवत नामक पुराणकूं रचते भये । तिसके वृक्षके पडकी न्यांई द्वादशस्कंध है । और वृक्षके शाखाकी न्यांई तीनसैं पेंहेंतीस ( ३३५ ) अध्याय हैं और वृक्षके पर्णकी न्यांई अष्टादश सहस्र ( १८००० ) श्लोक हैं । तिनके मध्य प्रथमस्कंधमैं प्रसंगसहित शुकागमनरूप उपोद्घात है १ और द्वितीयमैं मनुष्य कृत्यके प्रश्नका उत्तर और भागवतके संप्रदायसहित पुराणका लक्षण है २ ऐसैं ग्रंथका भूमिकारूप दो स्कंध कहिके पिछले दशस्कंधनमैं पुराणके उक्त लक्षण योजना किये हैं । तिनविषै तृतीयस्कंधमैं

महत्तत्वादिकनकी स्वरूपसैं और ब्रह्मारूपसैं सृष्टिरूप सर्ग है ३ चतुर्थमैं चराचरभूतनकी उत्पत्तिरूप विसर्ग है ४ पंचममैं उत्पन्न किये वस्तुनकी मर्यादाके पालनसैं भगवत्का उत्कर्षरूप स्थान (स्थिति) है ५ षष्ठंस्कंधमैं स्वभक्तनविषै भगवत्का अनुग्रहरूप पोषण है ६ सप्तममैं हरिआराधनादि शुभकर्मकी वासनारूप युक्ति है ७ अष्टममैं सत्पुरुषोंके धर्मरूप (१४) मन्वंतर हैं ८ नवममैं ईश्वरावतारचरित्र और ताके भक्तनकी सत्कथारूप ईशानुकथा है ९ दशममैं दुष्टराजनका संहाररूप निरोध (प्रलय) है १० एकादशममैं अविद्याकरिकैं आरोपित कर्ताभाव आदिककूं छांडिके ब्रह्मस्वरूपसैं स्थितिरूप मुक्ति है ११ और द्वादशममैं परब्रह्म परमात्मा इननामोंसैं प्रसिद्ध उत्पत्ति अरु प्रलयका आधाररूप आश्रय कहा है १२ इस रीतीसैं तृतीय आदिक दशस्कंधनमें पुराणके दशलक्षणोंकी योजना है ॥

जैसै द्वादश सूर्यनमैं विष्णुनामक श्रेष्ठ है । तैसै तिन द्वादशस्कंधनमैंभी साधनसहित मुक्तिका प्रतिपादक होनेसे एकादशस्कंध श्रेष्ठ है ॥ यामैं एकतीस (३१) अध्याय हैं । तिनमैं पाहिले अध्यायविषे मुसलाख्यान है १ और द्वितीयसैं लेके पंचम अध्यायपर्यंत २–५ वसुदेव, नारद अरु जनक, नव योगेश्वरनका संवाद है ५ और षष्ठाध्याय विषे द्वारिकामैं ब्रह्मादिदेवनकरि कृष्णकी स्तुति और कृष्णके प्रति उद्धवका प्रश्न है ६ और सप्तमसैं नवमपर्यंत ७–९ दत्तयदुका संवाद है और ७–२९ पर्यंत, श्रीकृष्णउद्धवका संवाद है ७–२९ और पिछले दो अध्ययनविषै यदुकुलसंहारपूर्वक कृष्णका स्वधामके प्रति गमन कहा है ३०–३१ ॥ इसके प्रत्येक अध्यायका अर्थरूप विषय, नीचे धरि अनुक्रमणिकाविषै स्पष्ट दिखाया है । यह ग्रंथ संस्कृतवाणीरूप होनेतैं सर्व जननकूं सुलभ नहीं था । यह जानिके महात्मा श्रीचरण-

दासजीके शिष्यसंप्रदायमैं प्रगट भये श्रीसंतदासजीके शिष्य और ज्ञान भक्ति वैराग्यकरिके संपन्न साधु श्री चतुरदासजी भये हैं तिनोनैं सरल श्रेष्ठ और अनुभवयुक्त दोहा चौपाईबद्ध यहभाषा एकादशस्कंध किया है ॥ यह ग्रंथ बहुत प्राचीन है, याको ( २६५ ) वर्ष भये । याके प्रत्येक अध्यायके आरंभमें प्रत्येक अर्थका दोहा । श्रीधरस्वामी उक्त श्लोकनके अनुसार सलेमाबाद निवासी पंडितश्रीधरने रक्खे हैं ॥ सो परंपरासैं छपती आई है । अब टाइपके अक्षरोंमैं याकी प्रथमावृत्ति अजमेर निवासी पण्डित रामलालात्मज हरिशंकरशर्मासे पदच्छेद व शुद्ध करवायके हमनें छपाई है ॥ अब ती द्वितीया वृत्तिमें पं. मनोहरलाल सुकुलसे अत्यंत शुद्धकरवायकर सुंदर चिकने कागजपर छापकर प्रसिद्ध किया है याके आरंभमैं एक एक अध्यायके अर्थके वर्णनरूप अनुक्रमणिका रक्खी है ॥ सो देखनेमेसैं अभ्यासीजननकूं इच्छित अध्यायके अर्थका जल्दीही लाभ होवैगा ॥ या ग्रंथका अर्थरूपविषय याके पीछे धरि अनुक्रमणिकामैं स्पष्ट जनाया है ॥ यह ग्रंथ ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखद्वारा पढनेसे भक्तिसहित ब्रह्मविद्याका जनक होवैगा । यातैं उक्त गुरुके मुखसैं पढना चाहिये यह विशेष विज्ञप्ति है ।

आपका—**हरिप्रसाद भगीरथजी,**
**कालकादेवीरोड—रामवाडी.**
**मुम्बई.**

॥ श्रीकृष्णपरमात्मने नमः ॥

# अथ श्रीमद्भागवतभाषा एकादशस्कंधकी अनुक्रमणिका ॥

## एकतीस अध्यायनमें मुक्तिका कथन।

इति श्रीमद्भागवतगत भाषा एकादशस्कंधकी अनुक्रमणिका समाप्ता ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीगोपालकृष्णायनमः ॥ अथश्रीएकादशस्कंधभाषालिख्यते ॥ दोहा ॥ हरिगुरुभक्तप्रसादतैं, श्रीधरमिलतविवेक ॥ एकादशइकतीसमैं, अधकएकतैं एक ॥ १ ॥ वेदव्यासकृतमूलपैं, चतुर्दासकृतसार ॥ सुगमजानसबनरगहैं, लहैं सुतत्त्वविचार ॥ २ ॥ श्रीधरपहलेध्यायमैं, चतुर्दासकहिमान ॥ विप्रशापकेव्याजतैं; मूसलकौआख्यान ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ संतदास सतगुरुके रचना ॥ तिनकौं गहौं सुदृढ करि शरना ॥ जातैं उपजै ज्ञान बिचारा ॥ छूटै भर्म कर्म व्यवहारा ॥ १ ॥ बहुरों जगत जन्म नहि आउं ॥ तिनकौं निजानंदपद पाउं ॥ तिनकी आज्ञा हिरदै धरौं ॥ लोकहितारथ भाषा करौं ॥ २ ॥ श्रीभगवान विरंचिहिं भाष्यो ॥ सो विरंचि नारदसौं आष्यो ॥ सो नारद व्यास हि समुझायौ ॥ व्यास भासकरि शुक हि पढायौ ॥ ३ ॥ सो शुक कह्यौ परीक्षित आगे ॥ छूट्यौ द्वैत सुपन ज्यौं जागे ॥ सोइ सूत अजहुं विस्तरें ॥ सहस्र अठयासी ऋषि मन धरें ॥ ४ ॥ श्रीभगवान आप यह भाष्यौ ॥ तातें नाम भागवत राष्यौ ॥ आप मिलनकौ पंथ बतायौ ॥ या मारग बहुतनि हरि पायौ ॥ ५ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ व्यासदेव जो भागवत ॥ भाष्यो द्वादशस्कंध ॥ तिनमैं एकादश कह्यौ ॥ नैन लहैं ज्यौं अंध ॥ ६ ॥ चौपाई ॥ एकादश इकतीस अध्याय ॥ तिनकौं बहुरों कहूं सुनाय ॥ यदुकुल नाश प्रथम मैं गायौ ॥ बहुत भांति वैराग्य उपायौ ॥ ७ ॥ हरिपुरिपंथ कह्यो पुनचारी ॥ जनकहि जोगेश्वरानि बिचारी ॥ सो नारद वसुदेव हिं कह्यौ ॥ पायौ ज्ञान परम पद लह्यौ ॥ ८ ॥

छठे कृष्ण उधव प्रस्ताव ॥ तेइसकर निज ज्ञान सुनाव ॥ द्वै यादवविनाश विस्तार ॥ ए इकतीस
ज्ञान निजसार ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेव करत आरंभा ॥ श्रोता नृपति अडिग तज अंभा ॥ तब शुकजी
॥ १ ॥ यहाकियो विचार ॥ ज्ञानबिना नाहीं उद्धार ॥ १० ॥ तातें ब्रम्ह ज्ञान समझाऊं ॥ प्रथम हिं दृढ
वैराग्य उपाऊँ ॥ पंषी ऊडे पंष द्वै जैसें ॥ ज्ञान विराग मिले हरि ऐसें ॥ ११ ॥ राजा सुनो जगत
सुख जैसें ॥ जिनसौं लागी भ्रमत नर ऐसें ॥ भए कोटि छप्पन कुलयादव ॥ ज्यौं घनघमडि
चहूं दिशि भादव ॥ १२ ॥ तिनकौं बहुत भांति विस्तारा ॥ गनती करत लहें कोपारा ॥
भवन आपनौ कमला कियौ ॥ नवनिधि जहाँ बसेरा लियौ ॥ १३ ॥ बहुरि सुधर्मा सभा
मँगाई ॥ बैठें जहां न व्यापे काई ॥ तिनकी समता कौंन बताउं ॥ तीन लोकमें कहीं न पाऊं
॥ १४ ॥ तिनकी बात कहत अब ऐसी ॥ पलकमांहि सुपनेंकी जैसी ॥ च्यार घरीमें सब
संघारे ॥ ज्यौं बुदबुदा पवनके मारे ॥ १५ ॥ रामकृष्ण तहँ कौतिकहारा ॥ आपुहिं आप सकल
संहारा ॥ विप्रशापको कीनौ व्याजा ॥ ए सब कृष्णदेवके काजा ॥ १६ ॥ लोकनि कौं
वैराग्य जनायौ ॥ उद्धव या द्वारा समुझयौ ॥ प्रथम भीम अर्जुन द्वै अनी ॥ दुष्ट नृपति अरु
सेना हनी ॥ १७ ॥ या विधि भूकौ भार उतार्‍यो ॥ नाम रूप यशकौं विस्तार्‍यो ॥ जाकौं
गहि पहुंचैं भवपारा ॥ आगें जन जे होंहिं अपारा ॥ १८ ॥ बहुत भांति करि अद्भुतकर्मा ॥
थाप्यो जगत भागवत धर्मा ॥ या विधि सबके काज सँवारे ॥ तब हरिजी वैकुंठ पधारे ॥ १९ ॥
॥ दोहा ॥ ऐसी सुनि अद्भुतकथा, यदुकुलकौं द्विजशाप ॥ प्रश्न करी राजा ॥ १ ॥
तहाँ, लखवै तिनकौं पाप ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ चौपाई ॥ ते तो विप्रभक्त थे

सारे ॥ परमदानि अरु सेवक भारे ॥ विप्रकोप कीनौ क्यौं पूरण ॥ जातें नाश भए सब तूरण ॥ २१ ॥ कौंन निमित्त शापसो कौंना ॥ कहो कृपा करि करुणा भौंना ॥ एकमना यादव ते सारे ॥ आपुहि आप कौंन विधि मारे ॥ २२ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ भूकौ भार हरनेके काजा ॥ भूअवतार लीयो ब्रजराजा ॥ बहुबिध भूको भार उतार्यौ ॥ तब मनमैं गोपाल बिचार्यौ ॥ २३ ॥ ज्यौं लगि हैं जादवकुल सारौ ॥ त्यौं लगि नहिं भूभार उतार्यौ ॥ मम आधीन रहें ए सारें ॥ तातें निजकर बनें न मारें ॥ २४ ॥ दूजो कोई सके न मारी ॥ तातें कीजै यतन बिचारी ॥ ज्यौं बह वांस बढें वनमांही ॥ पवन निमित्त पाई घर साही ॥ २५ ॥ आप आपुमें अग्नि उपावें ॥ तासौं लाग सकल जल जावे ॥ है त्यौं इहां पवन द्विज शाप ॥ क्रोध अग्नि तहां आपहि आप ॥ २६ ॥ करि विस्तार होइ संघारा ॥ यह ठहरायो कृष्ण विचारा ॥ आए सकल ऋषीस्वरभवना ॥ निकट क्षेत्र करवायो गवना ॥ २७ ॥ कणव अंगिरा विश्वामित्र ॥ दुरवासा भृगु अत्रि अगस्त ॥ कश्यप वामदेव अरु नारद ॥ और बहुत ऋषी बहु विसारद ॥ २८ ॥ तहां सवें मुनि सुखसों बैठे ॥ जदुकुमार तहां छलकरी पेठे ॥ सांबहि बनिता भेष बनायो ॥ वस्त्रादिकनि उदर अधिकायो ॥ २९ ॥ अति बिनतीसौं चरणनि लागे ॥ पूछे प्रश्न खरे तिन आगे ॥ यह बनिना पूछे द्विजराजा ॥ सनमुष होत लगै अतिलाजा ॥ ३० ॥ निकट प्रसव आयो हें याकौ ॥ करौ विचार आपमें ताकौ ॥ तुम त्रिकालदरसी सब जानौं ॥ कहा जनहि सो हमहिं बषांनो ॥ ३१ ॥ तब करी क्रोध वचन ते भनै ॥ कुलनासन मुसल ए जनै ॥ जातें तुम बहमदसों माते ॥ दुष्टबुद्धि होवो सव जातें

॥ ३२ ॥ बैंन सुनत अति भय मन आयौ ॥ तबही तहां उदर छटिकायौ ॥ देष्यो तहां लोहको
मुसला ॥ तब तिन जान्यो नाहीं कुसला ॥ ३३ ॥ ते सब बहुत भांति पिछताये ॥ ले मूसल
॥ २ ॥ राजापें आये ॥ उग्रसेन सों बोले बैना ॥ अतिमलीन नहीं जोरे नैना ॥ ३४ ॥ सुन्यो श्राप
अरु मूसल देष्यौ ॥ जीवन सबनि गयो करि लेष्यौ ॥ मूसल रेत चूरण करवायो ॥ कृष्ण न
पूछ्यो समुद्र बहायो ॥ ३५ ॥ तातें रेत रह्यो अतितुच्छा ॥ ताकौं निगल गयो
एक मच्छा ॥ ते चुरण लहरिनके मारे ॥ आए तीर भए तृण सारे ॥ ३६ ॥ धीवर
एक जाल विस्तार्‍यो ॥ औरनिसंग मच्छसों पकर्‍यो ॥ ताके उदर लोहे सोपायौ ॥
व्याध एक सो बान बानयौ ॥ ३७ ॥ हरिजी बात सकल सो जानी ॥ बहुत
भली हिरदेमें मानी ॥ जद्यपि जोग अन्यथा करणें ॥ परि मनमांहि सकल संहरणें ॥ २८ ॥
यहि विधि सकल आप मन भाई ॥ ताकौ फेरी सकै क्यूं काई ॥ निश्चै ऐसी थापी व्यापू
यदुकुल षोऊं द्विजके शापू ॥ ३९ ॥ ॥ दोहा ॥ यह वैराग्य निरूपयो, ज्ञानकाज
शुकदेव ॥ ज्ञान कहों अब ज्यों लह्यों, नारद सो वसुदेव ॥ ४० ॥ इतिश्रीभा-
गवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे अष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांयदुकुलश्रापनिरू
पणंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥ दूजे श्रीवसुदेवजी, पूछ्यो नारद पास ॥ नव योगेश्वर जनकप्रति, ॥ २ ॥
कीनौ ज्ञान प्रकास ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ चौपाई ॥ द्वारावती आप जहा पालक ॥

तहां नहीं दक्ष श्राप कौ तालक ॥ नारद तहां निरंतर आवै ॥ कृष्णदेवके दरसन पावै ॥ १ ॥
जीवनमुक्त भजे नित जाकौं ॥ बंध्यौ जीव तजे क्यौं ताकौं ॥ जाकौं सकल लोकमें काल ॥
जहां तहां निसिदिन बिहाल ॥ २ ॥ मानवतन इंद्रियनिसौं राजा ॥ इतनि हरि सेवाके सजा ॥
वंछे जांही ब्रह्मसुरराजा ॥ कृष्णदेवसेवाके कजा ॥ ३ ॥ ऐसी देह भाग्यतें पावें ॥ हरिकी
सेवा क्यौं छटिकावे ॥ पलमें काटे कालके पासा ॥ हरिकों पावें हरिकिदासा ॥ ४ ॥ एकवार वसु
देवके भवना ॥ नारद कियो कृपा करी गमना ॥ तिन बहुविध पूजा विस्तरी ॥ ता पीछें तिन अस्तुति
करी ॥ ५ ॥ वसुदेव उवाच ॥ हे प्रभुजी तुमरो आगमना ॥ सब देहिनकों सुषकौ भवना ॥
उपमा तुमही कौंनकी दीजे ॥ जिनकें दरस सकल भय छीजें ॥ ६ ॥ और देव देवें सुखदुखकौ ॥
तुमसें साधु प्रगट परसुखकौं ॥ जिनके हृदय विराजे रामा ॥ तिनतें होइ कौंन नहीं कामा ॥ ७ ॥
ऐसे फलदाइक सबदेवा ॥ ते तो लहें जेतिकरें सेवा ॥ ज्यौं कर ले दरपनकों कोई ॥ आप
करें आभासे सोई ॥ ८ ॥ तुमसे साधु सदा सुखदाई ॥ जिनकी महिमा कही न जाई ॥ जद्यपि
दरसमें भयो कृतारथ ॥ पूछों देव तथापि हितारथ ॥ ९ ॥ जो भागवत धर्मसुनि जीवा ॥ जनम
मरण तजि पावे पीवा ॥ जिन आचर्णानि तुमकौं देवा ॥ हरि प्रसन्न सो भाषौ भेवा ॥१०॥ पूर्व जनम
सेवा में करी ॥ माया मोह्यो समुझ न परी ॥ तब में हरि पुत्रकरी वर्‍यौ ॥ तांहिहु तें नहीं उद्ध
र्‍यौ ॥ ११ ॥ तातें अब में तुमरी सरना ॥ सो कछू करों मिटे ज्यौं मरना ॥ कहांलों कहों जग
तके दुषा ॥ जामें सुपनमांही हुं नहीं सूषा ॥ १२ ॥ जहां जहां जाइ तहां तहां काल ॥ हरिबिन
जीव सदा बिहाल ॥ एसें वचन सुनें जब नारद ॥ तब ते बोले परम विशारद ॥ १३ ॥

॥ दोहा ॥ परम बचन वसुदेवके, सुनिकैं भयो आनंद ॥ भागवत धर्म प्रका
शियो, बोले पूरनकंद ॥ १४ ॥ नारदउवाच ॥ चौपाई ॥ धन वसुदेव धन्य तुम
॥ ३ ॥ बानी ॥ जाकरी पूछें सारंगपानी ॥ कोई होइ सकलजगघातक ॥ विष्णुधरमतें रहे न पातक
॥ १५ ॥ श्रवण कीरतन आदरध्याना ॥ अनुमोदनउ करें सयाना ॥ सो पुनीत होवें ततकाला ॥
बहुरी परें नहि जमके जाला ॥ १६ ॥ तुम यह कियो बडे उपकारा ॥ मोहिं सुमरायो सिरजन
हारा ॥ जाको श्रवण कीरतन एसौ ॥ अंधकारकौं सूरज जैसौ ॥ १७ ॥ तुमसौं कहों कथा इति
हासा ॥ जातें छूटे भवके पासा ॥ ऋषभदेव सुत नवयोगेसा ॥ तिनतें सुनीयो जनक नरेसा
॥ १८ ॥ सुनिके ब्रह्मपरायन भयो ॥ जन्म मरन संसार सब गयो ॥ अब उतपती कहत हौं
तिनकी ॥ पूरण प्रीत रामसौं जिनकी ॥ १९ ॥ स्वायंभुमनु नृपती सिरताजा ॥ ताकौं तनय
प्रियव्रतराजा ॥ ताकौं आग्नीध्र सुत भयौ ॥ नाभि जनम ताहीतें लयो ॥ २० ॥ ताके ऋशभदेव
अवतारा ॥ जिन प्रगटायो ब्रह्मबिचारा ॥ ताके पुत्र एक शत भए ॥ सकल वेदके पारहिं गए
॥ २१ ॥ तिनमें बडे भरतसें नामा ॥ जाके हृदय बसे नित रामा ॥ जातें भरतखंड यह कह्यो ॥ तातें
अजनाभ नामतें लह्यो ॥ २२ ॥ प्रथम बोतहि भोगे भोगा ॥ समझ त्याग पुनि लीयो जोंगा ॥ मन
क्रमवचन करी हरिभक्ति ॥ तीजे जनम लही तिन मुक्ति ॥ २३ ॥ तिनमें नव नव षंड नरेसा ॥
एक अरु असी करम उपदेसा ॥ नव ते महाभाग अधिकारी ॥ सब तजि सेवें चरण मुरारी ॥
॥२४॥ तजि अनर्थ अर्थ विस्तारें ॥ या विधि जीव बहुत निस्तारें ॥ देह अतीत दिगंबर भेषा ॥ ॥ ३ ॥
सदा हृदयमें एक अलेषा ॥२५॥ कवि हरि अंतरिक्ष पिप्पलायन ॥ आविर्होत्र प्रबुद्ध परायन ॥

द्रुमिल चमस कर भाजन नामा ॥ इन नवनिको ब्रह्ममें धामा ॥ २६ ॥ आपहिं आदि संसार पसारा ॥ सबकौं जाने सिरजनहारा ॥ द्वैतभावको कीनों षंडा ॥ याविधि विचरे सकलब्रह्मंडा ॥ २७ ॥ सुर अरु साध्य सिद्ध गंधर्वा ॥ किन्नर जक्ष नाग नर सर्वा ॥ सकस लोकमें इच्छाचारी ॥ आडरहित सबमें अधिकारी ॥ २८ ॥ निमिष नाम जनकके सत्रा ॥ एकवार तिन कीनी यात्रा ॥ रविसी सोभित जिनकी देहा ॥ आवत देषें नृपति विदेहा ॥ २९ ॥ राजा अग्नि विप्र उठि धाए ॥ आगें व्हे लेवेकों आए ॥ क्रम क्रम आना धरें सिंहासन ॥ क्रमहिं क्रमतें बेठे आसन ॥ ३० ॥ तबहि ताहि क्रम पूजा कीनी ॥ करि दंडोत प्रदक्षिणा दीनी ॥ श्रक आभरण वस्त्र बहुरंगा ॥ तो सब सोभे तिनके अंगा ॥ ३१ ॥ ज्ञान विचार ब्रह्ममय एसें ॥ ब्रह्मपुत्र सनकादिक जेसें ॥ तब कर जोरि भयो नृप ठाढो ॥ बोल्यो वचन प्रेम अतिबाढो ॥ ३२ ॥ **दोहा ॥ तब नृपकों आनंद बढ्यो, कछु न रही संभाल ॥ प्रेम मगन ह्वै बोलियो,बानी परम रसाल ॥३३॥ विदेह उवाच** ॥ चौपाई ॥ ॥ तुम पार्षद परम हरिजीके ॥ मैं जाने सब इनमें नीकै ॥ जीवनिके उद्धरवे कारज ॥ सकल लोकमें विचरो आरज ॥३४॥ धनमें धन मेरी मेरो अवतारा ॥ जाते पायो दरस तुमारा ॥ नाना योनि जीव यह पावें ॥ मानुष तनसों कबहुक आवें ॥ ३५ ॥ या विधि नरदेह बहु गेहें ॥ दुरलभ साधु संग नव लेहें ॥ जिनकें संग मिटे भवबंधा ॥ नैन अनंत लहें ज्यौं अंधा ॥ ३६ ॥ प्राणनाथ हरि हृदे विराजें ॥ छूटे कर्म

भरम भय भाजैं ॥ आधोक्षण होवें सतसंगा ॥ सोइ करे जगतभयभंगा ॥ ३७ ॥ तातें मम संदेह मिटावो ॥ परम क्षेम सो मोहि सुनावो ॥ भगवतधर्म कहो विस्तारि ॥ जो में हों सुनबे अधिकारि ॥ ३८ ॥ जिनतें मिटें जगतभय भारी ॥ बहुरि आपकों देत मुरारी ॥ ए सुनि बचन सबनि सुष पाए ॥ तब हीं मान दे बैन सुनाए ॥ ३९ ॥ दोहा ॥ ॥ नृपके मन आनंद भयो, भाग्यो भरम अंदेस ॥ तब राजाको प्रश्न करि, बोल्यो कवि जोगेस ॥ ४० ॥ ॥ कविरुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा प्रश्न कऱ्यो तुम एसो ॥ बडभागी पूछत हें जेसो ॥ निरभय पद एक हें देवा ॥ हरिके चरन कमलकी सेवा ॥ ४१ ॥ ताकौं छोडि करें नर जोई ॥ दुखको मूल होत हें सोइ ॥ जाई जहां तहां दुख-भारी ॥ काल पास कहुं टरें न टारी ॥ ४२ ॥ तातें कहों भागवत धर्मा ॥ मिलें राम छूटें भवभर्मा ॥ श्रीमुख श्रीभगवान सुनायो ॥ आप मिलनेको पंथ बतायो ॥ ४३ ॥ मूरखहु जे होवें कोई ॥ इन पंथन हरिपावे सोई ॥ श्रम नांहि होइ विलंब न लागें ॥ भर्म निसा सुतो ज्यौं जागें ॥ ४४ ॥ आंखि मूंदिउ ध्यावें कोई ॥ या हरिपंथ न कछु भय होई ॥ हरि मिलनको मारग एहा ॥ हरिभजि मुक्त होइ यह देहा ॥ ४५ ॥ हरिकी भक्ति सबनितें न्यारी ॥ कोटि विघनतें टरै न टारी ॥ अजर नाम है भक्ति पियारि ॥ तापैं पार होई नर नारि ॥ ४६ ॥ हरि मिलनेंको मारग कहौं ॥ तेरे उरकौ संसा दहौं ॥ मन क्रम बचन बुद्धि अरु चित्ता ॥ होइ सूभावहुतें जो नित्ता ॥ ४७ ॥ सौ सब हरि ही समरपन करैं ॥ यों भागवतधर्मनि विस्तरैं ॥ जब यह जीव हरि हि वीसऱ्यौ ॥ तब हरिकी माया आवऱ्यौ ॥ ४८ ॥ तब आपनो स्वरूप भुलायौ ॥ आप मानि तन मे मन

लायौ ॥ द्वैतभाव तब उपजे मनमें ॥ ताहि तें यह मरी मरी जनमें ॥ ४९ ॥ तातें बुध सेवे
हरिचरना ॥ जातें मिटें जनम अरु मरना ॥ सोधि लेइ उत्तम गुरुदेवा ॥ हरिसों जानि करै
नित सेवा ॥ ५० ॥ सो ज्यौं ज्यौं आचरण बतावैं ॥ त्यौं त्यौं हरिसौं हेत लगावै ॥ कपट न
भजे तजे सब कामा ॥ छूटें जगत मिलें तब रामा ॥५१॥ द्वैत कछु है ये नहि राजा ॥ आभास्यो
सो मनको काजा ॥ जेसें मृषा मनोरथ सुपना ॥ मनहीं करितें दोनों उपना ॥ ५२ ॥ हे कछु
नाहीं परिहे सोहें ॥ ताके संग लागि सब मोहें ॥ तो संकल्प विकल्प न कीजे ॥ मन दृढ राखि
रामरस पीजे ॥ ५३ ॥ हरिके जनम कर्म गुण नामा ॥ सुने कहें सुमरें सब जामा ॥ तजे लाज
होवे निहसंगा ॥ मगन रहे नित हरिके रंगा ॥ ५४ ॥ ऐसें भजत प्रेम अधिकावें ॥ सब तन
रोमाचित व्हें आवें ॥ गद गद शब्द अटपट बेंना ॥ द्रवें चित्त जल बरषें नेना ॥ ५५ ॥ रोवें
हसें उंचें सुर गावें ॥ कबहुं मौन गही रहिजावें ॥ लोक बेद कुल लाज न जांने ॥ ज्यौं उन
मत्त विवस यौं ठाने ॥५६॥ दसदिसि सरित सिंधु नग नागा ॥ रवि शशि तारा हंसरु कागा ॥
क्षिति जल पावक पवन अकाशा ॥ जो कछु देषे हरिके दासा ॥ ५७ ॥ हरिकौ रूप
सकलकौं जानै ॥ जहां तहां पर नाम हिं ठांनै ॥ कबहूं भूलन भासै आना ॥ भयो अनन्य
भजें भगवाना ॥ ५८ ॥ ज्यौं ज्यौं बढें कृष्ण अनुरागा ॥ त्यौं त्यौं ओर सकलको त्यागा ॥
ज्यौं ज्यौं अन्नभोजन प्रतिग्रासा ॥ तोष तोष अरु भूषविनासा ॥ ५९ ॥ या विधि करते साधन
भक्ति ॥ हरिजीसूं बाढें अनुरक्ति ॥ तब कछु और भूलि नहीं भासें ॥ तब हिरदेमें ज्ञान प्र-
२ कासें ॥६०॥ ब्रह्म एक दसहूं दिशि देषें ॥ द्वैतभाव कर कदें न लेषें ॥ एसें अंग भागवतमाहीं ॥

 सोहरि में हैं जगमें नाहीं ॥ ६१ ॥ दोहा ॥ ए सुनि कविजीके वचन, कीनो प्रश्न 
विदेह ॥ अब भाषो भागवतके, लच्छन करुनागेह ॥६२॥ विदेहउवाच ॥
 ॥ चौपाई ॥ प्रभुजी कहो भागवत लच्छन ॥ जिन बस होवें राम विलच्छन ॥ कोन धर्म हिरदें
दृढ राषें ॥ क्यौं आचरें कोंन बिधि भाषें ॥ ६३ ॥ कोंन सुभाव निरंतर तिनकें ॥ द्वैतभाव नाहीं
उर जिनके ॥ बोले हरि जोगेश्वर दूजे ॥ नृपके बचन बहुत तिन पूजें ॥ ६४ ॥ हरिरुवाच ॥
॥ चौपाई ॥ स्थावर जंगम सूक्षम थूला ॥ एक प्रकृति सकलको मूला ॥ सो इक आतम के
आधारा ॥ सो आतम अंस निराकारा ॥ ६५ ॥ हरिजीतें उपजे ए दोई ॥ अंत लीन हरि
हीमें होई ॥ तातें अबहू हरिको जाने ॥ द्वैतभाव कबहूं नहीं आने ॥ ६६ ॥ ज्यौं सागर
बुदबुद तरंगा ॥ यौं सब जगत जगतपतिसंगा ॥ याबिध जांनी भयो जो धीरा ॥ सो हरि जन
उत्तम हैं बीरा ॥ ६७ ॥ जाकौं हरिसौं निहचल प्रेमा ॥ अरु हरिजनसंगति नित नेमा ॥
सब जीवनिपरि करुणा आनें ॥ सब उद्धरें हृदें यो जानें ॥ ६८ ॥ जो कोउ तापरि दोषहीं
ठांनें ॥ कहां तजेके ज्यौं त्यौं छांनें ॥ निसदिन रहें रामरंगराता ॥ सो हरिजन मध्यमही ताता
॥ ६९ ॥ जो मूरतिमें हरिकों जांने ॥ मन क्रमबचन आन नहि आंने ॥ ताकौं पूजे हित चित
लाई ॥ कछू न मागें सहज सुभाई ॥७०॥ पें हरि जन न भजे हरि जांनी ॥ सतगुरुबिना नाहि
पहिचांनी ॥ सर्वातम हरिकों नहि जांनें ॥ सो प्रकृत जन साधु बषांने ॥ ७१ ॥ बहुरि कहूं
उत्तम हरिभक्ती ॥ ताहि पुरुषहु जे आसक्ती ॥ दरसपरसतें कारज सारें ॥ ते हरिजन भवसागर 
तारें ॥ ७२ ॥ कृष्ण बसे जाके मनमाहीं ॥ और कछु सत जाने नाहीं ॥ जो क

छु कहें सुने अरु देखें ॥ इंद्रियकृत माया सब लेखें ॥ ७३ ॥ सो हरिजन उत्तम नरदेवा ॥ तातें मिलें निरंजन भेवा ॥ जो जन ब्रह्मविचारहि पायौ ॥ आप समझि सुखमांही समायौ ॥७४॥ जनम मरन देहको जानें ॥ क्षुधा पिपासा प्राणहि मानें ॥ तृष्णा बुधि रु भय सो मनको ॥ यह लच्छन उत्तम हरिजनको ॥ ७५ ॥ कर्मवासना अरु सब कामा ॥ तिनकौ भूलि न जाने नामा ॥ वासुदेवमें कीनौ वासा ॥ सो कहिए उत्तम हरिदासा ॥ ७६ ॥ जिनको जाति बरन कुलकर्मा ॥ लोक न वेद नही आसरमां । भूलिदेह अभिमान न आवें ॥ सो उत्तम हरिदास कहावें ॥ ७७ ॥ किसी वस्तुपरी ममता नहीं ॥ अरु तनको अभिमान न माहीं ॥ सब भूतनि परि समता आनें ॥ सो उत्तम हरिदास बखानें ॥ ७८ ॥ अष्टसिद्धि त्रिभुवन सुष आवें ॥ परि सो कबहूं मन न डुलावें ॥ लवनिमिषार्द्ध तजें नहीं चरना ॥ गुणातीत निरभय पदसरना ॥७९॥ जाकौं शिव विरंचि अरु देवा ॥ तन मन लाई करें नित सेवा ॥ तेऊ जाके चरण न पावें ॥ ताकौं जन क्यौं करि छटकावें ॥ ८० ॥ हरिके चर्ण चंद्रचित जाकौं ॥ ईहाताप ऊऐ क्यौं ताकौं ॥ एसो उत्तम हरिजन कहिए ॥ ताके संग परम पद लहिए ॥ ८१ ॥ जाकौं हरिजी निमिष न त्यागें ॥ प्रेमदोरी बांधे क्यौं भागें ॥ सो कहिए उत्तम हरिदासा ॥ कदें न तजिए ताकौ पासा ॥ ८२ ॥

॥ दोहा ॥ त्रिविध भक्त लच्छन कहें, नृपसौं हरि योगेस ॥ तब मायाके जानबे, कीनों प्रश्न नरेस ॥ ८३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा ॥ कबिहरिके वचन सुनि, पूछत हैं नृपराय ॥ अंतरिक्ष प्रबुद्धमुनि,
पिप्पलायन ऋषिराय ॥ १ ॥ आविर्होत्र विचारते, कह्यो तत्त्व निजसार ॥
 श्रीधर तीजैध्यायमें, हैं योगेश्वर च्यार ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ चौपाई ॥ अब करि
कृपा कहो हरिमाया ॥ जिन यह सकल लोक भरमाया ॥ तुमरे मुषसरोजकी बानी ॥ हरिकि
कथा अमृतमय जानी ॥ १ ॥ ताकौं पिवन तृप्ति नहीं मानौं ॥ सदा पीऊं ऐसि मन जांनो ॥ भव
के ताप तपत जो देही ॥ ताकौं परम औषधी एही ॥ २ ॥ ऐसें सुनी नृपतिके बेंना ॥ वक्ताको
उपजावत चैंना ॥ तब बोले बानी अभिरामा ॥ तीजे अंतरिक्षसें नामा ॥ ३ ॥ ॥ अंतरिक्ष
उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ प्रथमहि दूजो हुतो न नामा ॥ आपुहि आप बिराजे रामा ॥
दयासिंधु मनमांहि बिचारा ॥ तब यह कऱ्यो सकल संसारा ॥ ४ ॥ पंचभूत करि रचि या
देहा ॥ बांध्यो तहां आतमा एहा ॥ जातें पहिलें भोगवें भोगा ॥ बहुऱ्यो दुषित होई भवरोगा
॥ ५ ॥ तातें मोसों चित्त लगावें ॥ मेरो निजानंद पदपावें ॥ मगन रहे मेरे आनंदा ॥ बहुरि
नहीं पावें दुखद्वंदा ॥ ६ ॥ याहीतें यह भव विस्ताऱ्यो ॥ भीतर अंस आपनोडाऱ्यौ ॥ इंद्रिय
दस अरु मन विस्तारें ॥ बहु भांतीके विषय सवारें ॥ ७ ॥ सो यह अंस इंद्रियानि मनसौं ॥
भोग भोगवें सब या तनसौं ॥ आप भूलि भोग न मन दीनौं ॥ तब अभिमान देहकौं कीनौं
॥ ८ ॥ भोगनिमित्त कर्म विस्तारें ॥ तिनके फल सुखदुख भए भारें ॥ तिन कर्मनितें जोनि
अनंता ॥ जनम मरणकौं लहें न अंता ॥ ९ ॥ प्रलयअवधिलौं भ्रमें निरंतर ॥ लीन होइ पुन 
माया अंतर ॥ सृष्टिसमय बहुऱ्यो तन पावें ॥ भवसागरको अंत न आवें ॥ १० ॥ भ्रमत भ्रमत

प्रलयअवधी आवें ॥ तब सब नासकाल मन भावें ॥ तब सब बरस न वरषें जलधर ॥ तेज तपें तहा द्वादस दिनकर ॥ ११ ॥ बहुर्‍यौं अग्नि शेषमुखनिसरें ॥ प्रलयपवन मिलि जहँ तहँ पसरें ॥ सारो लोक भस्म तब करे ॥ बहुरों प्रलय मेघ संचरें ॥ १२ ॥ हाथी सूंढधार जल वरषें ॥ यौं अखंड वीते सत वरषें ॥ तब होवें विराटकौ नासा ॥ आतम करे प्रकृतिमे वासा ॥ १३ ॥ जो अभक्त होवें ब्रह्माहू ॥ तोहूं ब्रह्ममांहि नहि जाहूं ॥ जे हरिभक्तसु हरिकौं पावें ॥ ओर प्रकृतिमें सकल समावें ॥१४॥ पवन करे जब गंधही क्षीना ॥ भूमि होइ तब जलमें लीना ॥ त्यौंहीं रसकौं हरें समीरा ॥ तातें मिलें तेजमें नीरा ॥ १५ ॥ अंधकार जब रूपहिं हरे ॥ तेज तबै पवन संचरें ॥ बहुरि स्पर्श हरे आकाशा ॥ पवन करे तब नभमें वासा ॥ १६ ॥ काल कीयो जब शब्दहि क्षीना ॥ तामस अहंकार नभ लीना ॥ तामस अहंकार मन मिलें ॥ राजस अहंकार दोउगलें ॥ १७ ॥ इंद्रिय अरु राजस अहंकारही ॥ सत्व अहं कीनौं अहारहीं ॥ बुधी देव सात्विक अहंकारा ॥ महत्तत्त्व कीनौं संहारा ॥ १८ ॥ महत्तत्त्व सो प्रकृतिहि मिलें ॥ याविधि काल सकलकौं गिलें ॥ ऐसी ही विधि वारंवारा ॥ उतपति प्रलयन अंत न पारा ॥ १९ ॥ यह सब हरिकी माया करें ॥ उपजावें प्रतिपालें हरे ॥ मे तुमकों संक्षेप सुनाई ॥ बहुरी प्रश्न करो मन भाई ॥२०॥ ॥ दोहा ॥ ॥ ऐसी सुनि माया प्रबल, उपज्यो नृपके भीत ॥ तब पूछी आधीन ह्वै. ता तरवेकी रीत ॥२१॥ विदेह उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ ऐसी प्रबल ईशकी माया ॥ जिन यह सकल लोक भरमाया ॥ ताकौं

॥ ७ ॥

तुमसें ज्ञानी तरें ॥ हमसें देही क्यों निस्तरें ॥२२॥ ताकों सुषें तरिए देवा ॥ सो करि कृपा बतावो भेवा ए सुनि वचन नृपतिके सुधा ॥ तब बोले चोथे प्रबुधा ॥२३॥ ॥ प्रबुद्ध उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ सकल मनुष्य सुषनिके काजा ॥ करें कर्म आरंभहिं राजा ॥ तिनतें केवल दुख अधिकारा ॥ अबहूं अरु आगें विस्तारा ॥ २४ ॥ पाए हूं धन दुःख अपारा ॥ निशदिन चिंता कौं अधिकारा ॥ सोऊ अतिदुर्लभनहीं आवें ॥ जो आयो तो थिर न रहावें ॥ २५ ॥ त्यौंहीं ग्रह कुंटब सुतदारा ॥ पलकमांहि ढइ जाइ पसारा ॥ ज्यौं पंथमांही मिलना होई ॥ घरिमाही बिछुरें सब कोई ॥२६॥ जो कछू इहां कर्म कमावें ॥ तिनतें ज्योनि ज्योनि दुष पावें ॥ इनमें कोई नहीं छोडावें ॥ आप आपको सब कोइ जावें ॥ २७॥ याहिविधि नश्वर परलोका ॥ स्थिर न रहें बिधिहुंको ओका ॥ छोटे बडे नीच बहु भांती ॥ तिनके मनकी मिटें न कांती ॥ २८ ॥ मद मत्सर अरु चाहे मांना ॥ काम क्रोध अरु लोभ समाना ॥ तृष्णा बंधे कछु नही जाने ॥ आप आपुमें जुधहिं ठांने ॥२९॥ काल पाई उहांते परें ॥ बहुरि आई इहाँ अवतरें ॥ यों बिचारि बैराग उपावैं ॥ तबहि सांधि गुरुसरणें आवैं ॥ ३० ॥ ब्रह्म जानिता सेवा ठांनै ॥ आलस कपट कामना भांनैं ॥ तातें सीषें भक्तिके अंगा ॥ जिनतें हरिजी तजे न संगा ॥ ३१ ॥ शब्दब्रह्म सकल जो भाषें ॥ परब्रह्म नित हृदये राषें ॥ ऐसें गुरुबिन ज्ञान न पावें ॥ तातें सोधि गुरुपें आवें ॥ ३२ ॥ सबतें मनको संग मिटावें ॥ उलटि साध संगतिसों लावें ॥ सम मित्र उत्तम बहु माने ॥ ब्रह्म जानी सब पूजा ठाने ॥ ३३ ॥ सोच पाठ तप मौन तितिक्षा ॥ बहुविधि लेवें गुरुसौ शिक्षा ॥ ॥ ७ ॥ ब्रह्मचर्य अरु कौमल रहना ॥ हिंसा त्यागि द्वंद्व सब सहना ॥ ३४ ॥ एकाकी आश्रम नहिं

बाँधें ॥ वस्त्र टूकके बलकल साधें ॥ जहां तहां आतमचेतन देषे ॥ परमातमा नियंता लेषें ॥ ३५ ॥ ग्रंथभक्तिकी श्रद्धा करैं ॥ निंदा राग द्वेष परिहरैं ॥ देहवचन अरु मनकौं दंडें ॥ सम दम सत संतोष न छंडें ॥३६॥ जनम कर्म अरु गुण हरिजीकें ॥ सदा सुनेंउधारणजीकें ॥ त्यौंही कहें निरंतर ध्यावें ॥ सोई करें हरिहि जो भावें ॥ ३७ ॥ जप तप जोग जज्ञ व्रत दाना ॥ तन मन धन दारा सुत प्राना ॥ जो कछु सो सब हरिहिं निवेदें ॥ याविधि सकल कर्मकौं छेदें ॥ ३८ ॥ थावर जंगम हरिमय जांनें ॥ परिसेवा संतनकी ठांनें ॥ मिली परसपर हरिगुण गावें ॥ निसदिन कहत सुनत सुख पावें ॥ ३९ ॥ पलपल प्रीति बढें हिय फूलें ॥ गुणनि संभारत तनकौं भूलें ॥ दूजा भाव न कबहूं उपनें ॥ प्रेम मगन जाग्रत अरु सुपनें ॥४०॥ ऐसें प्रेमभक्तिकौं पावें ॥ पलपल तन पुलकित व्हे आवें ॥ कबहुं हरि चितवनतें रोवें ॥ कबहु हसें आनंदित होवें ॥४१॥ कबहुं नाचें कबहूं गावें ॥ लजारहित ज्यौं ज्यौं मन भावें ॥ कबहूं सुमरिसुमरि मिलि जावें ॥ स्वासशब्द बाहर नहीं आवें ॥ ४२ ॥ याविधि लेवें गुरुसों शिष्या ॥ गुरुशिष्यनकी यह परिष्या ॥ ब्रह्मपरायन ता जन करें ॥ माया भूलिन आवें नेरें ॥ ४३ ॥

दोहा ॥ ए सुनि वचन विदेहके, हृदय बढयो आनंद ॥ प्रश्न करी तब ब्रह्मको, ज्यौं छूटें भवफंद ॥ ४४ ॥ विदेह उवाच ॥ ॥ चोपाई ॥ ब्रम्हवेतनमें तुप अधिकारी ॥ तुम हो यह में हृदय विचारी ॥ तातें कहो ब्रह्मको रूपा ॥ जाने जाहि मिटे ग्रहकूपा ॥४५॥ परमातम रु ब्रह्म भगवाना ॥ ए सब एक किधो हें नाना ॥ सबजीवनकौं अति करूनायन ॥ तब बोले पंचमें पिप्पलायन ॥ ४६ ॥ पिप्पलायन उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ सूखम थूल सकल संसारा ॥ जाकी शक्ति सकल पसारा ॥ उत्पत्ति प्रयल करें वह याकौं ॥ काहूंतें जनमनही ताकौं ॥ ४७ ॥ जाग्रत

सुपन सुषोप्ति तुरिया ॥ चहुमें सदा एक रस पुरिया ॥ इंद्रिय देह हृदय अरु प्राना ॥ जातें चैत
न व्हे वरताना ॥ ४८ ॥ जैसें यह जड लोहावरतें ॥ चुंबकसंग बहुत विधिनिरतें ॥ सो भगवान
ब्रह्म पुनि सोई ॥ सो परमातम जांनें कोई ॥ ४९ ॥ मन अरु बुद्धि चित्त अरु प्राना ॥ इंद्रि
य देह शब्द अभिमाना ॥ कोइ तहां पहुंची नही सकें ॥ जात जातहि वैशरी थक्कै ॥ ५० ॥ जै
सें पावक लोह तपायौ ॥ पावकसमान तेज तिन पायो ॥ सबप्रकासें सबकौं जालैं ॥ परि पाव
कपर जोर न चालैं ॥ ५१ ॥ यौं सब इंद्रिय हृदय अचेतन ॥ ताके संगहुतें सब चेतन ॥ और स
कल अर्थनिकौं जांनै ॥ कों न शक्ति जो ताही पछांनै ॥ ५२ ॥ लेले अर्थ बखांने वेदा ॥
परि प्रत्यक्ष न जानें भेंदा ॥ यह नहि यह नहि यह नहि होई ॥ यातें परें सत्य हैं सोई ॥ ५३ ॥
सूषम थूल न जावे बरनीं ॥ गगन पवन पावक जल धरनी ॥ नहिं मन बुद्धि चित्त हंकारा ॥
चिदानंदमय सबके पारा ॥ ५४ ॥ नासो बाल वृद्ध नही जुवा ॥ नासों बिनसें ना सो हुवा ॥
त्रिया पुरुष अरु क्लीब न होई ॥ सुर नर नाग असुर नहीं सोई ॥ ५५ ॥ रक्त पीत अरु स्वेत न हरिता ॥
जाति बरन आश्रमनाहि धरिता ॥ सीत उष्ण चंदनही सूरा ॥ दिवस न रात निकट नही दूरा
॥ ५६ ॥ सुखदुखरहित बसें सबमांही ॥ आपुहि आप लिपें कहूं नाहीं ॥ बंध्यो मावसों आतमअं
सो ॥ सुन्य सरोवर विलसे हंसा ॥५७॥ गगन पवन पावक अरु नीरा ॥ धरनिबंध ए किए शरीरा ॥
पंचवस्तु ए पंचो बंधा ॥ शब्द स्परस रूप रस गंधा ॥ ५८ ॥ इंद्रिय दश अरु तिनके देवा ॥
सातिक राजस तामस भेवा ॥ मन बुद्धि चित महत्तत्व अहंकारा ॥ एकप्रकृतिकौ सकल पसा
रा ॥ ५९ ॥ एक ब्रह्म हैं ताको कारण ॥ विन इच्छा सबकौ विस्तारण ॥ ज्यौं भुवमें बहु घट उप

जावैं ॥ भुवमें रहि भुवमाहि समावैं ॥ ६० ॥ ते सब घट दीसे विधिनाना ॥ परिभुव छोड कछू नहि आना ॥ त्यौं सब जगत आहि मध अंता ॥ ओर न कछू एक भगवंता ॥ ६१ ॥ सो नहिं उपजें बिनसें नाहिं ॥ बालजुवादिक परें न छांही ॥ बढें न घटें चलें नहिं डोलें ॥ रोष न तोष मौन नहीं बोले ॥ ६२ ॥ जहं तहं पूरण परम अनूपा ॥ चिदानंद बिज्ञान सरूपा ॥ देहभेद बहुधा सो सोहें ॥ ज्ञानबिना सारो जग मोहें ॥ ६३ ॥ जेसें पवन एकहीं प्राना ॥ दस इन्द्रिय संग दीसें नाना ॥ उद्भिज स्वेद जरायुज अंडा ॥ चारि खान पूरन ब्रम्हंडा ॥ ६४ ॥ लिंगदेह जा देहहि जावैं ॥ प्राणवायु तहं आनि मिलावैं ॥ शब्द स्परस रूप रस गंधा ॥ मन अहंकार बुद्धि चित्त बंधा ॥ ६५ ॥ लिंगदेह इनही नवकौं हें ॥ इनके मिटें निरंतर सोहें ॥ निद्राबस सुख पति जब आवैं ॥ तब यह लिंगदेह छटिकावैं ॥ ६६ ॥ अहंकार ममता कहुं नाहीं ॥ मन अह बुधि चित सबजांही ॥ तब अद्वैत एक हें सोई ॥ द्वैतभावकौं नाम न कोई ॥ ६७ ॥ मन बुधि चित अहंकार न रहें ॥ जागें प्रथम बात जो कहें ॥ जो करनो तो जेतो कीयौ ॥ आगें पीछे लीनो दीयौ ॥ ६८ ॥ जातें सो हरि जाननहारा ॥ याविधि कीजें ज्ञानविचारा ॥ परिवासना सहितहि रहें ॥ तातें देह फेर करी गहें ॥ ६९ ॥ लिग सरीर सहीत वासना ॥ तांहितें मिटे न भवसासना ॥ तातें हरिचर्णनि चित लावैं ॥ ओर सकल बंधन छटिकावैं ॥ ७० ॥ याविधि सकल चित्तमल नासें ॥ रविसमान तब ब्रम्ह प्रकासें ॥ जो नर प्रथम भक्ति नहिं जानें ॥ तो वह कर्म जोगकौं ठानें ॥ ७१ ॥ कर्मजोगतें उपजें भक्ति ॥ तब हरिचरण बढे आसक्ति ॥
३ तातें होइ ब्रम्हप्रकासा ॥ छूटैं कालजाल भवपासा ॥ ७२ ॥ ॥ दोहा ॥ ए पिप्पलायन बेन

सुनि, कीन प्रश्न मिथलेस ॥ कर्मजोग अब करि कृपा, कहो परम जोगेस
॥ ७३ ॥ ॥ जनकउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ कर्मजोग अब कहो गुसांई ॥
॥ ९ ॥ में आयो तुमरी सरनाई ॥ जाके किए कटें सब कर्मा ॥ उपजें ज्ञान होई निह भर्मा ॥ ७४ ॥
दूजी प्रश्न कहो तुम एहा ॥ याको मेरे अतिसंदेहा ॥ ब्रम्हपुत्र सनकादिक चारी ॥ ब्रह्मपरायन
ब्रह्मविचारी ॥ ७५ ॥ एकवार कृपाकरि आए ॥ पितासमीप दरस में पाए ॥ यह प्रश्न में तिन
सों कीनी ॥ उत्तर न दियो हृदे धरीलीनी ॥ ७६ ॥ नही बोले सो कौनें कारन ॥ यह भाषो
भवसागरतारन ॥ ऐसें वचन नृपति जब भाषें ॥ आविरहोत्र छेठे तब आषें ॥ ७७ ॥ ॥ आवि
र्होत्रउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा सुनहु कर्मगति गहना ॥ तातें जहां तहं बने न कहना ॥
यह ज्यौं हे त्यौं वेद बषांनैं ॥ तातें याहि न कोई जांनैं ॥७८॥ वेद प्रगट करता हरिदेवा ॥ ऋषि
अरु पुरुष लहे को भेवा ॥ लहें बिनु मिटे न मरनां ॥ लहे भेव पावे हरिचरनां ॥ ७९ ॥ जातें
तुमहु हुतें तब बाला ॥ तातें कह्यो न कर्म बिसाला ॥ अबहिं कहों सुनो चित लाई ॥ जानें
जाहि ज्ञान अधिकाई ॥८०॥ कर्मजोग हें तीन प्रकारा ॥ कर्म अकर्म विकर्म पसारा ॥ हरिनिमित्त सो
कहिए कर्मा ॥ हरिबिहीन सो सकल विकर्मा ॥८१॥ सो अकर्म जो दोऊ त्यागें ॥ ज्ञान बिना सुख
इहां न आगें॥कर्म करत छूटें सब कर्मा ॥उपजें ज्ञान मिटें भवभरमा ॥८२॥ कर्म तजनकौं कर्म ग्रहा
वें ॥ तातें बेद न समज्यों आवें ॥ पहिलें स्वर्गादिक फल भाषें ॥ आगें सकल दूरी करि नाषें
॥ ८३ ॥ ज्यौं कोई बालक रोगी होवें ॥ ओषध कटुक नाम सुनि नी रोवें ॥ तांकों लाडू पिता दिखा ॥ ९ ॥
वें ॥ ओषदकाज लोभ उपजावें ॥ ८४ ॥ ओंषदको फल लाडू नाहीं ॥ ओषद पिये रोग सब

जाहीं ॥ त्यौं स्वर्गादिक लोभ दिखावैं ॥ कर्मनासकों कर्म करावैं ॥ ८५ ॥ स्वर्गादिक फल पहु
पित बानी ॥ तोरे पहुप होते फलहानी ॥ तातें करें बेदके कर्मा ॥ हरिके हेत बडो यह धर्मा॥८६॥
और कछु फल भूलन जानै ॥ हरिके हेत कर्म सब ठांनैं ॥ में करता यों कदे न भाषैं ॥ जों कछु सो
हरिकों करी राषैं ॥८७॥ याविधि प्रेमभक्ति उपजावें ॥ तब सब कर्म आपुहीं जावें ॥ तबही प्रगटें
ज्ञानप्रकासा ॥ मिलें राम छूटें भवपासा ॥८८॥ बैदिक पंथ कह्यो में तोसों ॥ अब सुनि तंत्रिपंथ पुन
मोसौं ॥ हृदे गांठ काटी जो चहें ॥ सो विधिसों यौ पूजा गहें ॥ ८९ ॥ बेदमिलित भाषत हों
पूजा ॥ जातें मिटें सकल भ्रम दूजा ॥ श्रीगुरुसों परसाद हिं पावें ॥ सो ज्यौं ज्यौं सब बिधिहिं
बतावें ॥ ९०॥ जा मुरतीपरि इच्छा होई ॥ हरि जानी करि पूजें सोई ॥ अतिपवित्र हुइ
करे अस्नाना ॥ मनकी तजें वासना नाना ॥ ९१ ॥ वायु अपान छीकजंभाई ॥ आर
पवन गुण उठे न काई ॥ सनमुष बेठि करें तनरिच्छा ॥ अंगन्यास मंत्र पढि इच्छा ॥ ९२ ॥
आसन सुद्ध साज सेंवाकी ॥ सब ले बैठें तजें न बाकी ॥ विष्णुरूप प्रतिमामें आने ॥
अर्ध पाद अरु विष्टर ठांने ॥ ९३ ॥ मूलमंत्रकरि सेवा करें ॥ औंर न कुछू वचन उच्चरे ॥
सकल अंग हरिजीके ध्यावें ॥ शंख चक्र गदा पदम निल्यावें ॥ ९४ ॥ भूषन वसन
पारषद सहिता ॥ हस्त बदन देखत दुखदहिता ॥ विविध भांति असनान करावे ॥ करि
तिलकादि वस्त्र पहिरावें ॥ ९५ ॥ बहु सुगंधमाला पहिरावें ॥ बहुभांति करि भोग लगावें ॥
गंध धूप आरती उतारें ॥ घंटाआदि शब्द विसतारें ॥ ९६ ॥ या विधि मंत्रनिसौं
सब करें ॥ ता पीछैं अस्तुति विस्तरें ॥ बहुरि करें दंडौत प्रनामा ॥ पढें मंत्र लेंनें हरिनामा

 ॥ ९७ ॥ बाहिर वस्तु मिलें ते आंनें ॥ ओरानि मनसों पूजा ठांनें ॥ तन मन भए निरंतर 
सेवें ॥ वह प्रसाद माथे करि लेवें ॥ ९८ ॥ बहुरि देवकों हिरदे धरी ॥ मूरतिसयन पोठरि क
 री ॥ याविधि हरिको आतम जांनें ॥ यथाशक्ति सब पूजा ठांनें ॥ ९९ ॥ ज्ञानकाज ए-
साधन भक्ति ॥ ज्ञान पाय तब होवें मुक्ती ॥ उभे प्रतीमा हरिकी सेवा ॥ साधू प्रगठ सोइ हरि
देवा ॥ १०० ॥ एसे सेवें उपजें ज्ञाना ॥ बेगी आंन मिले भगवाना ॥ भवसागर हि तऱ्यो जो
चहैं ॥ सेवासहित प्रीत मन गहैं ॥ १०१ ॥ दोहा ॥ ॥ ए सुनि बचन ब्रिदेहके, बा-
ढयौं मनमें प्यार ॥ तब गुणहि अरु कर्मसह, पूछें हरि अवतार ॥ २ ॥ ॥ इ-
तिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे विदेहप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
॥ दोहा ॥ नारायण अवतार सब, लीलाआदि अनाद ॥ श्रीधर चौथेध्यायमैं,
द्रमिलजनकसंवाद ॥ १ ॥ जनकउवाच ॥ चौपाई ॥ अब अवतारकथा विस्तारो ॥
गुण अरु कर्म सहित उच्चारो ॥ जे जे लिए लेहिंजे आगें ॥ अबहीं सब भाषो अनुरागें ॥ १
ए सुनि नृपति जनकके बेनां ॥ कृपासिंधु करुणाके एनां ॥ तब सातमें द्रुमिलसें नामा ॥ बोले
वचन परम अभिरामा ॥ २ ॥ ॥ द्रुमिलउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ जे अनंतके गुण अवतारा ॥
तिनकौं नृपति लहैंको पारा ॥ भूमिरेंनुकनिका कोई गनें ॥ सोउ कहा सकल गुण भनें ॥ ३ ॥
हरिके गुण अवतार अनंता ॥ बालबुद्धि जो चाहे अंता ॥ तातें कछूएक में भाषों ॥ तेरे हृदे 
संसे नहिं राषों ॥ ४ ॥ पंचभूतनिर्मित ब्रह्मंडा ॥ राख्यो नीरमांहि ज्यौं अंडा ॥ तामें अंस

आपनो धारा ॥ सोहं आदि पुरुष अवतारा ॥ ५ ॥ तिनकी देहहुंते सबदेहा ॥ देहमाही बरते सब एहा ॥ तिनके अंगनितें सब अंगा ॥ इंद्रिय अहंबुद्धि बहुरंगा ॥ ६ ॥ सतरजतमें सकल पसारा ॥ उतपति अरु पालन संहारा ॥ प्रथमहि रजतें ब्रह्मा कियौ ॥ सात्विकी जन्म विष्णुकों दियौ ॥ ७ ॥ तामस करी शंकर उपजाए ॥ तिनसौं सकल लोकनिपजाए ॥ ब्रह्मारचैं विष्णु प्रतिपालें ॥ हरे रुद्र यौं भवपथ चालें ॥ ८ ॥ बहुरि सुनो हरिके अवतारा ॥ भवसागरके तारनहारा ॥ धर्म पिता अरु मूरति माता ॥ तहां नरनारायण विख्याता ॥ ९ ॥ आत्मज्ञान भक्ति विस्तारें ॥ यासौं लागि जीव निस्तारें ॥ अब कहों प्रगट करें आचरना ॥ नारदादि नित सेवें चरना ॥ १० ॥ एकवार सुरपति मन आन्यो ॥ ममलोक लेवें यों जान्यो ॥ तब तिन आया कामहि दीनि ॥ कामसंग सेना सब लीनी ॥ ११ ॥ रंभादिक अप्सरा अपारा ॥ भिबिध पवन बसंत पसारा ॥ बदरीषंड सबें चलीआए ॥ नरनारायण बेठे पाए ॥११ ॥ भरि भरि बांननि हनें शरीरा ॥ निहफल भए अग्नि ज्यौं नीरा ॥ तबतें मनमथ बहुत हेरांनें ॥ श्राप अग्नि जीवनिगति मांनें ॥ १३ ॥ हरि अपराध इंद्रकृत जांन्यो ॥ हसि बोलें तिनको भय भांन्यो ॥ मति भयकरो पंच सर वीरा ॥ देवनार भव प्राण शमीरा ॥ १४ ॥ बैठौ इहां अतिथ करवावौ ॥ हम आश्रम सुफल करि जावौ ॥ ए सुनि अभय दानकें बेना ॥ ते सब जोरी सकें नहीं नेना ॥ १५ ॥ लज्जाभार नमाए सीसा ॥ बोलें वचन जांनि जगदीसा ॥ हे प्रभु यह कछु नाहिं अचंभा ॥ तुम हो प्रकृतिपुरुषके थंभा ॥ १६ ॥ निरिबिकार निरगुन निरभेदा ॥ जिनकों जानिसके नहिं वेदा ॥ निजानंदपूरण मुनि सारे ॥ ते सेवत हें चर्ण तुमारे॥१७॥ तुमैर चर्णसरण

जो आवें ॥ तिनकौं सुर बहुविघन उपावें ॥ तिनकौं लोक दाबि पग नीचें ॥ गए चहें तुमरें
पद ऊंचें ॥ १८ ॥ तातें विघन करें सब देवा ॥ मिटती जानें अपनी सेवा ॥ और किसीकौं
॥११॥ विघन न करही ॥ यातें तिनहिं दंड सब भरहीं ॥ १९ ॥ परि तव जन नहिं विघ्न सतावें ॥ विघ्ननि
सीस चर्ण देजावें ॥ जो त्रिभुवनपति तुम रषवारें ॥ कहाकरें तब विघ्न विचारें ॥ २० ॥ तातें तुमरें
कहा अचंभा ॥ जातें मोहिसकी नहि रंभा ॥ क्षुधा तृषा अरु आलस नीद्रा ॥ सीत उष्ण
वर्षारितु तंद्रा ॥ २१ ॥ जिभ्याशिस्नादिक विस्तारा ॥ इनके गुणतें जलधि अपारा ॥ ताकों
बहुत कष्टकरि तरे ॥ गोपदक्रोध बूडि ते मरे ॥ २० ॥ तिनको तप सब मिथ्या होई ॥ दुहु
लोकनिमें एक न कोई ॥ तातें सब साधन जो करें ॥ तुमरी भगति बिना नहि तरें ॥ २३ ॥
या बिधि देवबचन उच्चरें ॥ तब हरि एक अचंभा करें ॥ अति अद्भुत छबि नारि अनेका ॥
मनमोहनी एकतें एका ॥ २४ ॥ ते सब सेवा करत दिखाई ॥ मानो रंभासखिसौं आई ॥ तिनकें
गंध रूप सब मोहें ॥ चंद्रउदय उडुगन ज्यों सोहे ॥ २५ ॥ तिनसौं हरिजी बोले बेना ॥ इनमे
एकले हो तुम मेना ॥ स्वर्गलोकको भूषणरूपा ॥ जाते ए सब परम अनूपा ॥ २६ ॥ तिन सब
हरिकों कियो प्रनामा ॥ लीनी एक उरबसी नामा ॥ करि प्रनाम पुनि वारंवार ॥ पहुँचे सकल
इंद्रदरबारा ॥ २७ ॥ तिनही इंद्र प्रसंग सुनायौ ॥ विस्मय त्रास इंद्र मन आयौ ॥ बहुरि लियो हंस अवतारा ॥
चारि भए सनकादि कुमारा ॥ २८ ॥ दत्तकपिल अरु पिता हमारा ॥ आठहु ब्रम्हरूप विस्तारा ॥
हयग्रीव मधुप्राणनिवारे ॥ ताकरी हरिन बेद उधारे ॥ २९ ॥ सतव्रत राजाहीं हरिभक्ता ॥ तिनकौं ॥११॥
हरिजी कियो बिरक्ता ॥ बिनहि प्रलय प्रलय दिखरायौ ॥ मच्छरूप ज्ञानहीं समुझायौ ॥ ३० ॥

बहुरि वराहरूप हरि धार्‌यौ ॥ हिरण्याक्ष दुष्ट अति मार्‌यौ ॥ बहुरि मही हुती तलमांही ॥ सो उपर थापी पलमांही ॥ ३१ ॥ कूरम ह्वै मंदगिरगिर धार्‌यौं ॥ अमृत काढि सुरकारज सार्‌यौं ॥ ग्राहग्रह्यो गजराज पुकार्‌यौ ॥ तब हरि जीत तकाल उबार्‌यौ ॥ ३२ ॥ बालखिल्य आदिक रिषिराजा ॥ समअंगुष्ठ अकार बिराजा ॥ कस्यपके काजें इकवारा ॥ समधि निकेते बनहि सिधारा ॥ ३३ ॥ तहां गाइपगलसों भरिया ॥ तिनमें आपु आपु सब परिया ॥ हांसी करें इंद्र तहां खरौ ॥ तब तिन हृदे हरीसंभरौ ॥ ३४ ॥ जब आतमको कोई नांहीं ॥ तब तुम नाथ उधारणमांहीं ॥ तातें अब हम भए अनाथा ॥ करुनासिंधु गहो करहाथा ॥ ३५ ॥ इतनी सुनि आर्त्तकी बांनी ॥ तहां उठि धाए सारंगपांनी ॥ तहां करगहि हरि सबनि उधारा ॥ बालखिल्य उधरन अवतारा ॥ ३६ ॥ ब्रह्महत्या भए इंद्र संभार्‌यौं ॥ तबहीं हरिजी प्रगट उधार्‌यौ ॥ सुर बनिता जब असुरनिहरी ॥ तबतें हरिशरण अनुसरी ॥ ३७ ॥ तबतें हरि जीते सकल उधरि ॥ असुर मार सब विपति निवारी ॥ पुनि नरसिंह रूप तनधार्‌यौ ॥ असुर हिरन्यकसिपु जिन मार्‌यौ ॥ ३८ ॥ जनप्रहलादहि लीनौ राख ॥ जाकी प्रगट कहे सब साखी ॥ जब जब असुर प्रबल अतिभए ॥ देवनीके अस्थल हरि लए ॥ ३९ ॥ तब तब सब मन्वंतर मांहीं ॥ विष्णुकला अवतार धरांहीं ॥ मारि असुर सब दुखनि मिटावें ॥ सरनागत सुरनर सुख पावें ॥ ४० ॥ वामनरूप इंद्रके काजा ॥ भिक्षा छलहिछल्यो बलराजा ॥ तीनलोके ले इंद्रहि दए ॥ बलिकी भक्ति आप वस भए ॥ ४१ ॥ बहुरि अधरमी उपजे राजा ॥ परमराम प्रगटें तिहकाजा ॥ इक विसवार करी निहक्षत्री ॥ भुवमें कहुं न राख्यो क्षत्री ॥ ४२ ॥ बहुरि भए दशरथसुत रामा ॥

जेहैं प्रगट लोक अभिरामा ॥ सायर उपरी सैल जिन तारैं ॥ रावन आदि दुष्ट जिन मारैं ॥४३॥ आगैं रामकृष्ण अवतारा ॥ भूकौं प्रबल हरैंगें भारा ॥ यदुकुल जन्म कर्मतें करिहैं ॥ जिनसैं लागि जीव निस्तरिहैं ॥ ४४ ॥ असुरदेखि यज्ञनिकें करता ॥ जीवनि मारि उदरके भरता ॥ बुद्धरूप हरिजी तब धरिहैं ॥ यज्ञनिंद पाखंड विस्तरी हैं ॥ ४५ ॥ बहुरि धरैंगें कल्कीरूपा ॥ अति अपराध करैंगे भूपा ॥ कलिके अंत सकल संहरि हैं ॥ बहुरि प्रवृत्त सतजुग करि हैं ॥४६॥ ऐसे विष्णु कर्म अवतारा ॥ कोई कहत न पावैं पारा ॥ कछु एकमैं तुमसैं कहे ॥ औरहि कोटि अनंत नि रहे ॥ ४७॥ इनकौं कहैं सुने जो गावैं ॥ प्रेमसहित निसवासर ध्यावैं ॥ सो भवसागरमें नहि रहैं ॥ पावैं ज्ञान मरम पद लहैं ॥ ४८ ॥ ॥ दोहा ॥ ए बैंनासुनि द्रुमिलके, कीनी प्रश्न नरेन्द्र, प्रभुजी तिनकी कौंन गति, जे नभ जैं गोविन्द ॥४९॥इतिश्री-भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे विदेहप्रश्नेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा ॥ कर्म शुभाशुभ भजन विधि, साधन ज्ञानदृढांहि ॥ करभाजन अरु चमस मुनि, कही पांचमैंमांहि ॥ १ ॥ ॥ जनक उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ जे नही करहि हरिकी सेवा ॥ तिनकी कहो कोन गति देवा ॥ तिनके तृपति न सुपनें आवें ॥ निसदिन तृष्णा आग्नि जलावें ॥ १ ॥ परि जो बहुविधि धर्म उपावें ॥ ते मोहि कहो कछु सुख पावें ॥ एकही बचन जनक जब रहे ॥ अष्टमें चमस नाम तब कहे ॥ २ ॥ ॥ चमस उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हरिजी बिप्र बदनतें करे ॥ बहुनितें क्षत्री विस्तरे ॥ जंघनि है वैश्य उपजाए ॥ शूद्र तिमि

चर्णनितें आए ॥ ६ ॥ याही भांति कीए आश्रमा ॥ तातें भजन सबनि कौ धर्म ॥ तातें आपु करें प्रतिपाला ॥ आपुहि पोषें दीनदयाला ॥५॥ ऐसें प्रभुकौं जे बिसरें ॥ ते अपराध अपार नि करें ॥ ते गुरुद्रोही अरु मित्रद्रोही ॥ स्वामीद्रोही कृतघनि ओही ॥ ५ ॥ तिन अपराध अधम गति जावें कबहुं भूलि नहिं सुख पावें ॥ सूद्रजोषिता अंतजआदि ॥ तिनकौं दूरि कथा श्रवनादि ॥ ६ ॥ ते मनमें अभिमान न धरें ॥ तात तुमसें क्रिपाहि करें ॥ यातें इनकौं होई उधारा॥ परि उंचनको वारनपारा ॥ ७ ॥ विप्र रु क्षत्री वैश्य त्रिवरना ॥ याकौं यज्ञ विहितविधि करना ॥ इन सबहिनके ते अधिकारी ॥ तातें बहुत सु भए विकारी ॥ ८ ॥ तातपर्यकौं जांने नाहीं ॥ पहुपित बांनीमें भरमाहीं ॥ विष्णुभजन उत्तम अधिकारा ॥ पायो ताहि न लषें गवारा ॥ ९ ॥ कर्म अकर्म विकर्म न जांनैं ॥ अतिकठोर आपहिं बहु मांनैं ॥ हम पंडित यज्ञनिके कारक ॥ और बहुत कर्मनिविस्तारक ॥ १० ॥ आपु भ्रमे ओरनी भ्रमावें ॥ प्रिय बांनी बहुभांति सुनावें ॥ काम रु अर्थ अर्थ करि मांनें ॥ पढि पढि वेद साखि बहु आंनें ॥ ११ ॥ बहु संकल्प करें मनमांही बहुत बहुरि आरंभ करांही ॥ त्यौंहि त्यौं राजस अधिकारा ॥ काम क्रोध लोभ अहंकारा ॥ ॥ १२ ॥ दंभ कपट चतुराइ आनैं ॥ हरि भक्तनिकी हांसी ठानैं ॥ आपु आपु मिली बेठे जबहीं ॥ ग्रहके सुषनि सराहें तबहीं ॥ १३ ॥ जिनमें आनंद क्षण है नाहीं ॥ दंभमानसों जज्ञकराहीं ॥ बहुत पसुनि मारें अज्ञानी ॥ तिन अपराध सकें नहि जांनी ॥ १४ ॥ इतनो धन आयौ यह ये हैं ॥ एते मिलें ए तो तब है हैं ॥ कुलसंपति विद्या ठकुराई ॥ त्याग रूप बल कर्म बडाई ॥ १५ ॥ इनकौं बल बाढ्यो अधिकाई ॥ तातें हृदय समुझ नहीं आई ॥ हरि भक्तनसौं

 ठांने हांसी ॥ मगहद मरै छांडि खल कांसी ॥ १६ ॥ थावर जंगम सब घटमांही ॥ हरिपूरण खाली 
कहुं नाहीं ॥ ज्यौं आकास लिप्त नहिं होई ॥ त्यौं हरि बेद कहतहैं सोई ॥ १७ ॥ परि वे मूढ न
 कबहुं जांनें ॥ जातें हरिभक्तनि नहि मांनें ॥ बहुत मनोरथ निसदिन करें ॥ तृष्णाताप जरत
नहिं टरें ॥ १८ ॥ मद्य पान अरु मांस अहारा ॥ नारि नेह सहित जगसारा ॥ ताहि सकलके
त्याग निमित्ता विधिमें वेद लगायो चित्ता ॥ १९ ॥ संग करे तो नारि बिवाहीं ॥ तांहुंमें
बहुतें थिति नाहीं ॥ बनिताकौं देवें रितुदानां ॥ प्रजानिमित्त चित्तनाहिं आनां ॥ २० ॥ या विधि
कर्म सकल छोडावें ॥ बहुरि बेद सब त्याग करावें ॥ एसेंही आमिष मद पानां ॥ यज्ञमांहि नहीं
कंहु आनां ॥ २१ ॥ बहुरि ऊंहांहुंतें छोडावें ॥ एसो तातपर्यकौं पावें ॥ हरिकी सरने आवे
कोई ॥ सारि विध इक समझे सोई ॥ १२ ॥ के जो तिनकी सरनें आवें ॥ अभिपाय सारो सो
पावें ॥ वे हरि जन अरु हरिहि न जानैं ॥ आपुही कौं पंडित करि मांनैं ॥ १६ ॥ तातें तातपर्य
नहीं जांनें ॥ पढि पढि वेद अनर्थनि ठांनैं ॥ धन ऐसो जो करे उधारा ॥ सो धन खोवे वृथा गंवारा
॥ २४ ॥ जो धन हरिके काजलगावैं ॥ सो तब प्रेमभक्तिकौं पावैं ॥ तोतें होइ ज्ञानपरकासा ॥
तब हरि मिले मिटें भवपासा ॥ २५ एसो धनते मूढ अजांना ॥ देहकाज खोवें भरमांना ॥
काल निरंतर हरतन देखें ॥ बहु मदमत्त दूर करि लेखें ॥ २६ ॥ मद्यमांस मषमे आनजिं ॥ और भूलि
कहुं नाम न लीजे ॥ तहांउ आपु लेई घ्रानां ॥ खान पांनतें अधगति जानां ॥ २७ ॥ त्यौं बनीता
रितुदानहीं देवें ॥ और भूलिकहुं नाम न लेवें ॥ सो जब लगी एक सुतहोई ॥ सुतके भए 
त्यागिए सोई ॥ २८ ॥ एसो सकल वरणको धर्मा ॥ ताकौं भूलिन पावेमर्मा ॥ मरम हीन श्रुति

सुमृतिबखाने ॥ मूरख आपुही पंडितमाने ॥ २९ ॥ तातें बहुत कर्म आरंभै ॥ इंद्रिय मनहि कर्दें नहीथंभै ॥ द्रोहकरैं बहु जीवनी मारैं ॥ ते बहु जन्मनि नहिसंघारैं ॥ ३० ॥ थावर जंगम सब घटमाहीं ॥ एकहि हरिदूजा को नाहीं ॥ तिनकौं द्रोहकरैं तन पोषें ॥ दारासुतनि आनसंतोषें ॥ ३१ ॥ नहि मूरख नहि तत्त्वग्यानी ॥ पढि पूढिग्रंथ हुहिं अभिमानी ॥ ते असाध रोगी सबजांनी॥ तिनसों ज्ञान न मांडेंज्ञानी ॥ ३२ ॥ ते सब करें आपनो घाता ॥ सुपनेहुं न लहें कुसलाता ॥ कर्म पंथमें सुषकों चाहें ॥ अमृतदे करि बिषहि वित्यांहें ॥ ३३ ॥ नाना ताप तप्तजो रहें॥करें मनोरथ फलहि नल हें ॥ बहुत भांति श्रम करि उपजाए ॥ सुत वित दारा सब मनभाए ॥३४॥ तिन सबनि कौं छोड इहांही ॥ वंधें आप जमद्वारें जांहीं ॥ जमके दूत नरक भोगावें ॥ तहांके दुःख कहे न हि जावें ॥ ३५ ॥ तिनकों को नहि राखनहारा ॥ हरिरक्षक सो नहींसंभारा ॥ कहा कहों कछु कहेन जांही ॥ हरि बिन कहूं पलक सुखनाही ॥ ३६ ॥ ॥ दोहा ॥ चमसबचन सुनि भूपके, बाढ्यो त्रासरु प्यार ॥ तब जुग जुगको पूछियो, हरिको भजनप्रकार ॥ ३७ ॥ ॥ विदेह उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ कोंन समेंके सो अवतारा॥किसो वर्ण नाम आकारा ॥ केहि बिधि भजें वर्ण आश्रमा ॥ कहो ज्ञानके साधन धर्मा ॥ ३८ ॥ जिनतें ज्ञान लहें सब त्यागें ॥ नित हरिचरणकमल अनुरागें ॥ मुनि नृप बेंन भक्तिके साजन॥ तब बोलें नवमें कर भाजन ॥ ३९ ॥ करभाजनउवाच ॥ ॥ ॥ चौपाई ॥ सत त्रेता द्वापर कलिकाला ॥ बहुत भांति भजिए गोपाला ॥ बहुविधि बरन बहुत आकारा ॥ बहुत नाम बहुभजन प्रकारा ॥४०॥ सतजुग

सुकल बरन भुजचारी ॥ सीस जटा तन बलकल धारी ॥ कंठजनेऊ कर जपमाला॥दंड कमंडल अरु मृगछाला ॥ ४१ ॥ तब मनुष्य होवें सबसुद्धा ॥ समनिवर वैर सुहृदय परिबुद्धा ॥ अस्थिवर करि इंद्रिय मनप्रांना ॥ करें सबै नित हरिकों ध्याना ॥ ४२ ॥ हंससु परम धर्म जोगेश्वर ॥ निरमल परमातम अरु ईश्वर ॥ पुरुषोत्तम वैकुंठ अव्यक्ता ॥ ताके नाम होई यह व्यक्ता ॥ ४३ ॥ रक्तवरण त्रेताजुगमांही ॥ त्रिगुण मेष लागले पहराही ॥ पीतकेस सर्वादिक हाथा ॥ ऋग यजु साम त्रयमै नाथा ॥ ४४ ॥ तव तिन हेत यज्ञादिक करें ॥ वेद विहित कर्मनि विस्तरें ॥ सर्वेदेवमय हरिकौं जांनैं ॥ तब सबयौं हरिपूजा ठांनै ॥ ४५ ॥ प्रष्णीगर्भ उरु गायकहींजें ॥ विष्णु वृषा कपिजज्ञ भनीजैं ॥ सर्ववेद उरु क्रम विजयंत ॥ ऐसें नाम कहें सब संत ॥ ४६ ॥ द्वापर पीतबसन घनस्यामा संषादिक आयुध अभिरामा ॥ चारिबाहु भृगुलत्ता धरना ॥ लक्ष्मी चिन्ह बहुत आभरना ॥ ४७ ॥ चामर छत्रआदि बहु सेना ॥ महाराज लच्छन सुखदेना ॥ वेद तंत्र बिधि सेवाकरें ॥ सब अरपन पूजा विस्तरें ॥ ४८ ॥ वासुदेव शंकरषणदेवा ॥ प्रद्युम्नरु अनिरुद्ध अभेवा ॥ नारायण भगवान अनंता ॥ जिनकौं कोई लहें नहि अंता ॥ ४९ ॥ विश्वरूप विश्वेश्वर स्वामी ॥ सर्वात्मा सर्वांतरजांमी ॥ बहुत भांति अस्तुति विस्तैरें ॥ विधिसों द्वापुर पूजाकरैं ॥ ५० ॥ कलिजुग पीत पितांबरधारी ॥ कृष्णदेव घनस्याम मुरारी ॥ सहत पारषत बहू आभरनां ॥ श्रवन कीरतन पूजाकरनां ॥५१॥ इंद्रिय मन बहु भेर विकारा ॥ तिनते राखचर्ण तुमारा ॥ सबविधि सर्वतीर्थ कौ वासा ॥ सुमरसहीं पूरें अबआसा ॥ ५२ ॥ शिव विरंचि सुरनर मुनि ध्यावें जाकौं भेद वेद नहीं पावें ॥ राषो लेत शरन जे आवें ॥ जनम मरण सब दुषनि

मिटावें ॥ ५३ ॥ केवल होत दीन उद्धारें ॥ भवसागरके पार उतारें ॥ ऐसे चरण तुमारें गायो ॥ ताकी सरण दीन में आयो ॥ ५४ ॥ अतिसुख तजिसुर वंछे जाकौं ॥ ऐसो राज छोडि करि ताकौं ॥ दशरथ भगत बचन शत करना ॥ वनको गवन कियो जिन चरना ॥ ५५ ॥ हेममृगहि दयिता मनभायो ॥ जो ताके पीछे उठि धायो ॥ जो भगतनके यों आधीना ॥ ऐसें चरण शरण में लीनां ॥ ५६ ॥ ऐसी विधि कलि अस्तुति करें ॥ ब्रहू विधि हरिनामनि उचरें ॥ सुनें कहें सुमरें अरुध्यावैं ॥ ते ततकाल तत्त्वकों पावैं ॥ ५७ ॥ याविधि जें जुग जुग हरि सेवें ॥ तिन तिनको हरि ज्ञान हि देवें ॥ ज्ञान पाइ निज तत्त्व समावें ॥ जहां जाइ बहुरे नहीं आवें ॥ ५८ ॥ जे कलजुगके गुणकौं जानत ॥ ते बहु विधि अस्तुति कौं ठांनत ॥ जेसो परम सार कलिमांहीं ॥ तैसो और जुगनि मैं नाहीं ॥ ५९ ॥ सतजुग ध्यान यग्यत्रेतामहि ॥ द्वापर प्रतिमा पूजे रामही ॥ कलि केवल नामादिक गावैं ॥ सो सो फल ततकालहि पावैं ॥ ६० ॥ या भवसागरमांहि निरंतर ॥ दुखित जीव परें नहि अंतर ॥ तामें हरिगुन नाम उचारन ॥ एक जहाज सकलकौ तारन ॥ ६१ ॥ पाप अघोर अपार कलिमांहि ॥ जामें पुन्यलेस कहूं नांहि ॥ यामैं जे हरिगुणनि उचारैं ॥ ते तरि आप और निकौं तारैं ॥ ६२ ॥ ते कृत कृत्य तेही बडभागी ॥ जे कलि हरि कीरत अनुरागी ॥ आपुसुमरी औरनिसुमरावैं ॥ ते जग जनम बहुरि नहिं आवैं ॥ ६३ ॥ सतत्रेता द्वापर अवतरहीं ॥ ते कलजुगकी वांछा करहीं ॥ कली कछ साधन श्रम नाहीं ॥ हरिगुण गावत हरिहि समाही ॥ ६४ ॥ अरु कहुं को इक देश विसुद्धा ॥ द्रविडादि मानव तहां बुद्धा ॥ जे उपजें ते भक्ती करें ॥ तातें तहां बहुत उद्धरें

॥ ६५ अरु जातां मृपर्णिकृतमाला ॥ कावेरी पयस्विनी विशाला ॥ अरु सरस्वती पछम वाहनी ॥
गंगा आदि दुरी तदा हनी ॥ ६६ ॥ जे मानव जल पीवें इनको ॥ दूरि होय हृदेंमल तिनको ॥
ते सर्वथा होई हरिभक्ता ॥ साधन संग होवें आसक्ता ॥ ६७ ॥ भूत कुटुंब पितर ऋषि देवा ॥
इनके रीति करें सब सेवा ॥ सोई नर नहि सेवा करें ॥ सो सबताजि हरिकौं अनुसरें ॥ ६८ ॥
जेविधिताजि हरि चरणें आवें ॥ तिनके मल हरि दूरि बाहावै ॥ जो मल उपजें नहिं कोई ॥ उपजें
कदें हरे हरि सोई ॥ ६९ ॥ तातें सब विधि को फल एका ॥ गहियें हरि पद छांडि
अनेका ॥ सबके प्रभु सबहिं सुषदाता ॥ सरनागत पालक विख्याता ॥ ७० ॥ जब
जब जो जो सरनहिं आयौ ॥ तबहीं तब तिनही हरिपायौ ॥ तातें और सकल परि हरियें ॥ श्री
भगवान चरण चित धरियें ॥ ७१ ॥ नारदउवाच ॥ चौपाई ॥ ऐसें सुनि नवहूंके बैनां ॥ जन
क हृदे उपज्यो अतिचैनां ॥ संसा मिट्यौं सकल भ्रम भाग्यों ॥ ब्रह्मज्ञान सूतो जैं जाग्यौ ॥
॥ ७२ ॥ तब तिनकी बहु पूजा कीनी ॥ विप्रनि सहित प्रदक्षिणा दीनी ॥ या विधि दरसन
पाये सबही ॥ अंतरध्यान भये ते तबही ॥ ७३ ॥ जनक विदेह और सब त्याग्यो ॥ हरिके
चर्ण कमल अनुराग्यो ॥ या विधि ब्रह्मपरायन भयो ॥ तरि भवसिंधु ब्रह्ममें गयो
॥ ७४ ॥ याहि विधि तुमहीं बडभागी ॥ व्हें हो हरि चरणनि अनुरागी ॥ और
सकलकौ तजिहो संगा ॥ तब पावोगे ब्रह्म प्रसंगा । ७५ अरु तुमतो देवकि वसुदेवा ॥ भयो
कृतारथ करि हरि सेवा ॥ तुमरें जश पून्यो जगसारा ॥ जिनके हरिलीनो अवतारा ॥ ७६ ॥
दरसन आलिंगन आलापा ॥ आसन भोजन सयन मिलापा ॥ हरिसों पुत्र जांनि चित दी

नौ ॥ तातें सकल भजन तुम कीनौं ॥ ७७ ॥ कपट वासुदेवरु शिशुपाला ॥ दंतवक्र सल्यादि कराला ॥ वैरभाव कृष्णहि चित धाऱ्यौ ॥ तिनहूं कौं हरि देव उधाऱ्यौ ॥ ७८ ॥ तो जे प्रेमप्रीत सौं सेवें ॥ तिनकौं क्यों न परम पद देवें ॥ अब तुम पुत्र बुद्धि मति आंनौ ॥ कृष्ण देवकौं ब्रह्महिं जांनौ ॥ ७९ ॥ माया करि धारी नरदेह ॥ परब्रह्म तुम जानो एह ॥ बढ्यो देषि भूमे अतिभारा ॥ भेटन काज धऱ्यो अवतारा ॥ ८० ॥ परम पुनीत जसहि विस्तरहीं ॥ जासौं लागि जीव निस्तरहीं ॥ जे जे इनसौं हेत लगावें ॥ ते ते सकल परमपद पावें ॥ ८१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ चौपाई ॥ ऐसी सुनि नारदकी बांनी ॥ वसूदेव देवकि उर मांनी ॥ आपहु दुहू मुक्त रि जांन्यौ ॥ हरिमें भाव ब्रह्मको आंन्यौ ॥ ८२ ॥ यह इतिहास कथा जो भाषें ॥ सावधान सुनि हिरदे राषें ॥ सो सब भवबंधन छिटकावैं ॥ उपजैं ज्ञान परम पद पावें ॥ ८३ ॥ दोहा ॥

॥ भगवत धर्मरु भक्त चिन ॥ माया तरण उपाय ॥ ब्रह्मकर्म अवतार पुन ॥ भजन क्रम युगगाय ॥ ८४ ॥ ए भाष्यो संक्षेपसौं ॥ हरि मिलनैको द्वार ॥ हरि उद्धव संवाद अब ॥ बरनौ करि विस्तार ॥ ८५ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे वसुदेवनारदसंवादेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥ छठें बरणी द्वारिका, श्रीधर सुख श्रीकृष्ण ॥ ब्रह्मादि स्तुति कर चले उद्धव कीयो प्रश्न ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ चौपाई ॥ बहुरि सुनो नृप आतम विद्या ॥ जाकैं जाने मिटैं अविद्या ॥ मिटैं अविद्या ब्रह्महिं पावैं ॥ ब्रह्मपाई फेर

नहिं आवैं ॥ १ ॥ तब ब्रह्मा सनकादिक संगा ॥ नारदादि रंगे हरि रंगा ॥ सकल
प्रजापति भृगु मरिच्यादिक ॥ महादेव लीनें भूतादिक ॥ २ ॥ सुर समूह संग ले सुरपति ॥ पव
न अस्विनी सूत ग्रहपति ॥ वसु अंगीरा रुद्रगन देवा ॥ साध्यादिक अरु विश्वेदेवा ॥ ३ ॥ ऋ
षि गंधर्व पितर अरु नागा ॥ चारन सिद्ध भये अनुरागा ॥ अप्सर अरु गुह्यक विद्याधर ॥ किन्नर
जक्षादिक मायाधर ॥ ४ ॥ कृष्ण देखिवे कारज सारें ॥ आनंदित द्वारिका पधारें ॥ केई नाचै
केई गावें ॥ केई बाजें बहुत बजावें ॥ ५ ॥ केई जय जय शब्द उचारें ॥ केई कृष्ण जसहिं वि
स्तारें ॥ या विधि करे बहुत उच्छाहा ॥ मगन भये हरि प्रेम प्रवाहा ॥ ६ ॥ श्रीभगवान मनुष त
नधारी ॥ दरसन सब मन हरन मुरारी ॥ लोकनि मांहि जसहीं विस्तारें ॥ श्रवनादिकनि सकल
अघजारें ॥ ७ ॥ निधि रिधि पूरण द्वारावती ॥ जाके सम नहिं अमरावती ॥ तामें ब्रह्मादिक च
लि आये ॥ कृष्ण देवके दरसन पाये ॥ ८ स्वर्ग व्रक्ष फूलनिकी माला ॥ छादित कीन्हें दीनदया
ला ॥ पावत दरस त्रिपति नहि होवें ॥ चित्रलिषेसें सनमुख जोवें ॥ ९ ॥ चित्रवत बंदन स्तुति क
रें ॥ उत्तम अर्थनि जैंस बिसतरें ॥ सहित बीनती अरु पर नामा ॥ दरस भये सब पूरन कामा ॥ १० ॥
॥ ब्रह्मा उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु चर्णसरोज तुमारा ॥ मन क्रम बचन चित्त हंकारा ॥ इंद्रिय
बुद्धि प्रानरु देहा ॥ वंदत हे हम प्रगटे एहा ॥ ११ जाकौं प्राण वचन मन साधें ॥ सावधा
न निसदिन आराधें ॥ भाव सहित अभि अंतरध्यावें ॥ तेउ याविधि प्रगट न पावें ॥ १२ ॥ धन धन
हम धन भाग हमारा ॥ प्रगटहिं देखे वर्ण तुमारा ॥ जिनकें ध्यान कीरतन श्रवण ॥ बहुरि न
होवेंआवा गवन ॥ १३ ॥ तुम अद्वैत द्वैत यह कर्‍यौ ॥ अपनी माया सब विस्तर्‍यौ ॥ तुमही ॥१६॥

तें उपजे संसारा ॥ सदा रहें तुमरे आधारा ॥ १४ ॥ तुमहीं माहि लीन सब होई ॥ तुमसौं परस सकै नहिं कोई ॥ राग रहित आनंद स्वरूपा ॥ अजित अमित चिद्रूप अनूपा ॥ १५ ॥ विद्याध्ययन श्रवण अरु दाना ॥ क्रिया उपासन तप असनाना ॥ त्याग जोग यज्ञादिक जेते ॥ आतम शुद्ध करैं नहिं एते ॥ १६ ॥ तव गुण श्रवन परत अघ नासैं ॥ ज्यौं तम मांही सूर्य प्रकासैं ॥ तातैं जन्म कर्म गुणधारौ ॥ दीनबंधु दीनन उद्धारौ ॥ १७ ॥ जो तव चरण कमल मुनि ध्यावें ॥ भव भय भीतन पल छिटकावें ॥ अरु निज भक्त निरंतर सेवें ॥ भय नहिं समुझें नहिं छुक लेवें ॥ १८ ॥ अरु एके बैकुंठ निमित्ता ॥ हृदय धरंता चरणहि चित्ता ॥ बहुरि एक सेवें सहकामा ॥ एकभये चाहें निहकामा ॥ १९ ॥ जीवन मुकत भए इक सेवें ॥ प्रेम भावसौं अति सुष लेवें ॥ एकैजज्ञादिक सौं भजैं ॥ सर्व वेदमय तुमको यजैं ॥ २० ॥ एके वर्ण आदि आश्रमा ॥ तुमरे हेत करैं सब धर्मा ॥ एके एक रूपकरि ध्यावैं ॥ द्वैत भाव कबहूं नहिं ल्यावैं ॥ २१ ॥ एके तुम प्रतिमाकौं सेवे ॥ एकैं नाम निरंतर लेवें ॥ एकै श्रवन कीरतन ध्याना ॥ कहां लगि कहिये जे विधि नाना ॥ २२ ॥ ज्यौं जे जे तव चरणनि सेवें ॥ ते ते सब वांछित फल लेवें ॥ सो तव चरण प्रगट हम पायो ॥ तातैं अब दीजैं मन भायौ ॥ २३ ॥ यह हम वांछा पूरन करो ॥ अपने चरण कमल चित धरो ॥ भस्म करो दूजी वासना ॥ जिनतें उपजें भव सासना ॥ २४ ॥ परम दयाल परम हितकारी ॥ इच्छा पूरक देव मुरारी ॥ इच्छा पूरण करो हमारी ॥ निहचल उपजें भक्ति तुमारी ॥ २५ ॥ जो तव जन वनमाला करें ॥ प्रेम सहित तव आगैं धरें ॥ कमला देषि सपर्धा आने ॥ ताकौं आपस पतनी जाने ॥ २६ ॥ परि तुम ऐसे दीनदयाला ॥

भक्ति अधीन करत प्रतिपाला ॥ तब इंदीरा निरादर करौ ॥ वनमाला ता ऊपर धरौ ॥ २७ ॥
जो तव चरण भगत सुर कारन ॥ दुष्ट असुर सेना संहारन ॥ असुरनकौं अधगतिके दाता ॥
सुरनि स्वर्ग दीनैं विष्याता ॥ २८ ॥ अभयदान अघनाशन ठानौं ॥ लोकबेद यह प्रगट बखानौं ॥
बांधी ध्वजा गंग तिहु लोका ॥ जाके दर्श मिटैं भव सोका ॥ २९ ॥ ब्रह्मादिक सुर नर अधि-
कारी ॥ तुमरे चरण कमल वश चारी ॥ जो अति बली बैल मदभीना ॥ नाथें नाक धर्न
आधीना ॥ ३० ॥ जब जब असुरनतें दुष पावें ॥ तब तब सरन चरनकी आवें ॥ तबहीं सु-
ख उपजें दुष भाजें ॥ अपने अपने ठौर विराजें ॥ ३१ ॥ प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व नियंता ॥ तुम
इनके कारन भगवंता ॥ तुमतें पुरुष शक्ति जो पावैं ॥ प्रकृति मिली महत्तत्त्व उपावैं ॥ ३२ ॥
तातें उपजै इह ब्रह्मण्डा ॥ जल आधार तरे ज्यौं अण्डा ॥ थावर जंगम विविध प्रकारा ॥ तातें होई
सकल विस्तारा ॥ ३३ ॥ तातें तुम या सबके करता ॥ उपजा बन प्रतिपालन हरता ॥ तुम
आधार सकलके स्वामी ॥ तुम फलदाता अंतर जामी ॥ ३४ ॥ जो कछु होइ सकल जग मा
हीं ॥ तुम करता दूजा को नाहीं ॥ परिकिहुं लिप्त होहु नहिं देवा ॥ कोउ लषी न सकें तव
भेवा ॥ ३५ ॥ सोल सहस्र एक सत आठा ॥ जिनके हृदे प्रेम अतिकाठा ॥ हाव भाव सों प्री-
ति बढावैं ॥ मदन बान बहुभांति चलावैं ॥ ३६ ॥ तुम तो हू बसहो वो नाहीं ॥ निश्चल निजा-
नंद पद माहीं ॥ और छोड़ि जे बैठे कोई ॥ करत बासना बंधें सोई ॥ ३७ ॥ ए द्वे नदी प्रगट
तुम कीनी ॥ जिनकी महिमा परें न चीन्ही ॥ एक भंग चरणानि कौ नीरा ॥ परसत निरमल करें ॥१७॥
शरीरा ॥ ॥ ३८ ॥ दूजी तव कीरतिकी सरिता ॥ त्रिभुवन जहां तहां विस्तरिता ॥ श्रवन करत अंतर

मल नासै ॥ निरमल हृदय ब्रह्म प्रकासै ॥३९॥ ब्रह्मप्रकाश भये भव नाहीं ॥ षेले एकमेक मिलि मांहीं ॥
इन द्वै नदिनिभ जे जे पंडित ॥ तिनकौं काल करत नहि षंडित ॥ ४० ॥ तातैं नाथ कृपा अब
कीजैं ॥ साधु संग हमकौं नित दीजैं ॥ जिनमैं कथा नदी हम पावैं ॥ जातें तव चरणन चित
लावै ॥ ४१ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ चौपाइ ॥ यौंले शिवशक्रादिक संगा ॥ अस्तुति करी
बहुतप्रसंगा ॥ बहुर्‌यौ विधि ए वचन सुनाये ॥ जाके काज सकल हम आये ॥ ४२ ॥ ॥ ब्रह्मा
उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु हम तुम बिनती कीनी ॥ धरनी भार भई जब चीनी ॥ तातें
तुम लीना अवतारा ॥ सकल उतार्‌यौ भुवकौ भारा ॥ ४३ ॥ मेटि अधर्म धर्म विसतार्‌यौ ॥
सब संतनकौ कारज सार्‌यौ ॥ और कीरति बहुविधि विस्तरी ॥ भवसागर तरवेको करी ॥ ४४ ॥
ले अवतार भूप जदुवंसा ॥ सकल जनन को मेट्यौ संसा ॥ बहु विधि कीने कर्म अपारा ॥
जिसौं लागि जैहें भवपारा ॥ ४५ ॥ अरु जदुकुल द्विज श्राप बिनास्यौ ॥ नहिं रहि है दिन
द्वै हें भास्यौ ॥ तातें देव काज सब कर्‌यौ ॥ करिवेकुं कछु नाहीं उबर्‌यौ ॥ ४६ ॥ गई बरष
सत आव पचींसा ॥ तातें हम बिनवें जगदीसा ॥ अब करि कृपा चलो निजलोका ॥ करत
पुनीत हमारे ओका ॥ ४७ ॥ हम हें दास तुमारे देवा ॥ निसदिन करें तुमारी सेवा ॥ ऐसी
सुनि ब्रह्माकी बानी ॥ तब हँसि बोले सारंगपानी ॥ ४८ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥
चौपाई ॥ मै सब सुनी तुमारी बानी ॥ तुमारो काज भयो मैं जानी ॥ परि यदुकुल यों ही
परिहरौं ॥ तो नास सकल भूको मैं करौं ॥ ४९॥ ए सब जादव बहु मदमत्ता ॥ ए न रह सो मेरी
सत्ता ॥ मोहि तजें सब प्रलई ठानै ॥ ज्यौं सायर मरजादा भांनैं ॥ ५० ॥ तातें नास हेत

उपजायौ ॥ श्राप सबनि विप्रन तैं पायौ ॥ अब इन सबहिनकौं बिनसाऊं ॥ पीछे तुम
लोकानि मैं आऊं ॥ ५१ ॥ ऐसे सुनि हरिजीके बैना ॥ हृदय बढ्यौ सबनीकौं चैना ॥ करि
 प्रणिपात बीनती सारैं ॥ अपने अपने लोक सधारैं ॥ ५२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥
चौपाई ॥ तब नरपतिकी सभा मझारी ॥ बैठे यदुकुल सहित मुरारी ॥ द्वारावती उठे उत
पाता ॥ तिनकौं देषि कही हरि बाता ॥ ५३ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ए
उतपात उठैं चहुं ओरा ॥ अतिभय दायक दीसैं घोरा ॥ अरु द्विज श्राप भयो
कुल मांही ॥ तातैं भली देखियत नाहीं ॥ ५४ ॥ तातैं अब ईहां नहिं रहियैं ॥ तजीये
बेगि जीयो जो चहियै ॥ अति पुनीत जु क्षेत्र प्रभासा ॥ तहां बेगि चलि कीजे वासा ॥ ५५ ॥
एकवार दक्ष श्रापहि दयौ ॥ तब शशि कौं क्षयरोग हि भयौ ॥ जब सो शशी प्रभासहिं न्हायौ ॥
छूट्यौ श्राप परम सुख पायौ ॥ ५६ ॥ तातैं अब प्रभास चलीजैं ॥ तहां जाइ असनान
हि कीजैं ॥ तृपति देव पितरनकौं करिये ॥ विप्र भोजन बहु विधि विस्तरि
यैं ॥ ५७ ॥ तिनकौं दान बहुत विधि दीजैं ॥ श्रद्धा सहित प्रणाम हि कीजैं ॥ तिन प्रसाद दुष
नि परिहरियैं ॥ ज्यौं नावनसौं सागर तरियैं ॥ ५८ ॥ ऐसी सुनि हरिजीकी बानी ॥ सब जाद
वन भली करि मानी ॥ तब चलवेकौं सकल विचारैं ॥ अपने अपने रथनि संवारैं ॥ ५९ ॥ तब
उद्धव हरिको निज दासा ॥ देषि सकल विधि भयौ उदासा ॥ चलि एकांत हरिजीपैं आयौ ॥
चरणनि परिकै वचन सुनायौ ॥ ६० ॥ ऊद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ देव देव ईश्वर जोगेश ॥ श्र 
वन कीरतन हरन कलेश ॥ यदुकुलकौं संधार हिं करिहो ॥ अब तुम मृत्युलोक परिहरिहो ॥ ६१ ॥

विप्रश्राप मेटन सामर्था ॥ नहिं मेटो सो यह है अर्था ॥ मेरे जीवन चरण तुमारा ॥ जैसे मीन उदक आधारा ॥ ६२ ॥ प्राणनाथ अब ऐसी कीजैं ॥ संग आपने मौकौं लीजैं ॥ तुमरे सब आचरण अनूपा ॥ सबकौं अति कल्याण स्वरूपा ॥ ६३ ॥ जिनकों पाइ और सब त्यागैं ॥ त्रिभुवनके सुषदुषसे लागैं ॥ आसन गमन असन असनाना ॥ जागत अरु सोवत विधि नाना ॥ ६४ ॥ सदा निरंतरको मैं दासा ॥ क्यौं पलत जौं तुमारै पासा ॥ माया भय नहिं मेरे कहुं ॥ तुम बिन अर्ध निमिष न वरहूं ॥ ६५ ॥ गंध बसन माला आभरना ॥ तुम उत्तीरनकौं मैं धरना ॥ महाप्रसाद निरंतर पोष्यौ ॥ दरस परस बहुविधि संतोष्यौ ॥ ६६ ॥ ऐसो मैं निज सास तुमारै ॥ माया करि है कहा हमारै ॥ माया भय अरु तुमरे हेता ॥ होइ दिगंबर ऊर धरेता ॥ ६७ ॥ इंद्रिय देह प्राण मन साधैं ॥ सावधान तुमकौं आराधैं ॥ ब्रह्म विचार सदा मन लावैं ॥ ते निज रूप तुमारो पावैं ॥ ६८ ॥ हम कछु कर्म अकर्म न जानैं ॥ हृदय ज्ञान वैराग न आनैं ॥ तुमरे भक्तनिके मिलि संगा ॥ भव तरियैं सुनि तव प्रसंगा ॥ ६९ ॥ तुमरे कर्म वचन परिहासा ॥ आवन गवन रूप प्रकासा ॥ कहत सुनत सुमिरत सुष मांही ॥ भव सागर हम रहियैं नाहीं ॥७०॥ तातें माया भय नहिं आनौं ॥ आप हि सदा मुक्त करि मानौं ॥ परि तुम बिना प्राण तजि जाही ॥ तातें मोहिं छोडिये नाहीं ॥ ७१ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ ए उद्धव निज भक्तके, सुने वचन गोपाल ॥ तब करुणामय करि कृपा, बोले वचन रसाल ॥ ७२ ॥ इति श्रीभा॰महापुराणे एकादशस्कंधेभगवदुद्धवसंवादेभाषायांषष्ठोऽध्यायः ६

॥ ॥ दोहा ॥ ॥ उद्धव प्रति श्रीकृष्णजी, कह्यो सात मैं ज्ञान॥ दत्त यदू संवाद मैं शिक्षा आठ बखान ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ महाभाग उद्धव यह यौंहीं ॥ ज्यौं तुम कही बात है त्यौंहीं ॥ शिव बिरंचि शक्रादि दिवेसा ॥ बछे म वैकुंठ प्रवेसा ॥ १ ॥ भूमें भार बढयौ जब भारी ॥ तब भू ब्रह्मापास पुकारी ॥ ब्रह्मादिक मिल बिनती करी ॥ ताते मानुष देह मैं धरी ॥ २ ॥ अब भूको सब भार उतार्‍यौ ॥ सकल सुर निकौ कारज सार्‍यौ ॥ अरु जसको कीनौ विसतारा ॥ जातें जीव जाहिं भवपारा ॥ ३ ॥ जदुकुल श्राप लह्यौ द्विज पासा ॥ आपु आपुमें व्है हैं नासा ॥ आजहूं तें सप्त दिन मांहीं ॥ सिंधु द्वारिका राषे नाही ॥ ४ ॥ जबही मैं तजिहौं यह लोका ॥ तब पावैंगे दुष भय सोका ॥ कलि युग आनि अधिष्ठित होई ॥ तातें अघकरि हैं सब कोई ॥ ५ ॥ तातें उद्धव सुनि बडभागा ॥ अब तूं कर सबहिनको त्यागा ॥ मोमें सदा चित्त थिर करौं ॥ सम दरसी व्है भूमें चरौ ॥ ॥ ६ ॥ जो कछु कहन सुननमें आवैं ॥ मन अरु बुद्धि जहां लागि जावैं ॥ सो यह सब मन कौ कृत जानौ ॥ छिन भंगुर माया करि मानौ ॥ ७ ॥ जिन यह सकल सत्य करि जाना ॥ तिनके भेद भयो हे नाना ॥ ता भेदिहि भ्रम करि नहिं जानैं ॥ विधि निषेध ताहितें मानैं ॥ ॥ ८ ॥ विधि निषेध जो भाषे वेदा ॥ सो ताकौं जाकौं है भेदा ॥ भेद मिटे बिनकरे न त्यागा ॥ तातें ए द्वे किये विभागा ॥ ९ ॥ ज्यौं ज्यौं तजे सुषी त्यौं होई ॥ तातें वेद बतावे दोई ॥ आगे जाइ छुधावै सारैं ॥ जे आपुहि ह्वते विस्तारैं ॥ १० ॥ तातें ए सब मिथ्या जानौ ॥ ऊंच नीच गुण दोषन मानौ ॥ इंद्रिय अरु मन निहचल करौ ॥ अहंकार ममता परिहरौ ॥ ११ ॥

क्षम थूल सकल विस्तारा ॥ एकहि आतमके आधारा ॥ सो आधार ब्रह्मको मानौ ॥ ऐसी विध भवके भय मानौं ॥ १२ ॥ या विधि बेद अर्थकौं जानौ ॥ बहुरि हृदै निश्चल करि मानौ ॥ दूहूं लोककी आसा छांडौ ॥ याविधि अंतराय सब षांडौ ॥ १३ ॥ जितनी याके आसा होई ॥ ते तौ विघन करैं सब कोई ॥ ज्यौं ज्यौं तजतें जावें आसा ॥ त्यौं त्यौं मिटे विघनके पासा ॥ १४ ॥ जब हय होइ आतमारामा ॥ तब तहां नहिं आसकौ धामा ॥ तब विघननिके करता देवा ॥ तेही उलटी करें ता सेवा ॥ १५ ॥ तातें विधि निबेध सब नाषौ ॥ आसा छांड़ि हृदै हरि राषौ ॥ एक ब्रह्म करि सबकौं देषौ ॥ दूजो कबहूं भूलि न लेषौ ॥ १६ ॥ अरु जिन पायो ब्रह्म ग्याना ॥ तिनकौं विधि निषेध नहिं नाना ॥ परि तिनकैं नितहिं विधि होई ॥ कदे निषेध न परसै सोई ॥ १७ ॥ वे सुष दुष गुणदोष न जानै ॥ बालक सम आचरणनि ठानै ॥ परि विधि सारि सेवा करें ॥ अरु निषेध आपुहि परिहरें ॥ १८ ॥ सब परि सुहृद सदा अतिसांत ॥ ज्ञान विज्ञान सहित नित दांत ॥ सब जग ब्रह्म जानि थिर होई ॥ बहुरै जन मन पावै सोई ॥ १९ ॥ ऐसें सुनि हरिजीके बैना ॥ अति दुष्कर अरु अति सुषदेना ॥ तत्त्व सुननाकि बाढ़ी प्यासा ॥ तब बोले उद्धव निज दासा ॥ २० ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ जोग स्वरूप जोग उपजावन ॥ जोग दान जोगस्वर भावन ॥ तुम जो त्याग कह्यो मेरे हित ॥ सो दुष्कर आवें नाही चित ॥ २१ ॥ क्यौं होवे विषयनिको त्यागा ॥ पुत्र कलत्रादिक अनुरागा ॥ यह तन यह धन ए सुत मेरे ॥ यह बनिता यह ग्रह यह चेरे ॥ २२ ॥ या विधि मन अहंकार समुद्रा ॥ बूड़ि रह्यो मे मति को क्षुद्रा ॥ तुमरी माया अति भ्रमायौ ॥ तातें ज्ञान हृदे नहिं आयौ ॥ २३ ॥

अब तुम मोहिं शिष्य उपदेसो ॥ मेरे उर कछु ज्ञान प्रवेसो ॥ तातें अब बहु विधि समझावौ ॥ मम उर पूरन ज्ञान बढ़ावौ ॥ २४ ॥ जातें सब तजि तुमकौं पावौं ॥ बहुरौ जगत जन्म नहिं आवौं ॥ अरु दूजो ऐसो नहिं कोई ॥ जातें लाभ ज्ञानको होई ॥ २५ ॥ ब्रह्मादिक तन धारी जेते ॥ तव माया बस कीने ते ते ॥ तातें मायाहीकौं देषैं ॥ कर्मरु भोग भले करि लेषैं ॥ २६ ॥ ताते मैं जन तुमरी सरना ॥ सो कीजे पावुं तुम चरना ॥ तुमरो आदि अंत नहिं पारा ॥ ज्ञान रूप सबहिन तें न्यारा ॥ २७ ॥ सोई तैं गहो कर जाकौ ॥ माया कछु न सके करि ताकौ ॥ तुमहीतें उपजे यह जीवा ॥ जेसैं अग्निहु तैं बहु दीवा ॥ २८ ॥ सदा रहें तुमरे आधारा ॥ नित उठि पोषै सिरजनहारा ॥ ऐसें प्रभुकौ सेवें नाहीं ॥ तातें परे परम दुषमाहीं ॥ २९ ॥ या भवके दुष कहे न जाहीं ॥ पर्‍यो निरंतर मैं तिन मांहीं ॥ अब मोकौं सरनागत जानौ ॥ देकरि ज्ञान सकल भय भानौ ॥ ३० ॥ मेरे तन मन धन तुम चरना ॥ मन वच कर्म आयो मैं सरना ॥ ऐसें सुनि उद्धव के बैंना ॥ हरि हँसि बोले अंबुजनैना ॥ ३१ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव मैं कह देवौं ज्ञाना ॥ सत्य कहत हौं नाहीं आना ॥ या जगसाधु भये हैं जेते ॥ आपुहिं आप उद्धरें ते ते ॥ ३२ ॥ आपुहि भलो बुरो पहिचानैं ॥ छोड़े बुरो भलाकौं ठानैं ॥ गुरु आपुनो आपुहि होई ॥ पशु पंछी भावे जो कोई ॥ ३३ ॥ परि नर तन ऐसो हैं नीको ॥ ब्रह्मा आदि सबनि कोटीको ॥ जातें ब्रह्म विचार हि पावैं ॥ बहुरौं जगत जन मनहि आवै ॥ ३४ ॥ इक पद त्रय पद एका ॥ चौपादहि बहुपाद अनेका ॥ मैं बहु भांति सृष्टि विस्तारी ॥ तिनमें प्रिय नर देह हमारी

॥ ३५ ॥ मुहिं पावें सो या करि पावैं ॥ ओर सबनि सुष दुष भोगावे ॥ या में मेरो करें विचारा॥ सावधान व्है बहुतप्रकारा ॥ ३६ ॥ भाई यह तौ जड है देहा ॥ इंद्रिय आदिक सकल सनेहा ॥ अपनैं अपनैं अरथ निगहैं ॥ सोए शकति कौं नकी रहैं ॥ ३७ ॥ अरु सोवत जब सुपना पावैं ॥ तब तौ इंद्रिय तन छिटकावैं ॥ सुपन मांहिं सुष दुष को लहैं ॥ जागे वात सकलकी कहैं ॥ ३८ ॥ तातें में तो यह तन नाहीं ॥ में तो वास कियौ या मांहीं ॥ त्यौं बनिता सुत बित परिवारा ॥ मेरो तो नहिं सकल पसारा ॥ ३९ ॥ एतौ सकल देह संग जाहीं ॥ सो यह देह कदे में नाहीं ॥ जातें सुपनमांहि नहिं कोई ॥ उहां सकल सो और हि होई ॥ ४० अरु भाई में तो वह नाहीं ॥ जो तन दीसैं सुपनामाहीं ॥ जातें उहहु थिर नर हावैं ॥ वाकौं तजि यामें फिरि आवैं ॥ ४२ ॥ वातें यह यातें वह झूठी ॥ यह निज ज्ञान गह्यो मूठी ॥ जो इन दुहूं देहकों मेहै ॥ इंद्रियतैं सब अर्थ निगेहै ॥ ४२ ॥ इंद्रिय बुद्ध्यादिक अरु बानी ॥ याकौं कोइ सके नहिं जांनी ॥ सो में नित्य निरंतर एका ॥ उपजे बिनसे देह अनेका ॥ ॥ ४३ ॥ भाई सो मैं कहां तैं आयौ ॥ किन तन दीनों किन उपजायौ ॥ अब तो में द्वै देह अधारा ॥ पलको रहन सकौं निरधारा ॥ ४४ ॥ ए दोउ तजि कहां में रहौं ॥ जोहैं सत्य ताहि दृढ गहौं ॥ ऐसे बहुविधि करें विचारा ॥ त्यागें देहादिक परिवारा ॥ ४५ ॥ सो जहां तहां तें लेवे ज्ञाना ॥ कबहूं कछू न जानें आना ॥ या विधि आप आपकौं तारें ॥ लहें ब्रह्म भवदुःष निवारें ॥ ४६ ॥ यह विचार मानव तन होई ॥ दुजा भूलि न जांने कोई ॥ तातें तुम मानव तन पायौ ॥
६ अरु कछु इकमें तोहि लखायौ ॥ ४७ ॥ तातैं तजो सकलको संगा ॥ मन वच कर्म होइनिहसंगा ॥

||२१|| मबतैं परैं आपकौं जानौ ॥ सो आधार ब्रह्मके मानौ ॥ ४८ ॥ जहा तहां देषे उपदेसा ॥ या
बांध करो ब्रह्म प्रवेसा ॥ ऐसे जहां तहां ले ज्ञाना ॥ बहुतक भये ब्रह्म परवाना ॥ ४९ ॥ तिनमें
कहूं एक की बाता ॥ जो इतिहास कथा विख्याता ॥ दत्त दिगंबर अरु यदुभूपा ॥ तिनकौं हे संवाद
अनूपा ॥ ५० ॥ **दोहा ॥ ॥ सुनि उद्धव इतिहास अब, भाषौं परम अनूप ॥**
**वक्ता दत्तात्रेय जहां, अरु पूछक जदुभूप ॥ ५१ ॥** ॥चौपाई ॥ एक समें भूपति
यदुनामा ॥ गए सिकार छोडि निज धामा ॥ तब ता नगर निकट हैं सूता ॥ देष्यौ एक परम
अवधूता ॥ ५२ ॥ निरभय निश्चल इच्छाचारी ॥ तेजनिधान तरुण तनधारी ॥ करि प्रणाम बहूत
प्रकारा ॥ यदुभूपति तब वचन उचारा ॥ ५३ ॥ यदुरुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु पूरण परम
दयाला ॥ कहो क्रिपा करि होहु कृपाला ॥ ऐसी बुद्धि कहां तुम पाई ॥ जातैं बिचरौ सहज सुभाई
॥ ५४ ॥ भये अकर्त्ता इच्छाचारी ॥ बालक सम सब चिंता टारी ॥ सब जग निशदिन एह विचारैं ॥
धर्मरु अर्थ काम विस्तारैं ॥ ५५ ॥ सो नहिं उपजें बहु दुख पावैं ॥ तिन सौं लागि सब आयु गमावैं ॥
तुम समरथ सबहीं विधि जानौ ॥ क्रिया निपुन प्रिय बैंन बषानौ ॥ ५६ ॥ सब बिधि सरस तरुण तन
सुंदर ॥ तुष्ट पुष्ट कौं लिपे न दुंदर ॥ ना कछु बंछौ ना कछु करौ ॥ जड उन्मत्त गती जिमि विचरौ
॥ ५७ ॥ तृष्णा काम लोभ दौं लागी ॥ सकल लोक दाझै तिन आगी ॥ तुम आनंद मय दाझौ
नाहीं ॥ ज्यौं गजेंद्र गंगोदक मांहीं ॥ ५८ ॥ देह अर्थ सबहि तुम त्यागे ॥ रहौ अनंदित शोक
न लागै ॥ संग न कोई राषे देवा ॥ कोई लषि न सकैं तव भेवा ॥ ५९ ॥ तातैं कहो क्रिपा ||२१||
करि नाथा ॥ भव जल बूडत पकरौ हाथा ॥ यौं जदुभूप विनती करी ॥ तब अवधूत गिरा

उच्चारी ॥ ६० ॥ ॥ अवधूत उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ सुन जदुभूप परम बड़भागी ॥ जाकी
मति हरिसौं अनुरागी ॥ बहुतहि हैं मेरे गुरु देवा ॥ जिन तैं मैं जान्यौ सब भेवा ॥ ६१ ॥ परि
में मतौं आपतें लीनौ ॥ तिनमें मोसों किनहु न दीनौ ॥ ते गुरु सकल सुनौ तुम मोसौं ॥
हरिजन जान कहत हौं तोसौं ॥ ६२ ॥ धरनी गगन पवन अरु पानी ॥ अनल चंद्र रवि कपो
त जानी ॥ अजगर सिंधु पतंगरु भृंगा ॥ कुंजर मधु हरतार कुरंगा ॥ ६३ ॥ मीन पिंगला
कुररु बाला ॥ कन्या सर करता अरु ब्याला ॥ मकरी भृंगी ए चोवीसा ॥ इन तें सिष्यौं
सुनो महीसा ॥ ६४ ॥ प्रथमें धरनीमें गुण देष्यौं ॥ सो में परम तत्त्व करि लेष्यौं ॥ सबैं रहैं
धरनी आधारा ॥ ता परि मूढ करै अपकारा ॥ ६५ ॥ ठौर ठौर अति उत्तम अंगा ॥ ताकौं
करैं बहुत विधि भंगा ॥ ताकैं परवत वृक्ष अनंता ॥ परउपकार सबैं वरतंता ॥ ६६ ॥ पर अप-
राध कछू नहिं जानै ॥ उलटि आप अपकारहि ठानैं ॥ ऐसी शिष धरनीकी लेवैं ॥ जो जन
हरिचरण निकौं सेवैं ॥ ६७ ॥ प्रथम गुरु ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ प्राणत्राई ज्यों लेहि अहारा ॥
स्वाद कुस्वाद न कोई प्यारा ॥ त्यौं हरिजन आहार हि लेवैं ॥ स्वाद कुस्वाद नहीं चित देवैं
॥ ६८ ॥ बिना अहार बिचार न आवैं ॥ स्वाद कुस्वाद न मन ठहरावैं ॥ तातें एतो लेइ अहारा-
जे तो होवे प्राण अधारा ॥ ६९ ॥ अरु ज्यौं पवन फिरें जग माहीं ॥ शुद्ध अशुद्ध लिपें कहुं
नाहीं ॥ नाना भेदनि में संचरैं ॥ प्रिय अप्रिय गुण दोष न धरैं ॥ ७० ॥ यों हि विषय निग्रह
तें जोगी ॥ मन वच कर्म न होवें भोगी ॥ भेद अनेकनिमें अनुसरैं ॥ परि कछु भेद हृदे न-
हिं धरैं ॥ ७१ ॥ अरु ज्यौं पवन गंध संजोगा ॥ लिप्त भयौं जौन सब लोगा ॥ परिसो पवन

सदा इकरूपा ॥ लिपें न कबहू सोइ अनूपा ॥ ७२ ॥ पंचभूत निर्मित त्यौं देहा ॥ सकल विकारनको ए गेहा ॥ तामें जोगी लिप्त न होई ॥ और लिप्त सब जाने कोई ॥ ७३ ॥ द्वितीय गुरु ॥ २ ॥ चौपाई ॥ ज्यौं सबहिनमें एक अकाशा ॥ अरु सबहिनको तामें वासा ॥ सब उपजें बिनसें वरताहीं ॥ गगन न लिपें काल तिहु मांहीं ॥ ७४ ॥ त्यौं बहुविधि सब जगत पसारा ॥ मुनि देषें आतम आधारा ॥ जो कछु देषें जडहें सोई ॥ जाहि संग तें चेतन होई ॥ ७५ ॥ ज्यौं आतम देहनिमें देष ॥ त्यौं परमातम जहां तहां लेषें ॥ एक अनंत न कहुं आवरना ॥ लिपे न छिपे जन्म नहिं मरनां ॥ ७६ ॥ सो परमातम आतम एका ॥ कदै न देषें भूलि अनेका ॥ ज्यौं जो गगन घटनिमें होई ॥ बाहरहु पुनि जहां तहां सोई ॥ ७७ ॥ कहिवेको द्वैनांतर एका ॥ यौं आतम अरु ब्रह्म विवेका ॥ ज्यौं बहु मेघ पवन दामनी ॥ वरषें बहु वासर जामनी ॥ ७८ ॥ परि नभ लिप्त कदे नहिं होई ॥ और लिप्त जानें सब कोई ॥ त्यौं आतममें देह अनंता ॥ उपजें वरतें पावें अंता ॥ ७९ ॥ परि आतमा लिप्त कहुं नाहीं ॥ साध विचारें यौं मनमाहीं ॥ यह अंबर गुण तोहिं सुनायौ ॥ अब भाषों जौं जलतें पायौ ॥ ८० ॥ ॥ तृतीय गुरु ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ नित निरमल और निमल हरें ॥ ताप मेटि सीतलता करें ॥ सब सुष दाइक हित रसवंत ॥ ए गुण जलके सीखे संत ॥ ८१ ॥ ॥ चतुर्थ गुरु ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तेजवंत अरु दीपत जुक्ता ॥ क्षोभ रहित जहां तहां निरमुक्ता ॥ स्वादरहित सब भक्षन करें ॥ अग्नि न लिपें संच न हि धरें ॥ ८२ ॥ त्यौं ही ज्ञानते जमय होई ॥ इंद्रियादि कृत दीपत सोई ॥ जद्यपि बहुविधि भोजन करें ॥ स्वादरहित

गुण दोष न धरै ॥ ८३ ॥ काहुहुंते क्षोभ नहिं होई ॥ काहूके गुण मिले न सोई ॥ उदर प्रमान लेहि अहारा ॥ कछू न जानैं संचै सारा ॥ ८४ ॥ गुप्त रहैं नहिं भूल जनावै ॥ कीन्हैं प्रकट ह्वै आवैं ॥ परइच्छा आहुतकों लेई ॥ तिनतें पाप रहे नहि देई ॥ ८५ ॥ त्यौं मुनि गुप्त आपतें रहैं॥ षोजि लेहि ताकों भ्रम दहैं ॥ उत्तम भोजन आदिक होई ॥ परइच्छाते लेवे सोई ॥ ८६ ॥ बहुज्यौं अग्नि एक रस एका ॥ बहुविधि दीसैं काष्ठ अनेका ॥ त्यौं आतमा एक सब माहीं ॥ भेद देह कृत संचे नाहीं ॥ ८७ ॥ दीप मसाल प्रगट ज्यौं होई ॥ ज्वाला जात लषे सब कोई ॥ परिते दीसैं त्योंके त्यौंहीं ॥ प्रतिदिन देह जात हैं योंहीं ॥ ८८ ॥ ॥ पंचमोगुरुः ॥ ५ ॥ चौपाई॥ जैसें शशिके बाढैं कला ॥ त्यौं त्यौं दिन दिन दीसे भला ॥ पूर्ण व्हे करि दिन दिन नासैं ॥ सकल मिटै तब नहिं प्रकासैं ॥ ८९ ॥ त्यौं बालादि अवस्था आवैं ॥ व्हैं करि तरुन क्रमहि क्रम जावैं ॥ तब आतम देषियत नाहीं ॥ परिहैं सदा काल तिहु माहीं ॥ ९० ॥ गुरु छठो ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ ज्यौं रवि किरणानि सौं जल लेवैं ॥ समय पाइ बहूज्यौं सब देवैं ॥ परि कबहूं अभिमान न आंनैं ॥ लियो दियो आपु नहिं जानैं ॥ ९१ ॥ त्यौं मुनि सुनैं कहैं अरु देषैं ॥ सकल अर्थ इंद्रियकृत लेषैं ॥ नित आतमा अकरता जानैं ॥ सब तजि ब्रह्म विचारहि ठानै ॥ ९२ ॥ ज्यौं घट जल प्रतिबिंबित सूरा ॥ लिप्त देखियें परिहैं दूरा ॥ त्यौं आतमा देह संबंधा ॥ थूल दृष्टि जानत हैं अंधा ॥ ९३ ॥ ॥ सप्तमगुरु ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ अब कपोतकी कथा सुनाऊं ॥ तेरे मनको भ्रमहि मिटाऊं ॥ एक कपोत कपोती संगा ॥ बनमें कीनो ग्रह प्रसंगा ॥ ९४ ॥ आपु आपु में अति आसक्ता ॥ आठ पहरमें पल न विरक्ता ॥ मनसों मन अंगनि सों अंगा ॥ नैंन

नि नैंन बढ्यो बहुरंगा ॥ ९५ ॥ आवन गवन असन अस्थाना ॥ सैन बैन सारी विधि नाना ॥
मिलि सकल कर्मनिको करें ॥ निरभय व्हे न काहुतें डरें ॥ ९६ ॥ सो कपोत बनिता बस कीऔ ॥
हाव भाव तन मन हरि लीऔं ॥ वनिता जो वंछें सो लावें ॥ कष्ट सहित जाही विधि पावें
॥ ९७ ॥ सोइ स्त्रीजित ज्यौं तुम राजा ॥ अपनौ लषे न काज अकाजा ॥ तनमय भयौ
निरंतर चहैं ॥ प्राणहु तैं ताही प्रिय कहैं ॥ ९८ ॥ ताकी त्रिया अंड उपजाये ॥ तिनैंभैं मन
दोनों मिलि लाये ॥ तव हरि माया शिशु निरमये ॥ कोमल अंग रोम तब भये ॥ ९९ ॥
तबहुं मिलि करि तिन कौं पोषें ॥ बहुतभांति ताकौं संतोषें ॥ कोमल वचन सुनें सुष दरसें ॥
अपने अंग अंग सों परसें ॥ १०० ॥ हरिकी माया बहुत भुलाये ॥ आपु आपुमें सकल बंधाये
पुत्र सनेह रहें अनुरागे ॥ सिरपर काल न लषे अभागे ॥ १०१ एकवार बालकके कारन ॥
चारौ लेन गए ते आरन ॥ ताही समै व्याध इक आयौ ॥ बालक देषि जाल विछायौ ॥ १०२ ॥
देख्यौ कनिक न देष्यौ जाला ॥ वंधे आनि सकल षगबाला ॥ तब दोउ चारौंकौं ल्याये ॥
निज ग्रह मांहि न बालक पाये ॥ १०३ ॥ तब देषे माता ते बाला ॥ बंधे जाल मांहि बिहाला ॥
तब सो तहां पुकारत धाई ॥ जाल मांहि सत हेत बंधाई ॥ १०४ ॥ तब कपोत देषे सब बंधे ॥
हरि माया कीने अति अंधे ॥ तब वहुभांति करै बिलापा ॥ लेषें बहुत आपने पापा ॥ १०५ ॥
हाहा पाप कौन में कीने ॥ ऐसे दुख दैव मोहिं दीने ॥ जाकी यह पतिव्रता नारी ॥ पुत्रनि
ले सुरलोक सिधारी ॥ १०६ ॥ मोहिं छोड़ि सूने ग्रहमाही ॥ सब मिलि आपु इंद्रपुर जाही ॥ ॥२३॥
ना मै सुष भोगे यह लोका ॥ नहिं साधन पायो परलोका ॥ १०७ ॥ धर्म अर्थ काम सब जामें ॥

कछुवै नहीं रह्यो ग्रह तामैं ॥ अब प्रानानि राषौं कछु नाहीं ॥ घरी घरीमें दुख अधिकाहीं ॥ १०८ ॥ या विधि भयो बहुत बिहाला ॥ बंधे देषि बानिता अरु बाला ॥ व्याकुल बुद्धि विचार न कर्यौ ॥ आपहूं आइ लाजमें पर्यौ ॥ १०९ ॥ सहित कुटुंब कपोत हिं पायो ॥ तबहीं भयो व्याध मन भायो ॥ ऐसी में कपोतकी देषी ॥ तब हि हुदै अपुने यह लेषी ॥ ११० ॥ यौंहीं कुटुंब होवैं जाके ॥ तृष्णा राग बढैं अति ताके ॥ जीवत अति आरंभानि करैं ॥ सहित कुटुंब काल मुष परैं ॥ १११ ॥ या विधि जो मानव तपावैं ॥ सो तो द्वार ब्रह्मकैं आवैं ॥ ताहूं परि जो ग्रह हित करैं ॥ सो नर ब्रह्मद्वार चढ़ि परैं ॥ ११२ ॥ तातैं भोग कुटुंबरु गेहा ॥ तिन करि जीव लहैं प्रतिदेहा ॥ एसो मानव तन न गवैयें ॥ जा करि देव निरंजन पैयें ॥ ११३ ॥

दोहा ॥ ॥ यह भाषी गुरु आठकी, शिष्या मैं तब पास ॥ अब औरनकी कहतहौं, ज्यौं छूटें भव पास ॥ ११४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भवदुद्धवसंवादे अवधूतोपाख्यानेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ शिक्षा नवमी आदि ले,कही अठमैं मांहे ॥ ज्यौं ज्यौं भाषत दत्तजी, त्यौं यदु मन हर्षाहि ॥ १ ॥ ॥ अवधूत उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ जे इंद्रिय सुष कछू कहावे ॥ ते तो स्वर्ग नर्कहूं आवे ॥ ज्यौं सूकर कूकर सुर मांहिं ॥ त्यौंही देव और कछु नाहीं ॥ १ ॥ अरु जो सुष आपुहि तें आवैं ॥ कर्म लिष्यो सो कोन मिटावैं ॥ अरु ज्यौं कोइ दुखकौं नहि चहैं ॥ परि दुख आपु आपुहीं रहैं ॥ २ ॥ त्यौंही सुष आपुहि ते आवैं ॥ बिन जान नर बहु दुख पावैं ॥ तातैं बुध सुख नाम न लेवैं ॥ होइ अकरता हरिपद सेवै ॥ ३ ॥ स्वाद

कुस्वाद बहुत के थोरा ॥ जो हरिजी पठवे तिस बोरा ॥ ताकों भक्षें रहें उदासा ॥ अजगर व्रति गहे यह दासा ॥ ४ ॥ जो कबहूं अहार न आवे ॥ तो थिर रहै न कछु मन लावें ॥ कर्म अधीन देहकों जानैं ॥ मन क्रम वचन न उद्यम ठानैं ॥ ५ ॥ अति समर्थ इंद्रिय मन देहा ॥ परि कछु उद्यम करे न एहा ॥ निश्चल ब्रह्म निरंतर सेवें ॥ यह शिष्या अजगर तें लेंवे ॥ ६ ॥ गुरु नवमो ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ दरसन परसन परम गंभीरा ॥ अधिक अगाध ज्ञान सो नीरा ॥ वार पार कोइ थाह न लहैं ॥ ए गुन मुनि सायरके गहैं ॥ ७ ॥ ज्यौं बरषा बहु नीर प्रवेशा ॥ सायर कछू बढ़े नहिं लेसा ॥ ग्रीषममें कछु हीन न होई ॥ सदा समृद्ध आपनें सोई ॥ ८ ॥ त्यौं कोई बहुविधि अरचावै ॥ भोजन वस्त्रादिक पहिरावै ॥ अस्तुति मानव डाई देवे ॥ बहुतभांति बहु तें मिलि सेवे ॥ ९ ॥ अरु एकै लै जाही उतारी ॥ निंदादिक इक ठानै भारी ॥ परि नारायणमय मुनि मांही ॥ राग द्वेष कछु उपजें नाहीं ॥ १० ॥ ॥ गुरु दशमा ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ बनिता वस्त्र कनक आभरना ॥ बहुविधि मायाके उपकरना ॥ इनमें आइ परें जो कोई ॥ अग्नि पतंग समान सु होई ॥ ११ ॥ गुरु इग्यारमो ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ ज्यौं लगि मुनि समझैं निज देहा ॥ जाचि अहार लेइ बहु गेहा ॥ यातैं बहु अनुराग न बढ़ैं ॥ यह शिष्या मधुकरतें पढ़ैं ॥ १२ ॥ छोटे बडे बहुत विधि ग्रंथा ॥ तिनते सार गहै हरिपंथा ॥ ज्यौं मधुकर बहु फूलनि माहीं ॥ वास गहे फूलनिकौं नाहीं ॥ १३ ॥ सो मधुकर द्वै विधको कहियैं ॥ दुहू पासतें शिष्या लहियैं ॥ बहुत ग्रहनितें लेइ अहारा ॥ उदर प्रमान एकहीं वारा ॥ १४ ॥ ॥ गुरु बारहमों ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ दूजे को कछु संचन धरे ॥ निरभय ब्रह्म विचार हीं करे ॥

संग्रह भूलि करे जो कब हीं ॥ मधुमाषी ज्यौं विनसें तब हीं ॥ १५ ॥ जो कोई धन संग्रह करे ॥ सो कोई और हि परिहरे ॥ ज्यौं मधुमाषी मधु संग्रहें ॥ मधु आसो उद्यम बिन लहैं ॥ १६ ॥ ॥ गुरु तेरमो ॥ १३ ॥ चौपाई ॥ पुतलि काष्ठहुं की जो होई ॥ पगहु बुद्धि परसौं मतिकोई ॥ परस करत होवे दृढ बंधा ॥ ज्यौं करिंद करिनी संबंधा ॥ १७॥ मृत्यु जानि बनिता कौं तजे ॥ पंडित कबहूं भूलि न भजे ॥ भजते होवें करी समाना ॥ एकाहि मिलि मारे गज नाना ॥ १८ ॥ गुरु चउदमो ॥ १४ ॥ चौपाई ॥ हरि बिन सुने नहीं कछु औरा गयो चहै जे हरिकी ठौरा ॥ और सुनत गति होवे ऐसी ॥ व्याधगीत हरि नामकि जैसी ॥ १९ ॥ सुनो हरि न गति सुनिबहुरंगा ॥ शृंगी रिषि ज्यौं गनिका संगा ॥ अबलाधीन मुक्त नहि होई ॥ तिनके शब्द सुने नहि कोई ॥ २० ॥ गुरु पनरमो ॥ १५ ॥ चौपाई ॥ मुनि जिव्हा आसक्त न करे ॥ स्वाद कुस्वाद सकल पर हरे ॥ जिव्हा रसतें होवे काला ॥ जैसें मीन मरे ततकाला ॥ २१ ॥ जे मुनि सब अर्थनि परिहरे ॥ जाइ एकांत सबकौं करे ॥ सहज इंद्रि सब होवें क्षीना ॥ परिरसना न होइ आधीना ॥ २२ ॥ रसना सबकौं फेरे जीवावैं ॥ जबही रस संजोगहि पावैं ॥ यौं सब इंद्रिय जीतें कोई ॥ परिरसना करमें नहि कोई ॥ २३ ॥ त्यौं लगि सकल व्रथा करि जानो ॥ रसना जीति जीत करि मानो ॥ तातैं मुनि रसना वस करे ॥ और सकल साधन परिहरे ॥ २४ ॥ यों जे एक एक वस भयें ॥ तें सब जमके द्वारैं गयें ॥ परि जो एक पंच सब होई ॥ ताके दुष जानेंगा सोई ॥ २५ ॥ गुरु सोलमो ॥ १६ ॥ चौपाई ॥ बहुरि एक
७ गनिका पिंगला ॥ तातैं में शीष्यो गुन भला ॥ सो तुम सों भाषत हों राजा ॥ जातैं सरे तु-

मारे काजा ॥ २६ ॥ जनक विदेह पुरीमें वासा ॥ नाम पिंगला रूप निवासा ॥ एकवार श्रृंगार
बनायौ ॥ धानिक पुरुष मनमें ठहरायौ ॥ २७ ॥ बैठी निकासि भवनके द्वारा ॥ आगैं चल्यौ
 जाइ बाजारा ॥ कोई भलो आवतो देषे ॥ यह आवेगो यौं करि लेषे ॥ २८ ॥ जब वे आगेंको
चालिजावैं ॥ तब पिंगला ओर कों ध्यावैं ॥ औरो आइ आइ चालि जाहीं ॥ त्यौं यह दुष पावे
मन माहीं ॥ २९ ॥ कबहूं उठि भीतरकों जावें ॥ कबहूं व्याकुल बाहिर आवै ॥ अर्द्धराति ऐसी
विधि भयौ ॥ लोक बजार चलत रह गयौ ॥ ३० ॥ तब वह भग्न मनोरथ भई ॥ चिंता दुःष
अंतुल अनुभई ॥ अपनो तिरस्कार करि मान्यौ ॥ सब तैं हीन आपकौं जान्यौ ॥ ३१ ॥
तब ताको कोई बडभागा ॥ जातें उपज्यो दृढ वैरागा ॥ ज्यौं लगि नहि उपजे निरवे-
दा ॥ त्यौं लागि नही मिटै भव षेदा ॥ ३२ ॥ या भवन षशिष दुःष अनेका ॥ तामें पर-
म रत्न सुष एका ॥ बंधन बंध्यो जीव अपारा ॥ तिनको हरिजी रच्यौ कुठरा ॥ ३३ ॥
ताकी महिमा कही न जावे ॥ जाके भाग बडे सो पावे ॥ जाकौ नाम कहैं वैरागा ॥ सो
तो हरिको दियौ सुहागा ॥ ३४ ॥ जाहि देई सोइ ए पावे ॥ भव भय छोडि ब्रह्ममें जावे ॥ ता
तें मानव सब छिटकावे ॥ ज्यौं त्यौं करि वैराग उपावे ॥ ३५ ॥ तब पिंगलावचन उच्चारे ॥
बहुत भांति आपुहि धिक्कारे ॥ गए दिननकौं अति पछितावै ॥ सब तैं दृढवैराग बढावे ॥ ३६ ॥
॥ पिंगला उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ अहो एक मेरो अज्ञाना ॥ जाके हृदे बढयौ भ्रम नाना ॥ जल
बुद्बुद सम जो नर देहा ॥ तासों शुष हित कियो सनेहा ॥ ३७ ॥ पूरन सरवर तजि जल पासा॥ 
मृगजल धाइकरी जल आसा ॥ चार पदारथ दाइक देवा ॥ सदा निकटको लह्यौ न भेवा ॥ ३८ ॥

सत्य सदा सुष दाइक स्वामी ॥ सो छांडयौ निजपति घननामी ॥ जूठे सदा काल सुष मांही ॥ जातें दुःष सोक अधिकाही ॥ ३९ ॥ एसो पुरुष ताहिमें भज्यो ॥ आपहि दुःष आपकों सज्यो ॥ देह बेचमें देहहि पोष्यौ ॥ याहि भांति मनहीं संतोष्यौ ॥ ४० ॥ स्त्रीलंपट तृष्णातें दाह्यौं ॥ दुषित नरनसौं मे सुष चाह्यौं ॥ हाड मेद मज्ज अरु अंता ॥ मांस रुधिर त्वक रोम अनंता ॥ ४१ ॥ विष्ठा मूत्र स्वेद क्रमि एद्दा ॥ झरैं द्वार नव ऐसी देहा ॥ तामें कहो रमित को होई ॥ मो सों मूढ और नहिं कोई ॥ ४२ ॥ या पुर मांहि जनक नृप ऐसे ॥ सुर अधिकार सुरेस्वर जैसे ॥ तोहूं परिसब सुष कौं तजै ॥ है विदेह हरि चर्णनि भजै ॥ ४३ ॥ अरु सब प्रजा भजे हरि चरना ॥ जातें मिटै जन्म अरु मरना ॥ जाकौं भजै ब्रह्म शिव सेषा ॥ परिसो तिनहूं कदेन देषा ॥ ४४ ॥ ऐसैं प्रभुकौं जे नर सेवें ॥ तिनकौं रीझि आपकौं देवें ॥ ऐसो प्रभुमें नहि आराध्यौ ॥ कियो अनर्थ अर्थ नहि साध्यौं ॥ ४५ ॥ अबमें आप निवेद करौं ॥ और सकल उरतें परिहरौं ॥ अपनें पति हरजीके संगा ॥ सदा रमौं ज्यौं श्रीअरधंगा ॥ ॥ ४६ ॥ कहा और सुर नर प्रिय करिहै ॥ जे बापुरे आपुही मरि है ॥ अरु ते सुष कोई थिर नाहीं ॥ देषत सकल पलकमें जाहीं ॥ ४७ ॥ मेरी दृष्टि दुषी सब आवै ॥ कालाधीन कहा सुष पावै ॥ तातैं में यहनिश्चै जानी ॥ क्रपाकरी हेसारंगपानी ॥ ४८ ॥ जिन मेरे वैराग उपायौ ॥ अपनें चर्ण कमल चित लायौ ॥ यह हरि क्रपा विना नहि होई ॥ जो वैंराग लहे नर कोई ॥ ४९ ॥ जाते भव बंधन सब नासें ॥ हृदय रमापति आप प्रकासें ॥ में तो मंद भागिनी ऐसी ॥ त्रिभुवन मांहि नहीं को जेसी ॥ ५० ॥ ताको किसो हरिको भजनौं ॥ केसो

काल जालकौं तजनौ ॥ परिते दीनबंधु गोपाला ॥ पतित उधारन परम दयाला ॥ ५१ ॥ 
तिनहीं आप कृपा यह करी ॥ जिन मेरे उर ऐसी धरी ॥ अबलीया परसादहि सीसा ॥ निसदिन
भजौं चरन जगदीसा ॥ ५२ ॥ जितनैंया देहहि निरवाहौं ॥ सो इनहीं आरंभ सबाहौं ॥
सहज मांहि जो हरिजी ल्यावे ॥ ता करि या देहहि वरतावे ॥ ५३ ॥ या भवकूप पर्‍यो नित
प्रानी ॥ विषय आवरन दृष्टि छिपानी ॥ ता परि अजगर काल गिरास्यो ॥ यौं नर बहुत पा र
सौं पास्यो ॥ ५४ ॥ ताकौं हरि बिन कौंन छुडावे ॥ आपहिकों नहि छूट न पावे ॥ अरु आपहीं
आपकौं राषे ॥ जब सब वस्तु हृदैतैं नाषे ॥ ५५ ॥ जबहि हरिकिरि सरनहि आवे ॥ तबहि आपहीं
आपु छोडावे ॥ वे प्रभु निजानंदमय देवा ॥ कहा करै कोतिनकी सेवा ॥ ५६ ॥ परि सब जगत
काल छिटिकावे ॥ हरिकी सरन आपु सुष पावे ॥ तातें और सकल कौं तजौं ॥ प्रेम भाव हरि
चर्णनि भजौं ॥ ५७ ॥ या विधि आपुहि आप उधारौं ॥ आप नहीं भवसागर डारौं ॥ ॥
॥ अवधूत उवाच ॥ योंपिंगला परम गति पाई ॥ दूहूं लोककी आस मिटाई ॥ ५८ ॥ सीतल
है सज्यामें गई ॥ परमानंद हि प्रापत भई ॥ यह शिष्यामें तातें लीनी ॥ भली जानि उरमें
स्थिर कीनी ॥ ५९ ॥ ज्यौं लगि आसकरे नर कोई ॥ त्यौं लगि सुषी कदे नहिं होई ॥ जबहि
सकल आसा छिटकावे ॥ तब ततकाल परम पद पावै ॥ ६० ॥ ॥ गुरु सतरमो ॥ १७ ॥

दोहा ॥ यह गुरु सत्रहकी कही, शिक्षा में समुझाई ॥ अब औरनकी कहत
हौं, सुनियो हित चित लाई ॥ ६१ ॥ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणे एकादश 
स्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेअवधूतोपाख्यानेअष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा ॥ श्रीधर नवमे ध्यायमें, शिक्षा कही अनूप ॥ गुण चौवीसौं सुनतही, भयो कृतारथ भूप ॥ १ ॥ अवधूत उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ जो जो हित करि संग्रह करैं ॥ सोई सो अतिदुःख विस्तरैं ॥ जब हीं हित संग्रह छिटकावै ॥ तब अपार सुखसागर पावै ॥ १ ॥ कुर पंषि कहुं आमिष पायौ ॥ सोले उडयौ बहुत हित लायौ ॥ तब बहुतें कुररनि दुष दयौ ॥ आमिष तज्यौ सुषी तब भयौ ॥ २ ॥ यहमें शिष्य कुररतें पाई ॥ तातें संग्रह करो न कोई ॥ गुरु अठारमो ॥ १८ ॥ बहुरि शिष्य बालकतें पाई ॥ मेरे उर जातें मति आई ॥ ३ ॥ न मे मान अपमान न जांनों ॥ चिंता कछू चित्त नहिं आनों ॥ निशदिन रहो आतमा रामा ॥ कबहूं कछू न उपजे कामा ॥ ४ ॥ या भवमांहि द्वैकों सुखहै ॥ और सकल जीवनिकौ दुखहै ॥ उद्यम रहित बाल मति हीना ॥ अरु जो गुणातीत पद लीना ॥ ५ ॥ गुरु उगणीसमो ॥ १९ ॥ चौपाई ॥ एक विप्रके हुती कुमारी ॥ ता विवाहकी विप्र विचारी ॥ ताके मात पिता इक वारा ॥ और गाम कहु काम सिधारा ॥ ६ ॥ समाचार इक विप्रनि पाये ॥ व्याह काज तिनके घर आये ॥ कन्या वचन किसीसौं भाषे ॥ तिनतें द्विज आदर करि राषे ॥ ७ ॥ तब तिनके भोजनकी धारी ॥ चावर पोटन लगी कुमारी ॥ तब ताकै कर ज्यौं ज्यौं दोलें ॥ त्यौं हीं त्यौं कर कंकन बोलें ॥ ८ ॥ तिन लज्जित व्है सकल उतारें ॥ द्वै द्वै दुहु हाथनिमें धारें ॥ बहुरि लगी जब चावर छरनें ॥ तोहूं लगै शब्दते करनें ॥ ९ ॥ तब तिन एक एक हिं राष्यौ ॥ चुपकरि रहें बहुरि नहि भाष्यौ ॥ में विचरत हों इच्छाचारी ॥ तातें देषि हृदय में धारी ॥ १० ॥ बहुत निसंग बढै बकवादा ॥ दूजैंहु तै होइ अनुवादा ॥ तातें रहें अकेला जोगी ॥ सदा विचार ब्रह्म रस भोगी ॥ ११ ॥ ॥

गुरु वीसमो ॥ २० ॥ ॥ चौपाई ॥ आसन प्रान देह मन बाधे ॥ दृढ वैराग हृदेमें साधे ॥
निहचल व्है नित ब्रह्म विचारै ॥ यौं क्रम रज तमकौं जारे ॥ १२ ॥ त्यौं त्यौं निहचल बढे
समाधी ॥ तजते जावे सकल उपाधी ॥ तब ज्यौं पावक ईंधन हीना ॥ त्यौं होवें निज पदमैं
लीना ॥ १३ ॥ तब कबहूं कछू द्वैतन जानै ॥ सिलास मान देंह गुण भानै ॥ ज्यौं आगें
व्है नृपती गयौ ॥ सेना शब्द बहुत विधि भयौ ॥ १४ ॥ परि सरकारक भेद न पायौ ॥ या
विधि सरमैं चित्त लगायौ ॥ एसी शीष लई में यातैं ॥ निहचल बुद्धि भई मम तातैं ॥ १५ ॥
॥ गुरु एकवीसमो ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ ज्यौं लोकनितैं डरै भुजंगा ॥ बसें ग्रहामें रहे
असंगा ॥ सावधान अति थोरै बोले ॥ गत्यादिक अंतर नहि खोले ॥ १६ ॥ ग्रहारंभ सोदुषको
मूला ॥ ते आरंभे जे नर भूला ॥ सरप पराए ग्रहमें रहे ॥ या विधि मुनि अहि शिक्षा गहे ॥
॥ १७ ॥ गुरु बावीसमो ॥ २२ ॥ चौपाई ॥ एकै आप निरंजन देवा ॥ जाको कोइ लहें नहि
भेवा ॥ आपहि तें माया विस्तारे ॥ सत रज तम बहु भेद पसारे ॥ १८ ॥ बहुरि आपहीं सब
संग्रहैं ॥ निजानंदमय एकैं रहैं ॥ तातें ए सब मिथ्या जानो ॥ याको करता सो सत मानो
॥ १९ ॥ यह शिक्षा मकरीतें लेवे ॥ बसतें परें ब्रह्मकौं सेवे ॥ ॥ गुरु त्रेवीसमो ॥ २३ ॥
जहां जहां यह मनकौं धारे ॥ निसिवासर कबहूं नहि टारे॥२०॥ राग द्वेष भय क्यौं हीहोई ॥ होत रूप
ताहीको सोई ॥ भृंगी कीटहु ते यह लीनों ॥ त्यों मन हरि चर्णनि थिर कीनों ॥२१॥ गुरु चोवीसमो
॥ २४ ॥ चौपाई ॥ यह चोवीस गुरुनकी शिक्षा ॥ तोसों में भाषी दृढ दिक्षा ॥ अब तनतें
सीष्यौ सो कहौं ॥ तेरे सब आज्ञानाहि दहौं ॥ २२ ॥ मेरी देह मोहि समुझावे ॥ हृदय ज्ञान

वैराग उपावै ॥ ज्यौं बालापन गयो बिलाई ॥ त्यौं अब यह जोबनबी जाई ॥ २३ ॥ आवै जरा मरणता आगैं ॥ बहु विधि दुःख देहकौं लागैं ॥ स्वान शृगालनि को यह भक्षा ॥ तिन सौं प्रीत न जोर दक्षा ॥ २४ ॥ पुत्र कलत्र अर्थ पशु गेहा कुल कुटंब अरु सेवक जेहा ॥ तिन सौं मिलि जा देहहि सेवें ॥ सोई अंत महादुःख देवें ॥ २५ ॥ आगेंकुं बह कर्म कमावै ॥ अब जमके दरबार पठावै ॥ रस निमित्त खेंचें नित रसना ॥ प्राण सदा चाए जल असना ॥ २६ ॥ नैन रूप अरु शब्दहि श्रवना ॥ इंद्रिय चहैं नारिको रवना ॥ त्वचा परस नासिका गंधा ॥ चरन गवन कर करिहैं धंधा ॥ २७ ॥ या विधि सब मिलि छूटें ताकौं ॥ बंध्यौ देहसु देषें जाकौं ॥ तातैं नेह देहकौं तजियैं ॥ सदा निरंतर हरि कौं भजियैं ॥ २८ ॥ हरि जब माया गुण विस्तारैं ॥ तब नाना विधि देह संवारैं ॥ तिन तिन मन संतुष्ट न भयौ ॥ बहुर्‍यै मानव तन निरमयौ ॥ २९ ॥ ताकौं देषि परम सुष पायौ ॥ तामें अपनो धाम बनायो ॥ तब हरिजी बोलें यह बानी ॥ जोइ प्रगट यह बेद बखानी ॥ ३० ॥ मोहि लहें सो या करिलहै ॥ या करि सब भव बंधन दहै ॥ जब मेरे हित करें उपाया ॥ तब मैं याकों करों सहाया ॥ ३१ ॥ तातें यह अतिदुर्लभ देहा ॥ श्रीभगवान रच्यौ निज गेहा ॥ अति दुर्लभ कहु जतन न पावे ॥ जो पावे तो थिर न रहावे ॥ ३२ ॥ प्रतिदिन मृत्यु निरंतर ग्रासे ॥ एकदिना ततकाल बिनासे ॥ जरा रोग भय सोक निधाना ॥ जामें पलक सुषी नहिं प्राना ॥ ३३ ॥ तातें ताहि पाई करि राजा ॥ करि लीजियैं आपनो काजा ॥ जाते यह छूटें संसारा ॥ जाके दुषको वारन पारा ॥ ३४ ॥ निशदिन देव निरंजन भजियैं ॥ व्है भय भीत विषय सब तजियैं ॥ विषय

षान पान सुत दारा ॥ ए सब देहनि वारंवारा ॥ ३५ ॥ तातें त्याग सकलको कीजे ॥ हरिके
चरण कमल चितदीजें ॥ या विधि इनतें शिक्षा पाई ॥ तब मैं और सकल छिटकाई ॥ ३६ ॥
भुवमें बिचरौं व्है निहसंगा ॥ या तनहूं कौ छांड्यौ संगा ॥ सदा रहों हरिचरण निवासा ॥
बहु विधि देषों सकल तमासा ॥ ३७ ॥ बहुत गुरुनितें पूरण ज्ञाना ॥ जहं तहं लेवै साधु सु-
जाना ॥ छूटैं अहंकार अरु ममता ॥ हिरदे आनि विराजै समता ॥ ३८ ॥ निरगुनसगुन
भेद पहिचानै ॥ सार असार अथिर थिर जानै ॥ जहां तहां ले ले दृष्टांत ॥ संसे द्वैत मिटावे
सांत ॥ ३९ ॥ परिए परमारथ गुरु नाहीं ॥ ए सब गुरुहैं सतगुरु मांहीं ॥ सतगुरुतें सब ज्ञानहि
पावैं ॥ तब सब जग अग्यांन मिटावैं ॥ ४० ॥ तातें मेरे सदा आनदा ॥ हृदय बिराजैं पर
मानंदा ॥ या विधि जे जे हरिकौं सेवैं ॥ तिनकौं हरीचरण निज देवैं ॥ ४१ ॥ ॥ श्रीभग
वानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ऐसें यदुकौ वचन सुनायै ॥ मनके भ्रम संदेह गमायै ॥
राजा बहु विधि पूजा कीनी ॥ करि प्रणाम प्रदक्षिणा दीनी ॥ ४२ ॥ तब राजा
कौं करि सनमाना ॥ दत्तात्रे मुनि कियो प्रयाना ॥ राजा वचन धारी उरमांहीं ॥
सबकौ संगत ज्यौं क्षन मांहीं ॥ ४३ ॥ ब्रह्म दृष्टि सबहीं में आनी ॥ ऐसो भयो
परम विज्ञानी ॥ सो राजा जब बडो हमारो ॥ जिन अपनौ भव संकट टारो ॥ ४४ ॥
तातें उद्धव और न कोई ॥ गुरु आपुनो आपुहि होई ॥ आपुहि बुडैं आपुहि तारे ॥ आपुहि
जन्मे आपुहि मारे ॥ ४५ ॥ ॥ दोहा ॥ यह भाष्यौ विज्ञानमय, सब अद्वैत उपाय
॥ अब तोसौं साधन कहौं, बहुत भांति समुझाय ॥ ४६ ॥ इति श्रीभाग-

॥२८॥

वतेमहापुराणेएकादशस्कंधेभगवदुद्धवसंवादेअवधूतइतिहाससमाप्तिर्नामनव-
मोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥

दोहा ॥ ॥ होत देह संबंधतैं, याकैं संसृति काल ॥ श्रीधर दशमें ध्यावमैं, वरणत कृष्ण कृपाल ॥ १ ॥ सामसु साधन बोधको, आतम तत्त्व विचार ॥ सो पुनि वरननहोयगो, उद्धव प्रश्नजुसार ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥

चौपाई ॥ शुन उद्धव अब साधन कहौं ॥ तेरो सब संदेहहि दहौं ॥ जातें उपजे ब्रह्मज्ञाना ॥ छुटै और सकल भ्रम नाना ॥ १ ॥ मम भक्तनि जे मारग भाषे ॥ ते सब हृदय बेठिमें आषे ॥ ते कहिये आतमके धर्मा ॥ और सबैं बंधनके कर्मा ॥ २ ॥ तिनको सावधान है जाने ॥ वर्णाश्रम कुल मिथ्यामाने ॥ जै जै बहु आरंभानि करैं ॥ सुख चाहैं निसदिन दुखभरैं ॥ ३ ॥ आगै कौं बंधन उपजावै ॥ तिनहि संग जम द्वारै आवै ॥ यौं विचारि आरंभानि तजे ॥ है निहकामो चरण मम भजे ॥ ४ ॥ जहां लगीहै नाना बुद्धी ॥ सो उद्धव सब जांन कुबुद्धी ॥ द्वैतभावसो भ्रम करि जानौ ॥ सुपन मनोरथ श्रम करि मानौ ॥ ५ ॥ तातैं और कर्म सब तजो ॥ नित नैमित्तिक कछु इक भजो ॥ तेउ कछु सत्य नहिं जानै ॥ करे तु करे नहीं तौ भानै ॥ ६ ॥ भक्ति मांहि जो अंतर परैं ॥ तेतो भुलिन कबहूं करैं ॥ जो जा समय न अंतर जाने ॥ तो ता समय सहजमें ठाने ॥ ७ ॥ यमानि मांहि निश्चल चित धरे ॥ नियमनि कौं भावें तो करे ॥ ब्रह्म विज्ञ गुरु सरनहिं जावे ॥ जातें भेद सकलको पावै ॥ ८ ॥ यम अरु नियम

कछू नहिं सेवे ॥ सदगुरु कहे शीष सों लेवे ॥ मान रहित मत्सर नहिं जानें ॥ तन मन अर-
पे प्रीति कौं ठानें ॥ ९ ॥ जहँ तहँ तें ममता परिहरे ॥ सावधान आलस नहिं करे ॥ तजे असू-

या वृथा न बोले ॥ तन मन निहचल कदे न डौले ॥ १० ॥ श्रद्धा सहित आशक्ति होई ॥
गुरुचरणनि शिषसेवे सोई ॥ दारा सुत बित गेह कुटंबा ॥ सकल भूत आतम पितु अंबा
॥ ११ ॥ तिन सबहिन कौं सम करि देषें ॥ मैं मेरो करि कदें न लेखें ॥ रहे उदास आस परि
हरे ॥ निशदिन ब्रह्म विचारहि करे ॥ १२ ॥ सूक्ष्म स्थूल देह द्वे जेहें ॥ मर्म
रूप मायाके तेहें ॥ इन दोनौं तैं आतम दूर ॥ स्वप्रकाश चेतन भरपूर ॥ १३ ॥
स्थूल शरीर प्रगट जड एहा ॥ चेतन करै ताहि वह देहा ॥ सो वहहीं तन जड
है अंगा ॥ चेतन होई आतमा संगा ॥ १४ ॥ सो आत्मा दुहूंतें न्यारा ॥ दुहूं प्रकासक
दुहु आधारा ॥ ज्यौं इक काष्ठ अनल परिजैरे ॥ सो दुजे परकासहि करे ॥ १५ ॥ परिसो अन-
ल दुहूं तें न्यारा ॥ स्वप्रकाश आतम आधारा ॥ बहुधा सो बहु काठनि संगा ॥ पावै उतपति थि-
ति अरु भंगा ॥ १६ ॥ त्यौं द्वे तन हरि माया किये ॥ ते आतमा आपु करि लियें ॥ तिन संग
जन्म मर्ण दुष पावै ॥ लहैं अनंद जबहि छिटकावै ॥ १७ ॥ ताते बहु विधि करै विचारा ॥ आत
म जानें सबतें न्यारा ॥ एक अजन्मा अरु अविनासी ॥ चैतन घन पूरण सुष रासी ॥ १८ ॥
तन उपजें बिनसैं बर ताहीं ॥ परम अशुद्ध शुद्ध नाहिं काहीं ॥ सकल विकारनिकौसंघाता ॥
प्रगटहि दीसे आवत जाता ॥ १९ ॥ मेरो यासो केसो संगा ॥ में चेतन यह जड बहुरंगा ॥ यौं 
बिचारि त्यागे तन ममता ॥ आतम दृष्टि सकलमें समता ॥ २० ॥ या विधि हृदय होइ थिर ज्ञाना ॥

मिलै ब्रह्म छूटैं सब नाना ॥ प्रथम अराणि आस्थिर गुरु देवा ॥ दूजी शिष्यकरै तिन सेवा ॥२१॥ गुरुके बचन श्रवन मंथाना ॥ या विधि उपजैं पावक ज्ञाना ॥ उपजैं ज्ञान तनकैं गुन दहैं ॥ कर्मबीज कोई नहिं रहैं ॥ २२ ॥ तब ज्यौं पावक तेज समावैं ॥ इंधन विना न पलक रहावैं ॥ त्यौं आतमा ब्रह्ममय होई ॥ इंधन कर्म भस्म करि सोई ॥ २३ ॥ अरु जे मूढन यह विधि जानैं ॥ ते बहु विधि कर्मनि कौं ठानैं ॥ ते कर्मनिकैं फलनि भुगावैं ॥ जन्म मर्णको अंत न आवैं ॥ २४ ॥ जहां जाइ तहां तहां काला ॥ निशदिन रहे सदा बिहाला ॥ यह जगदीस त्यौं को त्यौंहीं ॥ परि एकोपल रहे न यौंहीं ॥ २५ ॥ औरे और होइ आकारा ॥ तिन संगति मन बहुत प्रकारा ॥ कबहूं ज्ञान हृदैं नहिं आवै ॥ जन्म जन्म मरि मरि दुष पावै ॥ २६ ॥ कर्म निंजो कर्मनि आचरैं ॥ सुष अरु जो दुष भोगनि करैं ॥ ए चारौ दीसे परितंत्रा ॥ तातें सब तजियें यह मित्रा ॥ २७ ॥ जै पंडित श्रुति स्मृति जानैं ॥ तत्त्व लहै विनु कर्मनि ठानैं ॥ ते मूरषहि देह अभिमानी ॥ आपुहि आप कहावत ज्ञानी ॥ २८ ॥ हरि जन संग न कबहूं करैं ॥ तत्त्व न सुनैं कर्म विस्तरैं ॥ तिनतैं भले जे कछु नहिं जानैं ॥ तत्त्व वचन सुनि हृदये आनैं ॥ २९ ॥ जद्यपि अंत सुषनि कौं जानैं ॥ अरु क्षणभंगुर देहनि मानैं ॥ परिसो तत्त्व न समझे तेऊ ॥ जातें लहैं भक्तिको भेऊ ॥ ३० ॥ काल मृत्यु जाकौं नित ग्रासैं ॥ ताकौं कहो कहां सुख वासैं ॥ ज्यौं कोई मारन कौं लीजैं ॥ सूली निकट पडो ले कीजैं ॥ ३१ ॥ अरु ताकौं जो भोग भुगावैं ॥ सो वह कहौ किसो सुष पावैं ॥ अरु त्यौंहि न स्वर परलोका ॥ मद मत्सर निंदा भय सोका ॥ ३२ ॥ तिनके हेत जतन बहु करैं ॥ सिद्धन होई विघन अति परैं ॥ ज्यौं षेतीमें विघन अनेका ॥ त्यौं स्वर्गादि

लहैको एका ॥३३॥ अरु जो लह्यौ तोहु थिर नाहीं ॥ देषत बिनासि जाइ पल मांहीं ॥ ईहां यज्ञकरैं बहु
कोई ॥ अरु जो अंतराय नहिं होई ॥ ३४ ॥ तब सो स्वर्ग लोक कौं जावैं ॥ ह्वै करि देव दिव्य
॥३०॥ सुष पावैं ॥ अपनैं पुन्यनिकौं उपजायौ ॥ उत्तम जाहि विमानहि पायौ ॥ ३५ ॥ बहु गंधर्व
गानकौ करैं ॥ बहु सुंदर नारी मन हरैं ॥ इच्छा होइ तहां चलि जावैं ॥ सहित विमान विलंब
न लावैं ॥ ३६ ॥ अमृत पान तहां नित करैं ॥ वस्त्राभर्ण देह बहु धरैं ॥ यौं नित मगन बहुत
सुष पावैं ॥ परवेकी कछु चित्त न आवैं ॥ ३७ ॥ जेतो पुन्य इहांको होई ॥ ते तो रहे स्वर्गमैं
सोई ॥ पुन्य क्षीण पुनि होवे जबहीं ॥ काल तहां ते ढाहे तबहीं ॥ ३८ ॥ सो सुष कहो तज्यौं
क्यौं जावे ॥ ते सुषकी कछु कहन आवैं ॥ रह्यो चैहे परिक्यौं करि रहैं ॥ काल अधीन महादुष
लहैं ॥ ३९ ॥ कोई सुष पावैं कहु जेतौ ॥ छीन लिये होवे दुष तेतौ ॥ सो तजि स्वर्ग भूमिमें आवै
पीछैं जोनि अनंतानि पावे ॥ ४० ॥ यह भाषी बिधिकी गति तासौं ॥ अब निषेधकी सूनि यौं
मोसौं ॥ जो कुसंगमें प्रानी परे ॥ तो बहुभांति अधर्म निकरे ॥ ४१ ॥ वंछे काम इंद्रि आधीना ॥
इस्त्रीलंपट लोभी दीना ॥ बहु जीवनकी हिंसा करैं ॥ भूत प्रेतगनकौं अनुसरैं ॥ ४२ ॥ मैंहीं एक
बसौं सब माहीं ॥ तिनके द्रोह नरकमें जाहीं ॥ बहुरि आनिथा बरतन लहे ॥ जन्म जन्म बहु संकट
सहे ॥ ४३ ॥ तातें विधि निषेध जे करैं ॥ ते सब जन्म मरनने परै ॥ कर्म करे तिन तै तन धरे ॥ तन ध-
रि धरि बहु दुष सों मरे ॥ ४४ ॥ तातैं प्रवृत्तिमें सुख नाहीं ॥ भावें ब्रह्मलोककि न जाहीं ॥
लोकपाल सब लोकसमेता ॥ इतनो रहै ब्रह्म दिन जेता ॥ ४५ ॥ सोई ब्रह्मा अंतन रहे ॥ तीतर ॥३०॥
बाज काल त्यौं गहे ॥ अग्नि रहे मेरे भय माहीं ॥ पवन वहे निहचल पल नाहीं ॥ ४६ ॥ सूरज

चंद एक रस चलैं ॥ मरजादा तैं सिंधु न टलैं ॥ मृत्यु निरंतर सबकौं ग्रासे ॥ मेरे कालरूपते त्रासे ॥ ४७ ॥ तातैं कहूं न सुष प्रवृत्ती ॥ सुष चाहे सो गहे निवृत्ती ॥ अरु ए इंद्रिय कर्म उपावैं ॥ तिनकौं रज सत तम वरतावैं ॥ ४८ ॥ सो आतम इंद्रिय सब होई ॥ तातैं सुष दुष पावे सोई ॥ परि आतमा अकरता जानो ॥ भोग रहीत ताहि तैं मानो ॥ ४९ ॥ कर्मरु भोगादिक है जेते ॥ इंद्रिय अरु गुण कृत सब ते ते ॥ ज्यौं लगि यह इंद्रिय गुण बंधा ॥ त्यौं लगि मिटैं न गुण संबंधा ॥ ५० ॥ तन मन बंध मिटैं नहि तालौ ॥ नानाभांति बहुत विधि जालौं ॥ नाना भाव रहे जब लगैं ॥ पराधीन आतम तब लगैं ॥ ५१ ॥ पराधीन जब लागि यह रहे ॥ तब लगि काल निरंतर गहैं ॥ तातैं जो प्रवृत्ति रत होवैं ॥ जुग जुग जन्म जन्म ते रोवैं ॥५२॥ प्रथमहु तो मे एक निरंजन ॥ ताही तैं उपज्यौ यह अंजन ॥ काल आत्मा लोकरु वेद ॥ धर्म सुभाव बहुत विधि भेद ॥ ५३ ॥ ए सब माया सत्य न कोई ॥ तातैं बुध अनुरक्त न होई ॥ एक निरंजन आतमजानै तब सब संकट भवके भानै ॥ ५४ ॥ लोकरु वेदवासना तजैं ॥ इंद्रिय देह विषै नाहिं भजै ॥ मन पहुचे सो मिथ्या लेषैं ॥ मनातीत सो जहां जहां देषैं ॥ ५५ ॥ ब्रह्मरु आतम एक विचारैं ॥ या विधि सकल उपाधि जारैं ॥ तबहिं एक ब्रह्मकौं पावैं ॥ छूटे द्वैत बहुरौं नहिं आवैं ॥ ५६ ॥ यह आतम देह विवेका ॥ याकौं जानि एककौ एका ॥ एसैं बचन कहे जब कृष्ण ॥ उद्धव दास करी तब प्रश्ण ॥ ५७ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु जो यह सारौ भर्मा ॥ इंद्रिय देह विषय गुण कर्मा ॥ अरु आतमा अनीह अबंधा ॥ ताकौं कियो कौंन विधि बंधा ॥ ५८ ॥ अरु जो बहुरि ज्ञान कौं लहैं ॥ छोडि उपाधि देहमें रहैं ॥ सो बहुर्‍यौ क्यौं लिप्त न

होई ॥ अरु क्यौं करि जानी जैं सोई ॥ ५९ ॥ कैसै बिचरे कैसै रहे ॥ कैसैं जीवे कैसैं कहे ॥
कैसैं पहिरे कैसे सोवैं ॥ कैसैं सुनैं कोन विधि जोवैं ॥ ६० ॥ अरु आतम एकै द्वै नाहीं ॥ एक
॥३१॥ मुक्त क्यौं एक बंधाहीं ॥ एके बंधे एक क्यौं मुक्ता ॥ एतो बहुत एक कौं उक्ता ॥ ६१ ॥ गुण
अनादि आतमा अनादी ॥ तातैं यह तो बंधन आदी ॥ नित्य मुक्त क्यौं कहियें देवा ॥ या
कौ मोहि बतावो भेवा ॥ ६२ ॥ ॥दोहा ॥ ॥ ए उद्धव निज भक्तकै, सुनि करि
निर्मल बैन ॥ ताको प्रति उत्तर कह्यौ, हरिजी करुणा ऐन ॥ ६३ ॥
॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांद-
शमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ बंध मोक्ष हरि भक्ति,भक्त इनके लक्षण सार ॥ कहे ग्यारैंमैं
ध्यायमैं, श्रीधर नंदकुमार ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ सुनि
उद्धव अब परम ज्ञाना ॥ जातें भेद मिटे तुम नाना ॥ बंधरु मुक्त तोहि समजाऊं ॥ तेरो सब
अज्ञान मिटाऊं ॥ १ ॥ बंध मुक्त जो कहियै कोई ॥ सो तो सकल गुणनितें होई ॥ ते सब गुण
मायाके जानौ ॥ इनतैं दूरि आतमा मानौ ॥ २ ॥ सौकरु मोह जन्म अरु सुख ॥ भय मरना-
दिक अरु बहुदुःख ॥ ए सारे माया कृत केवल ॥ सदा एक आतमनिह केवल ॥ ३ ॥ ज्यौं सुप-
न सुखदुःख अनेका ॥ तिनमैं आतमकौं नहीं एका ॥ ते सब बुद्धिरु मनकों होवे ॥ इंद्रिय देह ॥३१॥
प्रगटतैं सोवे ॥ ४ ॥ पुनि बुध्यादिक कछु नहिं रहैं ॥ ताकौं प्रगट शुषोपति कहै ॥ तब आतमा

निरंतर होई ॥ परिताकौं सुखदुख नहिं कोई ॥५॥ ज्यौं सुषपति में आतमर कैहं ॥ त्यौं व्यवहार पीछ-लें गहैं ॥ परिताकौं कोई न विकारा ॥ ए सब मायाकै व्यवहारा ॥ ६ ॥ परि आतमा आप महि मानैं ॥ तातै सुखदुख बहु विधि जानै ॥ परि आतमा एकरस नित्य ॥ बंध मोक्ष ए सकल अनित्य ॥७॥ उद्धव जानो एक अविद्या ॥ अरु दूजी जो कहिए विद्या ॥ एहैं दोऊ मेरी शक्ती ॥ इनमें सबहिन की आशक्ती ॥ ८ ॥ बंधन कर्‍यौ चहौ में जाकौं ॥ प्रेरि अविद्या पठवौं ताकौं ॥ अरु जाकै बंधन हि मिटाऊं ॥ ताकौं विद्या शक्ति पठाऊं ॥ ९ ॥ ए दोऊ मुक्ती अरु बंधा ॥ ते मम शक्तिनके संबंधा ॥ आतम हैं सो मेरा रूपा ॥ सबते न्यारो परम अनूपा ॥ १० ॥ ज्यौं शशिकै प्रतिबिंब अनेका ॥ परिते बहुत नहिं सब एका ॥ अरु जा जाको घट बिन सोई ॥ सोई सो सशि माहि समाई ॥ ११ ॥ त्यौ सब आतम मेरो अंसा ॥ परि घट संग लेहैं दुष संसा ॥ घटकौ नासकरै सो तबहीं ॥ विद्या शक्ति जाहि द्यौं जबहीं ॥ १२ ॥ सोई सो तब मो कौं लहैं ॥ और सकल भवहि मे रहैं ॥ अरु प्रतिबिंब घटनि हूं माहीं ॥ सदा अलिप्त लिप्त कहूं नाहीं ॥ १३ ॥ प-रिघट संग लिप्तसैं होवैं ॥ अरु त्यौं लिप्त और हूं जोवैं ॥ त्यौं आतमा सकल तैं न्यारा ॥ सदा अलिप्त न लिपैं विकारा ॥ १४ ॥ परि यातनमें आप बंधना ॥ ताकै संग लहैं दुख नाना ॥ अबमें बद्ध मुक्तकी कहौं ॥ तेरे सब संदेहहि दहौं ॥ १५ ॥ एक देहमें द्वैको वासा ॥ परमातम आतमकै पासा ॥ ज्यौं द्वे पंषि रहैं तरु मांहीं ॥ तरुतें भिन्न लिप्त कहु नाहीं ॥ १६ ॥ दोऊ चेतन एक समाना ॥ सषा रूप एक अस्थाना ॥ आपहु तै तिन बासा कियौ ॥ तिनमें एक तरुहि चित दियौ ॥ १७ ॥ देह वक्षकै सुष फल खावै ॥ तातें दुख आपुहितें आवैं ॥ तब ता काज कर्म

बहु करैं ॥ तिनतें जुग जुग जनमे मरै ॥ १८ ॥ देंह मरे मरनौं करि जाने ॥ देह जन्मतें जन्मही
माने ॥ एसें सदा बहुत दुष पावें ॥ द्वै मैं सो आतमा कहावें ॥ १९ ॥ परमातमा देह तरु मांही॥
सुष फल कबहूं खावै नाहीं ॥ तातें कछु कर्म नहिं गहे ॥ निजानंदमय निहचल रहें ॥ २० ॥
यो परमातम आतम जानैं ॥ देह अतीत दुहूंकौं मानैं ॥ सुष फल अरु आरंभनि तजैं ॥ मुक्ति
होइ परमातम भजैं ॥ २१ ॥ ज्यौं तन माहि मुक्त परमातम ॥ विद्या पाइ बसैं त्यौं आतम ॥
तनमें है परितनमें नाहीं ॥ आपुहि जान भयौ थिर मांहीं ॥ २२ ॥ सुपन देषि ज्यौं जागे कोई ॥
सो पुन सुपन चितारै सोई ॥ परि सो सुपन देहसो सुपना ॥ मिथ्या जानि भरमतें उपना ॥२३॥
अरु जो सहित अविद्या होई ॥ सो तिनमैं नाहि परि हैं सोई ॥ ज्यौं सोवत सुपना तन पावैं ॥
ताकौं आप जानि मन लावैं ॥ २४ ॥ तनमें बद्ध मुक्त जे जीवा ॥ बद्ध जीव मुक्तसो शीवा ॥
बहुरि कहौं मुक्तके लक्षण ॥ जिनकौं जानी होइ विचक्षण ॥२५॥ देखें सुने कहें कछु करै ॥ सो कछु
कदे हृदे नहिं धरैं ॥ सकल अर्थ इंद्रिय कृत जानैं ॥ आपुहि एक अकरता मानैं ॥ २६ ॥ पूर्व
कर्म आधीन शरीश ॥ कर्म करें इंद्रिय मन सीरा ॥ तनमें वास कियो नहिं जानैं ॥ मूरख आपुहि
करता मानैं ॥ २७ ॥ बहुरि मुक्त एसी विधि रहै ॥ अहंकार यातन कौ दहै ॥ आसन अट-
न असन अरु सयना ॥ दरस परस अघ्रानरु बयना ॥ २८ ॥ इनमैं इंद्रियकौं वरतावै ॥ आपन
कछुहू प्रीति लगावै ॥ रहै माहि परिलिप्त न होई ॥ ज्यौ आकाश पवन रवि तोई ॥ २९ ॥
विद्यानाम असी इक पाई ॥ दृढ वैराग सरान चढाई ॥ तासो काटै संशय सारै ॥ जागि सकल
भ्रम भेद निवारै ॥ ३० ॥ इंद्रिय प्रान बुद्धि मन माहीं ॥ कबहूं कछु वासना नाहीं ॥ सो जद्य

पितनहूं मैं दरसैं ॥ परिसो मुक्त तनहिं नहिं परसैं ॥ ३१ ॥ एक दुष्ट तन पीडा करैं ॥ एक
बहुत पूजा विस्तरैं ॥ परि बुध रोष तोष नहिं आनैं ॥ सकल देह कृत मिथ्या मानैं ॥ ३२ ॥
विधि निषेध जो कोई करै ॥ किंवा कहैं ग्रंथ विस्तरै ॥ मुनि कछु भलौं बुरौ नहिं देषे ॥ गुन
अरु दोष रहित सम लेषे ॥ ३३ ॥ विधि निषेध नाहीं कछु करैं ॥ ना कछु कहैं नहिरदे धरैं ॥
निसदिन रहैं ब्रह्म रस मत्त ॥ इछामैं ज्यौं जड उन मत्त ॥ ३४ ॥ एसैं चिन्ह मुक्तमैं मानौ ॥
अरु सुमुक्षुकौ साधन जानौ ॥ मुक्त भयौ जे चाहै कोई ॥ ए सब साधन साधे सोई ॥ ३५ ॥
जिन सब शब्द ब्रह्महै जान्यौ ॥ परि निज तत्त्व नहीं पहिचान्यौ ॥ इन साधनानि माहि रत
नाहीं ॥ तिनके श्रम सब मिथ्या जाहीं ॥ ३६ ॥ शब्द ब्रह्म ब्रह्मके काजा ॥ हरिजी हरिभक्त-
नके साजा ॥ तातैं ब्रह्म विना श्रम ऐसै ॥ बंध्या गाइ सेइजें जैसै ॥ ३७ ॥ वंध्या गाइ दुग्ध
बिन होई ॥ पराधीन तन राषे कोई ॥ असति नारी पुत्र अन्याई ॥ धर्म विहीनौ धन
अधिकाई ॥ ३८ ॥ ज्यौ इनतें दिन दिन दुख होई ॥ कबहू सुख पावै नहीं कोई ॥ मोहि बिना
त्यौं बहुविधि बानी ॥ केवल बंध नहीं कों जानी ॥ ३९ ॥ मोतें जग उतपति संहारा ॥ सब
प्रतिपालन विविध प्रकारा ॥ किंवा जन्म कर्म बहुतेरे ॥ जा वानीमें नाहीं मेरे ॥ ४० ॥ मेरे
नाना विधि संबंधा ॥ जा बानीमैं नाहीं बंधा ॥ बंध्या बानी ताहि विचारैं ॥ निहफल जानि
न पंडित धारैं ॥ ४१ ॥ या विधि जानी बहुत प्रकारा ॥ बहुत भांति करि बहुत विचारा ॥
जहां तहां तें मनहि निवारैं ॥ पूरण एक ब्रह्ममैं धारैं ॥ ४२ ॥ जो ताजि दूजे नाना अर्थ ॥
९ मन धारणकौं नहीं समर्थ ॥ सो मम हेत कर्म सब करे ॥ प्रेम मगन फल जस परिहरे ॥ ४३ ॥

औरे कर्म अकर्म विकर्मा ॥ बंधन जानि तजे सब धर्मा ॥ जाही तैं उपजै मम भक्ती ॥ ताही
में राषे अनुरक्ती ॥ ४४ ॥ श्रद्धा सहित सुने गुन मेरे ॥ जिनतें कर्म न आवे नेरे ॥ गावे
समरैं अस्तुति करैं ॥ प्रेम सहित निशादिन विस्तरै ॥ ४५ ॥ जे कछु कर्म काम
अरु अर्थ ॥ करै सकलतै मेरै अर्थ ॥ मम आधीन निरंतर रहे ॥ मन क्रम
वचन आननहि गहे ॥ ४६ ॥ या विधि होवे निश्चल भक्ती ॥ और सकलतें सहज
विरक्ती ॥ तब मेरो निजरूपहि जानै ॥ तातैं नाना भेदहि भानै ॥ ४७ ॥ तब ताही प-
द मांहि समावैं ॥ जातें जन्म फिरी नहिं आवैं ॥ परि यह सत संगत तें होई ॥ सत संगति विनु
लहे न कोई ॥ ४८ ॥ भक्तानि बिना भक्ति नहि पावैं ॥ भक्ति विना नहि मो मैं आवैं ॥ ता तैं स-
त संगतकूं करै ॥ दूजो जत सकल परिहरै ॥ ४९ ॥ दोहा ॥ ए सुनि हरजीके वचन, मन
में वाढी प्यास ॥ तव भक्तन अरु भक्तिकैं, लंछन पूछैं दास ॥ ५० ॥ उद्धव उ-
वाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु पूरण परम अनंता ॥ या जग बहुत भांतिके संता ॥ जाको संत
कहौ तुम देवा ॥ ताकौ मोहि बतावो मेवा ॥ ५१ ॥ अरु जो भक्ति कौंन जो ठानैं ॥ जातै तब निज
रूपहि जानैं ॥ तब उद्धवको देबहु माना ॥ कृपासिंधु बोले भगवाना ॥ ५२ ॥ श्रीभगवानु-
वाच ॥ ॥ चौपाई ॥ परम कृपाल द्रोह नहि जानै ॥ क्षमांवंत अरु सत्य बषानैं ॥ निंदा रहित द्वंद्व
सब समता ॥ हृदै पर उपकार नहि ममता ॥ ५३ ॥ आए काम बुद्धि थिर रहै ॥ इंद्रिय जित कोमलता
गहै ॥ सदाचार संग्रह नहि जानै ॥ लगु आहार नई हा ठानैं ॥ ५४ ॥ सीतल हृदै विचारहि करै ॥ धर्म

आपनैं दृढता धरै ॥ सावधान अरु रहित विकार ॥ धीरजवंत दया अधिकार ॥ ५५ ॥ सोक मोह अरु क्षुधा पिपासा ॥ जरा मृत्यु जीतैं षट पासा ॥ आपु मान अपमान न जानें ॥ औरनकों बहु मानहि ठानैं ॥ ५६ ॥ जो कोई सरणागत आवै ॥ ताकौं ज्यौं त्यौं ज्ञान उपावै ॥ सबकौं मित्र शुभाशुभ जानै ॥ दृढ विस्वास सकल भ्रम भानै ॥ ५७ ॥ मम आधीन निरंतर रहै ॥ साधनको वलकदैन गहै ॥ मोही कौं करता करि जानैं ॥ कबहूं भूलि न आपो आनैं ॥ ५८ ॥ जद्यपि वेद रूपमें गाए ॥ वर्णाश्रम कुलधर्म बताए ॥ तोहूं विधि निषेध सब तजैं ॥ दृढ निश्चल मम चर्णनि भजैं ॥ ५९ ॥ इसौ भक्त निज भक्त कहावैं ॥ ताकैं संग भक्तिकौं पावैं ॥ देसरु काल रहित सर्वातम ॥ चिदानंदमय प्रभु परमातम ॥ ६० ॥ ऐसो जानि जानि मुहि भजे ॥ और सकल संकलपहि तजे ॥ सो मेरो कहियैं निज भक्ता ॥ तासौं नितहूं जे अनुरक्ता ॥ ६१ ॥ अरु जे एसो मोहि न जानैं ॥ परि अत्यंत प्रीतिकौं ठानै ॥ ले करि मोहि सकल परिहरै ॥ ते जन मोहि आप वस करै ॥ ६२ ॥ ए भक्तनकैं लच्छन कहिए ॥ मेरि कृपाहूं तें ते लहिए ॥ तिनकौं पाइ भक्तिकौं पावैं ॥ भक्ति पाइ मम चर्णनि आवैं ॥ ६३ ॥ तातैं मोहि चहै जो कोई ॥ मम संतनकौं सेवे सोई ॥ अबमें कहौं भक्तिके अंगा ॥ जातें होवें मेरो संगा ॥ ६४ ॥ मम प्रति मामें मोकौं भजे ॥ मन क्रम वचन फलादिक तजे ॥ हितसौं दर्श पर्श परिचर्या ॥ अस्तुति अरु दंडोत सपर्या ॥ ६५ ॥ मेरी कथाविषे अति श्रद्धा ॥ मो बिनु कछु न करै पल अर्धा ॥ मेरे जन्म कर्म गुन गावे ॥ सदा निरंतर मोकौं ध्यावे ॥ ६६ ॥ तन अरु तनके पीछे जे ते ॥ मोकौं सकल समरपै ते ते ॥ जनमाष्टमी आदिजे पर्वा ॥ बहुत उछाह करैं ते सर्वा ॥ ६७ ॥ नृत्य

गीत अरु बहुविधि वाजा ॥ मंदिर बहुत रूप विधि साजा ॥ कथा कीरतन बहु विधि चर्चा ॥
जागर्णादिक बहुविधि अर्चा ॥ ६८ ॥ ऐसें जानि बहुत उच्छाहा ॥ सब परवणि सब विधि निर-
॥३४॥ वाहा ॥ मथुरादिक हरिधाम निजावैं ॥ बहुत भांतिकरि प्रेम बढावैं ॥ ६९ ॥ औरनिकौं आ-
चरण सिषावैं ॥ ठौर ठौर प्रतिमा पधरावैं ॥ बहुविधि करैं बाग फुलवाई ॥ क्रीडा थान सहित
चतुराई ॥ ७० ॥ पुर मंदिर बहुभांति करावैं ॥ ज्यौं हरि अरु हरिभक्ति निभावै ॥ आप माहि जो
शक्ति न होई ॥ तोहूं उद्यम ठाने सोई ॥ ७१ ॥ बहुविधि महिमा कहे कहावैं ॥ और नसौ
मिलि करै करावैं मंदिरादि बहुभांति बुहारैं ॥ बहुविधि सींचै धूल निवारैं ॥ ७२ ॥ चित्र वि-
चित्र चोक बिस्तारै ॥ ह्वै करि दास आप निस्तारै ॥ मान रहित कछु दंभन जानैं ॥ जो कछु करैं
सो नहीं बखानैं ॥ ७३ ॥ मोकौं करै आरती जासौं ॥ और कछू नहिं देखे तासौं ॥ मम प्रसाद प्री-
ति सौं लेवे ॥ प्रीती हींन जीव नहिं देवे ॥ ७४ ॥ यौही ज्यौं ज्यौं उपजे प्रेमा ॥ त्यौं त्यौं
अधिक बढावे नेमा ॥ मम भक्तनिके रहै अधीन ॥ तन धन सोंपे नितले लीन ॥ ७५ ॥ अरु
एकादश ठोरनि भद्रा ॥ मम पूजा करि हरे अभद्रा ॥ सूर्य अग्नि विप्र अरु गाई ॥ भक्तवेष
आकाशरु वाई ॥ ७६ ॥ जल अरु धरनि आपमें त्यौंहीं ॥ सबनि माहि मम पूजा योंही ॥
विद्या त्रय सूरजकी पूजा ॥ मोंकों छांडि न जाने दूजा ॥ ७७ ॥ वरषा राजस करि उपजावै ॥
सात्विक सीत सबनि वरतावैं ॥ तामस ग्रीषम सकल विनासे ॥ सकल जगतकौं आपु प्रकासे
॥ ७८ ॥ तातें मेरी परम विभूती ॥ ऐसें जानि करै अस्तूती ॥ पावक मांहि होम करि यजे ॥ ॥३४॥
विप्रनि अतिथि भावसों भजे ॥ ७९ ॥ त्रिण जलादि गाइकी पूजा ॥ भक्त भेषमैं और न दूजा ॥

भक्त भेष निज बंधव जानैं ॥ आति प्रसन्न है पूजा ठांनै ॥ ८० ॥ ज्यौं अपने बंधू संबंधी ॥ तिनसो
प्रीति सब निहे बंधी ॥ तिनकौं बहुत भांति करि सेवे ॥ तन मन धन निहचल करि देवे ॥
॥ ८१ ॥ त्यौंही भक्त आपने भाई ॥ ऐसैं जानि करे अधिकाई ॥ तन मन धनसों प्रीति
बढावैं ॥ जिनतें मेरे पदहीं पावैं ॥ ८२ ॥ हृदयकाश ध्यानसों सैंवैं ॥ सब आधार पवन
चित देवैं ॥ जलको जल अरु फुल फलादी ॥ अरु धरणी पूजे मंत्रादी ॥ ८३ ॥ भोगनि सों
निज देहहि भजे ॥ मो बिज अंतराय सब तजे ॥ सब भूतनमें मोकों जाने ॥ सम दरसन
यह पूजा ठानें ॥ ८४ ॥ इन सब ठौरनि पूजा करे ॥ मेरो रूप हृदेमें धरे ॥ रूप चतुरभुज
आयुध चारी ॥ स्याम सरीर पितांबर धारी ॥ ८५ ॥ सीस मुकुट सुभ कुंडल करना ॥
कौस्तुभादि बहुविधि आभरना ॥ ऐसो रूप सबनिमें ध्यावे ॥ सावधान व्है प्रीति बढावे ॥ ८६ ॥
या विधि वाइ कूप सर बागा ॥ जप तप दान दया वृत जागा ॥ मेरे हेत कर्म जो करै ॥ मो
विन और हृदे नहिं धरै ॥ ८७ ॥ इन साधननि करे नर जोई ॥ प्रेम भक्ति मम पावे सोई ॥ ए
साधन करहीं इन भांती ॥ साधु मिलाप होइ दिनराती ॥ ८८ ॥ तिनतें एसी जुक्ती पावै ॥ जातें
ज्ञान भक्ति उर आवैं ॥ तातैं ज्ञान भक्ति कौं कारन ॥ एक भक्त भवसागर तारन ॥ ८९ ॥ तातैं
भक्तन सौं हितलावैं ॥ जितनैं मेरी भक्तिहि पावैं ॥ तिनकौ बनिज भक्तिको नित्त ॥ कबहूं
ओर न आवे चित्त ॥ ९० ॥ मैं उनको मेरो हे सोई ॥ ऐसो भेद न जानै कोई ॥ जो कछू कहें
करों मैं सोई ॥ जद्यपि मेरे मन नहिं होई ॥ ९१ ॥ मोहि मिलनको एक उपाया ॥ बहुविधि षोज
त और न पाया ॥ साधु संग मिलि भक्तिहि करहीं ॥ सोई एक जगत जल तरहीं ॥ ९२ ॥ भक्त

न विना भक्ति नहिं पावै॥ भक्ति विना नहिं मोमें आवै ॥ मो बिन और जहां जहँ जाई ॥ तहँ तहँ काल निरंतर खाई ॥ ९३ ॥ यह अति गोप्य मतोहि मेरो ॥ मम आधीन चित्तहै तेरो ॥ तातैं



यौं यह तोसौं कह्यो ॥ आगैं कछु कहिवे नहिं रह्यो ॥ ९४ ॥ दोहा ॥ बहुरि गोप्य अपनो मतो, तोहि कह्यो समुझाए ॥ जातैं छुटै जगत भय, मोमैं रहे समाय ॥ ९५ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणे एकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ महिमा संगतिसारतैं, कर्म फलनको त्याग ॥ कहीं बारमैं ध्यायमैं, यथा व्यवस्था लाग ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उद्धव गोप्य मतो सुन मेरो ॥ पावैं मोहि मिठे भव फेरो ॥ आप मिलनको पंथ दिखाऊं॥ औरै सकल कुपंथ मिटाऊं ॥ १ ॥ जोग कहीजैं अष्ट प्रकारा ॥ सांख्य प्रकृतिअरुपुरुष बिचारा ॥ बहु विधि वर्णा श्रमके धर्मा ॥ सकल त्यागिं होवे निहकर्मा ॥ २ ॥ वेदादिक बहु विद्या पाठा ॥ जहां लगी हैं तप अतिकाठा ॥ होम जज्ञ सर वापी कूपा ॥ इच्छा दान समय अनुरूपा ॥ ३ ॥ एकादशी आदि व्रत जेते ॥ गुप्त मंत्रमें रेहें ते ते ॥ मम प्रातिमा पूजा आचरना ॥ तीरथ अटन नियम यम करना ॥ ४० ॥ औरैं सम दस आदिक जेते ॥ साधन सकल मुक्तिके ते ते ॥ इन सबहिनतैं मोहिन पावै ॥ साधू जन पल मांहि मिलावैं ॥ ५ ॥ उनतैं मनको संग न छूटै ॥ मम चरण- निमैं चित न चहूटै ॥ तातै मोहि न पावै उनतैं ॥ पावै वचन साधुके सुनतैं ॥ ६ ॥ साधू ऐसैं ॥३५॥

वचन सुनावैं ॥ शत्रु मित्र सुख दुःख जनावैं ॥ सार असार कालनिःकाला ॥ साधू दिषावैं सब ततकाला ॥ ७ ॥ सबतैं मनकौ संग मिटावैं ॥ मेरे चरणकमल लपटावै ॥ ऐसी विधि भव सागर तारैं ॥ मेरे जन ततकाल उधारैं ॥ ८ ॥ जे ते तरे तरेंगै जेते ॥ अरु अबहूं तरतेंहैं केते ॥ ते सब साधुसंगतैं जानौ ॥ दूजौ और उपाय न मानौ ॥ ९ ॥ षग मृग जातुधान असुरादिक ॥ चारण सिद्ध नाग गुह्यादिक ॥ अपसर विद्याधर गंधर्वा ॥ जिन जिन पायौ ते ते सर्वा ॥ १० ॥ वैस्य शूद्र अंतज अरु नारी ॥ बहु राजस तामस अधिकारी ॥ जुग जुग जे सत संगति आए ॥ तिन तिननहीं मेरे पद पाए ॥ ११ ॥ वृत्रासुर वृषपर्वा बाना ॥ बलि प्रहलाद बिभीषण जाना ॥ मय सुग्रीव ऋक्ष हनुमंता ॥ गज अरु गीध व्याध अघवंता ॥ १२ ॥ तुलाधार कुब्जा वृजगोपी ॥ धर्मनकी सीमा जिन लोपी ॥ जज्ञवंत विप्रनकी बनिता ॥ पुरुषनकी कीनी अवमनिता ॥ १३ ॥ और अनेक कहांलों कहियै ॥ कहत कहत कहु अंतन लहियै ॥ तिन कछु विद्या वेद न जानै ॥ सांख्यरु जोग नहीं पहिचानै ॥ १४ ॥ जप तप यज्ञ वृता दिन कीनै ॥ और धर्म नहिं कौई चीनै ॥ परिसो साधु संगति न पाये ॥ ते सब मेरे चरणनि आये ॥ १५ ॥ अरु तुम उद्धव यौं मति जानौ ॥ तिनकी संगति मेरी मानौ ॥ उद्धव संतरुमें द्वै नाहीं ॥ मैंहीहों संतन उममांही ॥ १६ ॥ किनहूं मिलौं धारिकै तनकौं ॥ मिलकर सोधौं तिनके मनकौं ॥ ऐसी विधि एकनिकों तारौं ॥ एकनि साधुरूप उधारौं ॥ १७ ॥ साधुनि ह्वै मनके मल हरौं ॥ सो मन अपनें चर्णनि धरौं ॥ ऐसी विधि एकनि उद्धारौं ॥ जहँ तारौं तहँ मेहीं तारौं ॥ १८ ॥ साधु संगसो मेरो संगा ॥ साधु सकल हे मेरो अंगा ॥ तातें दोउ

साधु संग जानौ ॥ केतो दो मेरो तन मानौ ॥ १९ ॥ गोपी गाइ वक्ष नग नागा ॥ औरौं मूढ
बुद्धि बडभागा ॥ मम सत संग प्रेम तिन बांध्यौ ॥ भाव भक्ति मोंकों आराध्यौ ॥ २० ॥ और
कछु साधन नहिं जान्यौ ॥ अरु नहिं ब्रह्मरूप करि मान्यौ ॥ परि तिनको हित मोसों भयो ॥
तातें सब मनको मल गयो ॥ २१ ॥ श्रम हीं बिनति न मोकों पायौ ॥ अति अपार भवदुःष
मिटायौ ॥ जाकौं जोग सांख्यव्रत दाना ॥ जज्ञ वेद विद्या विधि नाना ॥ २२ ॥ करि संन्यास
बहुत दुष सहैं ॥ तेउ मोकों कदें न लहैं ॥ ताकों तिन सुषहीमे पायौ ॥ जे केवल मन मोसों
लायौ ॥ २३ ॥ राम सहित मुहि पायौ जबहीं ॥ चले अक्रूर मधूपुरि तबहीं ॥ तब ते गोपी
मेरै हेत ॥ पाइ मूरछा भई अचेत ॥ २४ ॥ बहुरि समझ महादुष पावै ॥ निसवासर मम चर्णनि
ध्यावै ॥ मोहि छोडि सब दुषमय लेषे ॥ लोक वेद कुल कछु न पेषे ॥ २५ ॥ जे निसि मों संग
पलसी बीते ॥ तेई तिनकौ कल्प व्यतीते ॥ मेरे गुणानि सुने अरु गावैं ॥ लीलारूप हृदेमें
ध्यावै ॥ २६ ॥ कबहूं विरह महादुष रोवैं ॥ कबहू तपत दशो दिश जोवै ॥ कबहु प्रान तजनकी
भाषै ॥ मम दरसन आसातें राषै ॥ २७ ॥ नीद भूष त्रस सकल गबाई ॥ औंर देह गुण रह्यौ न
कोई ॥ तिनके दुष तेई ते जानै ॥ ते मैं तीजो कहा वषानै ॥ २८ ॥ विरह प्रचंड अनल अधिका-
र ॥ सकल विकार भए जरि छारा ॥ प्रेम प्रवाह सकल मल छारै ॥ यौं मो बिचको अंतर टारै ॥
२९ ॥ तब यह उपजी परम अनूपा ॥ भूलि आप भई मम रूपा ॥ ज्यौं जोगेस्वर ब्रह्महि ध्यावै ॥
द्वै करि ब्रह्म आपु विसरावै ॥ ३० ॥ अरु ज्यौं सरिता सिंधु समावै ॥ नाम रूप गुण भेद गमा-
वै ॥ त्यौं वे भई रूप सब मेरो ॥ द्वैत भाव कछु रह्यो न नेरो ॥ ३१ ॥ पाप जोनि अबला ते सा

री ॥ अरु श्रुतिकी मरजादा टारी ॥ निजपति छोड कियो व्यभिचारा ॥ अरु तिन मोको जान्यो जारा ॥ ३२ ॥ ब्रह्मभाव कछु ए नहिं जान्यौ ॥ तिन पर पुरुष मोहि नित मान्यौ ॥ परितोहूं भवसिंधु मिटायौ ॥ सतानि सहस्रानि मम पद पायौ ॥ ३३ ॥ तातैं उद्धव सुन बडभागा ॥ लोकवेद सबकौ कर त्यागा ॥ जोहैं सुन्यो सुननको जोई ॥ प्रवृत्ति निवृत्ति जो कछु होई ॥ ३४ ॥ सब तजि एक सरण मम आवौ ॥ द्वैत भाव मनतें विसरावौ ॥ जहां तहां मम रूपहि देषौ ॥ आपापर कछु और न लेषौ ॥३५॥ एसें हे करि मोकौं पैहौ ॥ जातें जगत जनम नहि ऐहौ ॥ यौं हरि जब बानी विस्तरी ॥ तब उद्धव आ संका करी ॥ ३६ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥

॥ चौपाई ॥ प्रभु तुम त्याग वेदकौं कह्यौ ॥ सो मेरे उर संसा रह्यो ॥ तुमरी आग्या बेद कहावै ॥ ताहि छोडि केसें सुष पावै ॥ ३७ ॥ तुमहीं श्रुतिमें करणें भाषे ॥ तुमहीं ईहां दूरि करि नाषे ॥ तातें मन भरमतहे मेरो ॥ थिर कीजैं अपनें जन केरो ॥ ३८ ॥ किधोंइ सत्य किधों ते देवा ॥ याको मोहि वतावो भेंवा ॥ तव गोपाल बचन उच्चारैं ॥ ज्यौं रवि उदय मध्य अंधियारैं ॥ ३९ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव अव सुन परम ज्ञाना ॥ तातैं तव छूटैं भ्रम नाना ॥ प्रथमहि आप निरंजन एका ॥ और कछु नहिं हुतो अनेका ॥ ४० ॥ बहुरि कियौ माया विस्तारा ॥ रच्यो देह बहु अंग प्रकारा ॥ तामें आपु प्रवेसा कियौ ॥ प्राणरु शब्द संगकरि लियौ ॥ ४१ ॥ सो ता शब्द चक्र आधारा ॥ परानाम कीनो आगारा ॥ मणि पूरक पस्यती नामा ॥ चक्र विशुद्ध मध्यमा धामा ॥ ४२ ॥ बाहिर प्रगट वैषरा बानी ॥ जे इहलोक



रु बेद बषानी ॥ स्वर लघु मातर अक्षर जे ते ॥ नाना भांति विस्तरें ते ते ॥ ४३ ॥ लोक

मांहि थोरे विस्तारे ॥ वेद मांहि तिष्ठतहै सारे ॥ परि तिनको बहुविधि विस्तारा ॥ जाको कोइ लहै नहिं पारा ॥ ४४ ॥ जैसें अनल काष्ठ मथि काढ्यौ ॥ इंधन संग पवन अति बाढ्यौं ॥ यौं मम बानीको विस्तारा ॥ जातें प्रगट्यौ सकल पसारा ॥ ४५ ॥ यह विस्तार शब्दको सारौ ॥ जामें चेतन रूप हमारौं ॥ इंद्रिय उपजी दशहु प्रकारा ॥ सूत्ररु मन बुधि चितहंकारा ॥ ४६ ॥ सतरजतम माया गुण जानौ ॥ सब विस्तार तिहूंकौ मानौ ॥ जो अद्वैत एक निरधारा ॥ तिन कीनो माया विस्तारा ॥ ४७ ॥ तिनमें बहुत भांति आभास्यौ ॥ उत्तम मध्यम नीच प्रकास्यौ ॥ विधि निषेध तातैं करि लये ॥ सुष दुष द्वै तिनके फल भये ॥ ४८ ॥ इह संसार एकतें ऐसें ॥ एक बीजतें बहु बन जैसे ॥ तातैं यह सब एक अधारा ॥ परि एकहिको सकल पसारा ॥ ४९ ॥ जैसें वस्त्र तंतुमय होई ॥ ओत पोत दूजा नहिं कोंई ॥ एसें यह भव तरुहे एका ॥ द्वै फल फूलरु साष अनेका ॥ ५० ॥ यह सब मम चेतन आधारा ॥ परि तोहू चेतनतें न्यारा ॥ सो चेतनहें मेरो अंसा ॥ यामें भूल न आनो संसा ॥ ॥ ५१ ॥ यह संसार वृच्छहे जेसौ ॥ मैं भाषतहों सुनियो ते सौ ॥ पापरु पुन्य बीज द्वै याकैं ॥ मूल अपार वासना ताकैं ॥ ५२ ॥ आदिहिके त्रय गुण त्रय साषा ॥ तिनतें पंचभूत पर साषा ॥ उप साषा मन अरु इंद्रिय दश ॥ शब्दादिक सर्वे पंचोरस ॥ ५३ ॥ कफ अरु वात पित्त त्रय बलकल ॥ सुष अरु दुःष प्रगटहैं द्वै फल ॥ तामै द्वै पंषीको वासा ॥ परमातम अरु आतम पासा ॥ ५४ ॥ जे मूरष यह भेद न जांनैं ॥ ते बहु भांति वेद विधि ठांनैं ॥ तिनतें ह्वोवै बहु विधि बंधा ॥ जुग जुग दुष पावै ते अंधा ॥ ५५ ॥ जो यह देह वृक्षकरि जानैं ॥ आपुहि पंषी न्यारो

मानैं ॥ बेद स्मृति सब माया देषैं ॥ सकल अतीत आपुकौं लेषैं ॥ ५६ ॥ तब यह विधि निषेध छुटि कावैं ॥ सुष अरु दुषके निकट न आवैं ॥ सकल माँहि आपुहिकौं जांनैं ॥ भेद देह कृतमाया मानैं ॥ ५७ ॥ चेतन शक्ति ब्रह्मकरि देखे ॥ और सकल मायाकरि लेखे ॥ परि यह भेद सकल तब पावैं ॥ जब सतगुरुकी सरनै आवैं ॥ ५८ ॥ सतगुरु विना न पावै कोई ॥ ब्रह्मादिक भावै सो होई ॥ तातें गुरुकी सरणैं आवैं ॥ दृढ उपासना भक्ति बडावैं ॥ ५९ ॥ गुरु सेवाको ईसो प्रभाव ॥ जातें उपजें मेरो भाव ॥ गुरुसेवातैं पावें भक्ति ॥ गुरुसेवातें सकल विरक्ति ॥ ६० ॥ गुरुसेवातें ज्ञानहि लहैं ॥ गुरुसेवातें कर्म निदहैं ॥ गुरुसेवातें परम प्रकासा ॥ गुरुसेवा मम चरण निवासा ॥ ६१ ॥ मोहि मिलनको यहि उपाई ॥ गुरु सेवा बिन और न काई ॥ तातें गुरुकी सरनहिं आवैं ॥ तन मन धन सों हेत लगावैं ॥ ६२ ॥ जातें उपजे ज्ञान कुठारा ॥ सब पासनकों काटन हारा ॥ त्रय गुण लिंग शरीर उपाधी ॥ जो आतमकों लागी व्याधी ॥ ६३ ॥ ज्ञान कुठार सकलकौं हरे ॥ या बिधि आतम निर्मल करै ॥ पीछे ग्यान ध्यान सब त्यागै ॥ निशिदिन एकब्रह्म अनुरागै ॥ ६४ ॥ तबसो ब्रह्महि मांहि समावैं ॥ बहुर्‍यो जगत जन्य नहिं आवैं ॥ तातैं तुम साधन सब त्यागौ ॥ निसदिन एकब्रह्म अनुरागौ ॥ ६५ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ यह उद्धव तोसो कह्यौ, भव मोचन मम ज्ञान ॥ अब बहुर्‍यो साधन सहित, भाषौ परम निधान ॥ ६६ ॥ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ होत सत्व गुण वृद्धिकर, ज्ञान उदय क्रम जान ॥ कह्यो तेरमैं ध्यायमैं हंस रूप आख्यान ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ सुन उद्धव अब परम ज्ञाना ॥ जातें पावें परम निधाना ॥ जातें ज्ञान होइ सो कहौं ॥ या विधि तव अज्ञान हि दहौं ॥ १ ॥ सात्विक राजस तामस जहैं ॥ उद्धव ते गुण माया केहैं ॥ सुख दुख सब तिनहींके जानौ ॥ तिनतें परे आतमा मानौ ॥ २ ॥ तातें नर सात्विककौं गहे ॥ सात्विक करि रज तमकौं दहे ॥ पीछे ब्रह्म मांहि थिर होई ॥ सात्विककौं तब त्यागे सोई ॥ ३ ॥ ऐसी विधि तीनों गुण दहे ॥ तब ह्वै ब्रह्म ब्रह्ममैं रहे ॥ ज्यौं ज्यौं होई सत्व अधिकारा ॥ त्यौं त्यौं प्रेम भक्ति वितारा ॥ ४ ॥ सकल वस्तु सात्विक जब भजे ॥ तबहीं सात्विक गुण ऊपजे ॥ सात्विक ज्यौं ज्यौं त्यौं त्यौं भक्ति ॥ त्यौंहीं त्यौं अन्यत्र विरक्ति ॥ ५ ॥ तव रज तम दोऊ मिट जावैं ॥ तातें तनके गुण नहिं आवैं ॥ हर्षरु शोक मान अपमाना ॥ निद्रा आलस गर्व गुमाना ॥ ६ ॥ राग द्वेष आदि कहे जे ते ॥ द्वंद्व सकल रज तमके ते ते ॥ तातें रज तम जबहीं जाहीं ॥ तब तिनके गुण उपजै नाहीं ॥ ७ ॥ तातें सात्विक संगति करै ॥ रज तमकी संगत परिहरै ॥ मूल सकल कौ संगति कारन ॥ संगति बोरे संगति तारन ॥ ८ ॥ पवित्र देश काल जल पान ॥ ग्रंथरु कर्म जन्म अरु ध्यान ॥ गर्भाधान आदि संस्कार ॥ मंत्र जाप ए दसहि प्रकार ॥९॥ ए दस जाकौं होवैं जैसे ॥ गुण विस्तारैं ताकौं तैसैं ॥ सातिक तो सातिक उपजावै ॥ राजस तो राजस अधिकावै ॥ १० ॥ तामस तो तामस विस्तरै ॥ जेसें ए दश तेसें करै ॥ जाही जामें जो गुण होई ॥

सो सो उत्तम जाने सोई ॥ ११ ॥ परि जो उत्तम साध बषानैं ॥ सो वह सातिक उत्तम जानै ॥
जो आतिनिंद्य तमो गुण सोहें ॥ सो राजस कछु मध्यम जोहें ॥ १२ ॥ तातैं ए दशसातिक
सेवें राजस तामस नाम न लेवें ॥ राजस तामस जो हित होई ॥ तोहूं सब छिटकावै सोई ॥ १३ ॥
सात्विक संगति उपजैं सत्व ॥ त्यौं लहैं भक्तिको सत्व ॥ ज्यौं लगि दृढ उपजैं विज्ञाना ॥ देखें
एक सकल भगवाना ॥ १४ ॥ अरु दोनो देहनि भ्रम जानैं ॥ सब विस्तार सुपन सममानैं ॥
तब यह ब्रह्ममांहि थिर होई ॥ सातिकहूं की बौर न जोई ॥ १५ ॥ ज्यौं बांसनि तैं उपजे
अनल ॥ अरु होवै मारुत तैं प्रबल ॥ सब बांसनिकौ दाहे सोई ॥ आपु बहुरि उपसम होई
॥ १६ ॥ त्यौं साधन यातन तैं होवैं ॥ ह्वै प्रचंड यातनकौं षोवौं ॥ रुहुज्यौ आपुहि उपसम होई ॥
साधन लेस रहे नहिं कोई ॥ १७ ॥ गुणातीत सो कहिये जोगी ॥ तीनों काल ब्रह्मरस भोगी ॥
सो बहुरौ भवमें नहिं आवे ॥ मोहि मिल्यौ मो मांहि समावे ॥१८॥ तातैं सब साधन छटिकावौ ॥
एक निरंजन मोकों ध्यावौ ॥ तब हरिकी सुनि अद्भुत बानी ॥ जन उद्धव यह प्रष्ण बषानी ॥ १९
॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौंपाई ॥ हे प्रभुहां ऐसो कहियैं ॥ ज्ञानादिक हित जे सुष लहियैं ॥
परिजे विषय सुषनि कौं चाहैं ॥ तातैं बहु आरंभ सबाहैं ॥ २० ॥ ते बापुरे सदा दुख सहैं ॥ क
बहूं भूलिन सुखकौं लहैं ॥ परिते तो विषयनि दुष जानैं ॥ जानबूज क्यौं उद्यम ठानैं ॥ २१ ॥
ज्यौं बकरा मारनकौं लीजैं ॥ ले छेलिनि मे ठाढौ कीजैं ॥ वह निर्लज कछु लाज न जानैं ॥ ति-
निसौं मिलि विषयादिक ठानैं ॥ २२ ॥ अरु जैसैं गर्दभ अरु कुत्ता ॥ तिरष्कार ते सहे बहुत्ता ॥
सुषके हेत सबनि आधीना ॥ दुर्बल सदा हृदय अतिदीना ॥ २३ ॥ वेतो मूढ कछू नहिं जांनैं ॥

तातैं विषयनि उद्यम ठानैं ॥ यह तो नर जानै सब वाता ॥ देखे जगत चल्यो सब जाता ॥ २४ ॥
प्रथमेतो सुख आवे नाहीं ॥ जो आवेतो थिर न रहाहीं ॥ अरु जो दिन चारी रहिजावे ॥ काल
हु ते तौं षान न पावे ॥ २५ ॥ काल निरंतर ग्रस ते जावे ॥ एकदिना जमद्वार पठावे ॥ तहां
नरक है वहुत प्रकारा ॥ जिनकै दुखको वार न पारा ॥ २६ ॥ एसी सब विधि मानव जानैं ॥
तोहू क्यौं आरंभनि ठानैं ॥ आपु आपु जमद्वार पठावैं ॥ आपु आपुकौं दुख उपजावे ॥ २७ ॥
आगैं चौरासी भय भारे ॥ विषयनिकौ बहुदुख विस्तारे ॥ या भव जलके दुःख अपारा ॥ कहौं
कहांलौं वार न पारा ॥ २८ ॥ सो यह सकल क्रिपा करि कहौ ॥ मेरे उसकौ संसा दहौं ॥ यौं
कहिकैं उद्धव जव रहैं ॥ तब हरिजी प्रति उत्तर कहैं ॥ २९ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई
उद्धव यह आतम अविनासी ॥ ज्ञान स्वरूप परम सुषरासी ॥ सो जबहीं यातनमैं आवैं ॥ तब
स्वाधीन विषय सुष पावे ॥ ३० ॥ बहुर्‍यौ तिन हित उद्यम गहे ॥ नहिं पावे दुखकौं लहै ॥
या विधि सुख दुख जबहीं जानै ॥ तबहीं देह आपु करि मानै ॥ ३१ ॥ ऐसें बढै देहहंकारा ॥
तबहीं राजसकौ अधिकारा ॥ राजस सहित जबहि मन होई ॥ तब यह सुख दुख जानै सोई ॥
३२ ॥ तब संकल्प विकल्पनि करे ॥निशदिन हृदय विषै सुखधरे॥जब जा सुषहि सुनें अरु देषैं॥
तब वश ह्वै निज सुख करि लेषैं ॥ ३३ ॥ तबहि ह्रदेमें बाढै काम ॥ ज्ञान विचार न राषै नाम ॥ तातें
बहु राजस अधिकारा ॥ राजस तें मग गहे बिकारा॥३४॥तब राजसको वेग प्रचंडा॥ज्ञानहि मारि करै
सत षंडा ॥ ताते ज्ञान सुनै अरु जानै ॥ अरु औरनि सौं आप बषानै ॥३५॥ परि सो काम नहीं ॥३९॥
ठहरावै ॥ लेकरि पकरी करम करावै ॥ परि जद्यपि या नरकी बुद्धी ॥ रज तमतें नहिं पावेसु

द्धी ॥ ३६ ॥ तोहूं निशदिन दोष विचारे ॥ उरतें सकल कामना टारे ॥ सावधान आलस नहिं करै क्रम क्रम मम चर्मानि चित धरे ॥ ३७ ॥ आसन जीति करे बस प्राना ॥ निशदिन उर राषे मम ध्याना ॥ अरु मम शिष्य चार सनकादि ॥ सकल तत्त्व ज्ञानिनकी आदी ॥ ३८ ॥ तिन विचार करि जोगहि भाष्यौ ॥ सोतो इहै ओर सब नाष्यौ ॥ ज्यौंही ज्यौं मन दूजो तजे ॥ अरु ज्यौं ज्यौं मम चर्णनि भजै ॥ ३९ ॥ याही तैं सब मिटैं विकार ॥ याही तैं छूटे संसार ॥ याहीतैं मम चर्णनि पावे ॥ बहुरी जगत जन मनहिं आवे ॥ ४० ॥ तातें परम जोग यह राष्यौ ॥ जातें मेरें शिष्यानि भाष्यौ ॥ जब यह वानी बोले कृष्ण ॥ तब उद्धव जन कीनी प्रश्ण ॥ ४१ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु कौंन समे या रूपा ॥ तुम भाष्यौ या ज्ञान अनूपा ॥ सनकादिकनि कौंन विधि लह्यौ ॥ क्यौं पूछयौ केसैं तुम कह्यो ॥ ४२ ॥ ज्ञान सहित सब मोकौं कहो ॥ मेरे उरको संसय दहो ॥ जब यह उद्धव कीनी प्रश्ण ॥ तब बोले करुणामय कृष्ण ॥ ४३ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ब्रह्मपुत्र सनकादिक चारी ॥ मनतैं उपजे ब्रह्म विचारी ॥ जन्महि ते तिन गाहि निवृत्ती ॥ मनवच क्रमसों तजी प्रवृत्ती ॥ ॥ ४४ ॥ प्रश्ण करी तिन ब्रह्मा आगैं ॥ इसो भेद सोवत ज्यौं जागैं ॥ अति सूषम जानी नहिं परै ॥ उत्तर कहो कोन विधि करै ॥ ४५ ॥ ॥ सनकादय ऊचः ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु ब्रम्ह ब्रह्ममय देवा ॥ याको हमहि बतावौ भेवा ॥ विषय वासना चित्तहि गह्यौ ॥ चित्त प्रीति करिकैं मिल रह्यौ ॥ ४६ ॥ दोउ मिले आपुमैं एसैं ॥ नीररु षीर परस्पर जैसैं ॥ भिन्न भिन्न विनु मुक्त न होई ॥ क्यौं करि भिन्न होय ए दोई ॥ ४७ ॥ यह वानी ब्रम्हा उरधारी ॥ उतर देनकी

बहुत विचारी ॥ परितोहूं उत्तर नहिं आयौ ॥ जातें कर्मनिसौं मनलायौ ॥ ४८ ॥ तब ब्रम्हा यह बुद्धि विचारी ॥ जाहि न कोई ताहि मुरारी ॥ तातें कऱ्यौ चिंतवन मेरो ॥ हंसरूपमें प्रगट्यौ नेरो ॥ ४९ ॥ हंसरूप तातें दिषरायौ ॥ जातें यह आशय समझायो ॥ के जो हंसवृत्तिकौं गहै ॥ सोई याके भेवहि लहै ॥ ५० ॥ तव तिन देषि मोहि सुष पायो ॥ ब्रह्मा मिलि उठि माथौ नायौ ॥ करि विनती तब वचन बषानै ॥ हे प्रभु तुमकौं हम नहिं जानै ॥ ५१ ॥ तब तिनसौं जो में कछु कह्यौ ॥ तिनके उरका संसा दह्यो ॥ तेई वचन कहों अब तोसों ॥ सावधान है सुनियो मोसों ॥ ५२ ॥ तुमको होयूं पूछ्यौ जबहीं ॥ कह्यौ ज्ञान उत्तरमेंतबहीं ॥ मनकौ संसे सबहि मिठायौ ॥ विद्यमान परब्रह्म बतायौ ॥ ५३ ॥ हंस हरी जब हंसकर बोले ॥ कृपानिधी तब अंतर खोले ॥ हंस उवाच ॥ चोपाई ॥ विप्रहु प्रष्ण करी तुम ऐसी ॥ करने नहीं संभवे तैसी ॥ वस्तु विचारें द्वैत न कोई ॥ तो याको उत्तर क्यों होई ॥ ५४ ॥ अरु जो देह रूपहू कहियें ॥ तोहू कछू द्वैत नहिं लहियें ॥ पंचभूत निर्मित तन सारें ॥ जो कछु जहां लगें विस्तारे ॥ ५५ ॥ तातें सकल एक द्वै नाहीं ॥ दूजो कोंन विचारे मांहीं ॥ पुरुष दृष्टि देषे ते एका ॥ प्रकृती दृष्टिहु नहीं अनेका ॥ ५६ ॥ तातैं करी प्रष्ण तुम एसी ॥ बहु तन मांहि करी जैं जेसी ॥ अरु जो दीसे तत्त्व विचारा ॥ तो नहिं प्रकृति पुरुष विस्तारा ॥ ५७ ॥ जो कछु दीसे सुनिय कहियें ॥ मन अरु बुद्धि जहां लों लहियें ॥ सो सब मैंहीं दूजो नाहीं ॥ ऐसो ज्ञान धरो मनमांहीं ॥ ५८ ॥ नाम रूपते सकल विकारा ॥ आदि अंत मध माटी सारा ॥ त्योंहीं आदि अंत मधमाहीं ॥ मेंहों एक द्वैत कछु नाहीं ॥ ५९ ॥ द्वैत दृष्टिसो दुषको कारण ॥ ब्रह्मदृष्टि निज सुषविस्तारण ॥ लगें तरंगनि सौं

दुष लहै ॥ तब सुष जबहीं तजि जल गहै ॥ ६० ॥ त्यौंहीं द्वैत दृष्टिसो दुःषा ॥ एकदृष्टि साहे निज सुःषा ॥ अरु तुम प्रष्ण विरंचिसौं करी ॥ सोमैं हृदय आपुने धरी ॥ ६१ ॥विषयानि मांहि चित मिलि रह्यौ ॥ अरु विषयनि चितहीं दृढ गह्यौ ॥ हेपुत्रहु यह यौंही सत्य ॥ परिते आतम मांहि असत्य ॥ ६२ ॥ विषय चित्त ए दोउ माया ॥ आतम ब्रह्म निरंजन राया ॥ विषयनिसौं जब चित्त लगयौ ॥ तबहि चित्त तिनमें सुष पायौ ॥ ६३ ॥ तब विषयनिको ध्यानहि करै ॥ तिनकै हेत कर्म विस्तरै ॥ तातैं एकमेक मिलि रहै ॥ ऐसैं जन्म जन्म दुष सहै ॥ ६४ ॥ तातैं आतम मेरो अंसा ॥ मेरी सरण ग्रहे तजि संसा ॥ बाहिरहुतें विषय परिहरै ॥ अरु चिततैं चितवन नहिं करै ॥ ६५ ॥ विषयरु चित्त वृथा करि जानै ॥ तिनतैं परे आपुकौं मानै ॥ ब्रह्म-रूप एक अविनासी ॥ ज्ञान रूप चेतन सुष रासी ॥ ६६ ॥ मन अरु बुद्धि चित्त हंकारा ॥ इंद्रिय विषय देह विस्तारा ॥ ए भ्रम रूप सकल है माया ॥ भूली आतम आपु बंधाया ॥ ६७ ॥ ऐसैं जानि सकल छटिकावै ॥ आपुहि मोहि एक करि ध्यावै ॥ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति बखानो ॥ ते आचर्ण बुद्धिकै जानो ॥ ६८ ॥ तिनतैं परे आतमारूप ॥ सदा एक रस परम अनूप ॥ साति-कहूं तें जाग्रत होई ॥ राजस सुपन लहैं सब कोई ॥ ६९ ॥ सुखपति तामस गुणतें आवे ॥ मन अरु बुद्धि तिहूंकौं पावे ॥ एकरूप आतम तिहुमाहीं ॥ साक्षीभूत लिपै कहु नाहीं ॥ ७० ॥ तातैं तिहूं गुणनितें न्यारौ ॥ निजानंन्दमय रूप हमारौ ॥ तामैं स्थित ह्वै करै विचारा ॥ सहजहि छूटै त्रिगुण पसारा ॥ ७१ ॥ देहविषै बंध्यो अभिमाना ॥ तातैं भेद उठयौ यह नाना ॥ तातैं
११ निजानंद विसरायौ ॥ काल असरव्य महादुख पायौ ॥ ७२ ॥ ऐसैं जानि तजे अभिमाना ॥

कदे न करे सुखनिको ध्याना ॥ तिहूं गुणनितैं करै विरक्ती ॥ चौथे पद बाधे आशक्ती ॥ ७३ ॥
तब सहजै मो मांहि समावै ॥ बहुर्यो कदे देह नहिं पावै ॥ अरु जो सकल ग्रंथ विस्तरै ॥ वे-
द धर्म नाना विधि करे ॥ ७४ ॥ प्रवृत्तिमांहि बहुत विधि जागे॥परिजो जानि द्वैत नहिं त्यागे॥
सो नित सोवत जागत जानौं ॥ ताकौ मैं दृष्टांत बखानौं ॥ ७५ ॥ जैसैं सयन करै नर कोई ॥
सोवत सुपन लहै पुनि सोई ॥ बहुतहि भांति करै व्यवहारा ॥ लेन देन जल पान अहारा ॥ ७६ ॥
बहुरो रैन भएतें सोवै ॥ दिवस भए त्यौंहीं उठि जोवै ॥ ऐसी विध केई दिनवितें ॥ सोवत जा
गत सकल व्यतीतैं ॥ ७७ बहुरो वह ऐसी मन आनै ॥ रातिहु दिनकी निद्रा मानै ॥ कदे
न सोवत जागत रहै ॥ सावधान आलश नहिं गहै ॥ ७८ ॥ ऐसैं काज आपनौं करै ॥ चोरादि
क धनकौं नहिं हरै ॥ परि जब इहां जागि करि देषै ॥ तब वह सकल वृथा करि लेषै ॥ ७९ ॥
सोवत जागत सब व्यवहारा ॥ जाके हित जागे सो मारा ॥ आपुहि सब मिथ्या करि जानै ॥
कबहूं भूलि सत्य नहिं मानै ॥ ८० ॥ त्यौंहीं वेदधर्म आचरना ॥ अरु ते सुष जिनके हित करना ॥
ते सब स्वप्नरूप व्यवहारा ॥ पंडित छोडे सकल पसारा॥८१॥भ्रमनें देह धर्‍यौ अभिमाना ॥ तातैं
वर्णाश्रम विधि नाना ॥ तातैं करे बहुत विधि कर्मा ॥ सुख निमित्त विस्तारै धर्मा ॥८२॥ परिते सकल
वृथाकरि जानौ सुपन जागरण सम करि मानौ ॥ जो देहादिक सकल पसारा ॥ चेतन करि
वरतावन हारा॥८३॥सुष दुष भोग करै अरु जानै॥आपुहि सुखी दुखी करि मानै॥बहुर्‍यौं जबहि
सुपनकौं पावै ॥ बहु व्यवहारनिसौं मन लावै ॥ ८४ ॥ तबहूं जानै सकल पसारा ॥ आपापर ॥४१॥
सुषदुष व्यवहारा ॥ बहुरि सुषोपति मैं सब जाई ॥ मन बुद्धि चित हंकार न काई ॥ ८५ ॥ तब

आतमा निरंतर रहै ॥ जागे सकल बात जो कहै ॥ लियौ दियौ अरु आयौ गयौ ॥ जहा लगी पीछे अनुभयौ ॥ ८६ ॥ सो आतमा एकरस रहै ॥ तिहूं कालकी बातनि कहै ॥ यौं अविनासी आतम एक ॥ दूजे माया भेद अनेक ॥ ८७ तीन अवस्थाहै ये मनकै ॥ मनमें आभासेहें तिनके ॥ तिन तिनको तीनौं गुण जेहैं ॥ तीनो गुण मायाके तेहैं ॥ ८८ ॥ ऐसी विधि निश्चैसौं जानैं ॥ निशदिन हृदय विचारहि ठानैं ॥ सकल उपाधिनको आगारा ॥ ज्ञान षड्ग काटै हंकारा ॥ ८९ ॥ हृदय माहि मैं ताकौं भजौं ॥ सावधान ह्वै कंदेन तजौं॥ यह सारौं जग भ्रकरि जानौ ॥ मनको कृत मिथ्याकरि मानौ ॥ ९० ॥ ज्यौं एकानिकौं उपजत देखै ॥ अरु एकानिकौं बिन सत पेषै ॥ सोई रीत सकलकी जानै ॥ स्वप्न समान हृदयमें मानै ॥९१ ॥ अग्नि सहित ज्यौं लकरी होई ॥ बालक लकरि फिरावै कोई ॥ और भांतिहे दीसे और ॥ थिर परि चंचल लहै न ठौर ॥ ९२ ॥ त्यौं यह जगत रहे थिर नित्य ॥ परि अति चंचल सकल अनित्य ॥ एक ब्रह्ममें सब आभास्यौ ॥ त्रिगुण पाई बहु भेद प्रकास्यौ ॥ ९३ ॥ स्वप्न रूप गुणमें ज्यौं भोगी ॥ यौं बहु भांति विचारे जोगी ॥ तातें जगतें दृष्टि उतारै ॥ साचो जानि हृदय नहिं धारै ॥ ९४ ॥ तृष्णा छोडी निश्चल रहै ॥ मन वच क्रम कछु कर्म न गहै ॥ ईहा रहित ब्रह्मरस भोगी ॥ निजानंदमय होवे जोगी ॥ ९५ ॥ ऐसें वृथा जानि सब त्यागै ॥ निहचल हृदे ब्रह्मनुरागै ॥ सो जब रहे देहहूं मांहीं ॥ तोहू फिरि भ्रम उपजै नाहीं ॥ ९६ ॥ जो यह देह जाइ कहु आवैं ॥ बैठे उठे पिए अरु षावैं ॥ और हु कछुक करे व्यवहारा ॥ परिसो सिद्ध न जानैं सारा ॥ ९७ ॥ निश्चल रहे निरंजन मांहीं ॥ देहादिक कछु जानै नाहिं ॥ ज्यौं कोई तन वस्त्रनि धरे ॥ बहु ज्यौं सुरा पान कहु करै ॥ ९८ ॥

सो तिन वस्तनि जाने नाहीं ॥ प्रथमहि बंधे ते नहिं जाहीं ॥ कर्म रहें या तनकै जोलौं ॥
सहीत इंद्रिय बरते तोलौं ॥ ९९ ॥ कर्मनि ताकै तनकौं पोषे ॥ षान पानसों नित संतोषे ॥
॥४२॥ जोगी ब्रह्म माहि थिर रहै ॥ देहादिककी शुद्ध न लहै ॥ १०० ॥ जेसें स्वप्न देखि करि जागै ॥
ता सुपना सुनही अनुरागे ॥ तेसैं मोह निसातें जाग्यौ ॥ बहुरि लिपे ब्रह्म अनुराग्यौ ॥ १०१ ॥
देह थकां ब्रह्महि मिल रह्यौ ॥ भावकौ सकल बीज तिन दह्यौ ॥ सो बहुरौ भवमैं नहिं आवै ॥
ब्रह्म मिल्यौ सो ब्रह्म समावै ॥ २॥ तातें देह आदि विस्तारा ॥ भ्रम करि तजो त्रिगुणमय सारा ॥
त्रिगुणातीत ब्रह्मकौं सेवौ ॥ विषयनिको कछु नाम न लेवौ ॥ ३ ॥ विषय चित्त दोऊ भ्रम जा-
नौ ॥ ब्रह्म मांहि रहि दोनूं भानौ ॥ सकल अतीत आपुकौं देखौ॥सब घट एकहि द्वेत न लेषौ ॥४ ॥
ब्रह्मरू आपु एक करि मानौ ॥ द्वेत भाव कबहूं जिन आनौ ॥ निशिदिन ब्रह्म विचारहि करौं ॥
परि बल मेरौ हृदये धरौ ॥ ५ ॥ मम आधीन निरंतर रहो ॥ या विधि जगत बीज सब दहो ॥
यातैं बहुरि न भवमैं आवौ ॥ ब्रह्मरूप ह्वै ब्रह्म समावौ ॥ ६ ॥ यह में तो सों कह्यो विचारा ॥ सांख्यरु
जोग सकल कौ सारा ॥ मेरो गुह्यमतो अति जानौ ॥ बहुतहि भांति हृदयमें आनौ ॥ ७ ॥ तुमारो
हित मन मांहि विचार्यो ॥ मेंहों विष्णु हंस तन धार्यो ॥ में हो ब्रह्म सकलको ईस ॥ मो
बिन औरें सकल अनीस ॥ ८ ॥ साख्यरु सत्य तेज तप जोग ॥ प्रिय सम दम श्री की-
रति भोग ॥ औरौं बस्तु जहालौं सार ॥ ते समस्त मेरे आधार ॥ ९ ॥ तातें जो मम
शरणहि आवै ॥ उत्तम वस्तु सकल सो पावै ॥ मौबिन बहु साधनहीं गहै ॥ तोहूं कदै नहिं ॥४३॥
सुखकौं लहै ॥ ११० ॥ मैं निरगुण परि सब गुण सेवौं ॥ में निरपेक्ष सकल चित देवौं ॥ कछु न

चहौं करौं उपकार ॥ सबकौ हित सबको आधार ॥ ११ ॥ सब उपजावौं सब प्रतिपारौं ॥ सब पोषौं सब संकट टारौं ॥ तातैं मोहि तजै दुख पावैं ॥ तबहीं सुखी सरण जब आवैं ॥ १२ ॥ सरणागतकों वेगि उधारौं ॥ आपु मिलाऊं भव भय टारौं ॥ तातैं सब तजी मोकौं भजो ॥ पावो मोहि जगत भय तजो ॥ १३ ॥ उद्धव यहमें ज्ञान सुनायौ ॥ सनकादिकनि परम सुख पायो ॥ हृदय रह्यो संदेह न काई ॥ मोहि मिलनकी सब विधि पाई ॥ १४ ॥ बहुत भांति मम पूजा करी ॥ बहुत भाति अस्तुति विस्तरी ॥ मेरो भजन हृदेमें धर्यौ ॥ और सकल ततकाल निवार्यौ ॥ १५ ॥ आप कृतारथ तिन करि मान्यौ ॥ द्वैतभाव तजि ब्रह्म पिछान्यौ ॥ तब तिनकै अस्तुति करतेहीं ॥ अरु ब्रह्मा देखत आगेहीं ॥ १६ ॥ सबहीनकौं आनंद बढायौ ॥ तबमें अपनें धाम सिधायौ ॥ तातैं उद्धव यह तुम जानौ ॥ अपनें परम भाग करि मानौ ॥ ॥ १७ ॥ सनकादिक समान तुम किये ॥ तेई वचनमें तुमकौं दिये ॥ तातैं इहै ज्ञान उरधारौ ॥ ब्रह्म जानि सब द्वैत निवारौ ॥ १८ ॥ मम आधीन सदाही रह्यौ ॥ दूजी सकल वासना दहो ॥ एसें ह्वै निज पदकौं पैहौ ॥ जातैं जग बहुरौ नहिं ऐहौ ॥ १९ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ यह उद्धवतोसों कह्यौ, परम ज्ञान निज सार ॥ जाकौं गहि निज पद लहै, छूटै सब संसार ॥ १२० ॥ हंस गीत जो जन पढै, अरु सुनहीं चित लाय ॥ सो पावै निज तत्त्वकों, सदा कृष्ण तिहि साय ॥ १२१ ॥ ॥ इतिश्री भागवते महापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांहंसगीतायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा ॥ ॥ श्रीधर चवदै ध्यायमैं, भक्ति श्रेय कल्याण ॥ ध्यान योग हरि कहतहैं, साधन सहित प्रमाण ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ऐसो सुनि हरिजीसौं ज्ञाना ॥ भक्ति उधारक भ्रम सब हाना ॥ यह उद्धव दृढ करि उर धरी ॥ परि कछु प्रश्न कृष्णसौं करी ॥ १॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ परम दयाल दयानिधि देवा ॥ मोकौं बडो बतायो भेवा ॥ भक्तिहुतें पहियें तुम चरना ॥ छूटैं जगत जन्म अरु मरना ॥ २ ॥ परि अब एक प्रश्नसो कहौ॥मेरे या संदेहहि दहौ ॥ जे बहु विधि श्रुति समरति जानैं ॥ ते तौ बहु साधननिन खानैं ॥ ३ ॥ मुक्ति हेत बहु पंथनि कहैं ॥ अरु तेऊ बहुतें मिलि गहैं॥ताते तेऊ पंथ असेष ॥भक्ति समानकि कछू विसेष॥४॥जा जा पंथ तुमें प्रभु पइयें॥बहुरो भवसागर नहिं ऐयें॥सो सो पंथ कृपा करि कहौ॥मेरी सकल मूढता दहौ॥५॥तुम विन दूजो नहिं कहै ॥ज्ञान लहे सो तुमसौं लहै ॥ उद्धव एसी पूछी बानी ॥तब उद्धवकी प्रश्न बखानी ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव कल्प समय जब भयो॥तब यह तत्व लीनव्है गयौ॥पुनि में सृष्टि समय यह ज्ञाना॥ब्रह्मासौं श्रुति तत्त्व बखाना ॥ ७ ॥ सोई श्रुती पुनि ब्रह्म पढायौ ॥ भृग्वादिकहि स्वयंभू पायौ ॥ सप्त महारिषि भृगु जिन अदि॥अरु स्वयंभु मनु मन्वादि ॥८॥तिन अष्टनितें यह बिस्तारा ॥ नाना भांती भेद अपारा॥सुरनर असुरसिद्ध गंधर्व॥विद्याधर यक्षादिकसर्व॥९॥ सप्तद्वीपनर बहुतप्रकारा ॥ किन्नर किं पुरुषादि अदारा ॥ सत रज तम तिनकी उतपत्ती ॥ तातें बहु विधि भई प्रवृत्ती ॥ १० ॥ तिनतें भये बहुत विधि भेद ॥ तिन तेसेंही जाने वेद ॥ वेद तत्वसो कितहू रह्यौ ॥ आपु सुभाव समा तिन कह्यौ ॥ ११ ॥ ज्यौं ज्यौं तिनके भये सुभाव ॥ त्यौं त्यौं जान्यौं श्रुतिकौं भाव॥त्यौंहिं त्यौं

आचरणणि करै ॥ त्यौं त्यौं आपु स्मृति विस्तरै ॥ १२ ॥ परंपराजे तिनतें होवैं ॥ ते तिन कृतहि
स्मृतिनकूं जोवैं ॥ तिनतैं आपु करै बहु ग्रंथा ॥ नाना भांति चलावैं पंथा ॥ १३ ॥ एसी विधि
उपजैं पाखंडा ॥ ज्ञानरु धर्म होई सत खंडा ॥ मम माया करि मोहित होवैं ॥ तातैं तत्त्व पंथ
नहिं जोवैं ॥ १४ ॥ अपनी अपनी रुचि अनुमाना ॥ करैं कर्म अरु भाषैं ज्ञाना ॥ नाना विधि
साधननि सुनावै ॥ तिन तिनतैं कल्यण बतावैं ॥ १५ ॥ एकै बहु विधि धर्मनि भाषै ॥ तिनतैं
भुक्ति मुक्तिकौं आषैं ॥ एकैं कहै जसहि विस्तरियैं ॥ जातैं सकल दुख नितैं तरियैं ॥ १६॥ जा-
कौ जय या जगमें जोलौं ॥ सो नर रहे स्वर्गमें तालौं ॥ एक इहांके काम बखानैं ॥ आगैं स्व-
गे नरक नहिं जानैं ॥१७॥ जो तन ईहां करे भोगनिकौं ॥ ईहां छोडि जाई ता तनकौं ॥ आगे
सुष लैहै न कोई ॥ तातैं भोग करो सब कोई ॥ १८ ॥ एसें ग्रंथनि कहि भ्रमावैं ॥ धर्म राय
की खबर न पावैं ॥ एक कहैं सम दम अरु सत्य ॥ दूजो साधन सकल अनित्य ॥ १९ ॥ जोग
ग्रंथ बहु साख बखानैं ॥ तिनतैं मूढ मुक्तिकौं जानैं ॥ सामरु दाम दंड बहु भेद ॥ इनकौं गहैं
एक पढिवेद ॥ २० ॥ न्याय सहित सब उद्यम करैं ॥ उत्तम धर्म जानि उर धैरैं ॥ दान भोग उ-
त्तम करि भाखैं ॥ यह मुक्ति साधन करि राखैं ॥ २१ ॥ एकैं जज्ञ दान तप गैहैं ॥ एकहि जमरु
नियम संग्रहैं ॥ एकहि तीरथ व्रत मन धरैं ॥ कहूं कहांलौं बहुविधि करैं ॥ २२ ॥ तिनतैं स्वर्गा-
दिक सुख पावैं ॥ छीन भये ईहां फिर आवैं ॥ बहुन्यौ नीच जोनि बहु लैहैं ॥ नरकानिमें केई
जुग रहैं ॥ २३ ॥ अरु जब रहैं स्वर्गहूं मांहीं ॥ तबहूं कछु सुख पावैं नाहीं ॥ काम क्रोध निंदा आपमा
ना ॥ राग द्वेष इच्छा अभिमाना ॥२४॥ इत्यादिक निग्रमों नित रहैं ॥ तातैं कोंन भांति सुख लहैं ॥ भक्ति

विना विधि लोकहि जावैं ॥ काल तहातैं उलट ढहावैं ॥ २५ ॥ तातैं उद्धव भ्रमहैं सारा ॥ सुख
मम चर्णनिकै आधारा ॥ जिन मेरैं चर्णानि चित धऱ्यो ॥ साधन साध्य सकल परिहऱ्यो ॥
॥ २६ ॥ तिनकौं उद्धव जो सुख होई ॥ सो सुख कहूं न पावै कोई ॥ सों सुख कह्यौ सुन्यौ न-
हिं आवै ॥ सोईपैं जानैं जो पावै ॥ २७ ॥ सो पावे जो मो सों मागै ॥ ओर सकल आसाकौं
त्यागै ॥ मम आधीन निरंतर रहै ॥ दूजी सकल कामना दहै ॥ २८ ॥ सकल वस्तुकौं कीनौं
त्याग ॥ अंतःकरण खरौ वैराग ॥ सम दरसी नित सीतल चित्त ॥ मम चिंत न हृदये दृढव्रत्त ॥
॥ २९ ॥ ताकौं दशोदिसा सुखरूप ॥ सो सुख जो अति परम अनूप ॥ जो जन मेरै सुखकौं
जानै ॥ ताको मन कितहूं नहिं मानै ॥ ३० ॥ ताकै सब आधीनहिं रहैं ॥ परि सो मो विन
कछु नहिं गहैं ॥ ब्रह्मलोंककौं कदें न लेवैं ॥ इंद्रलोक पर चित्त न देवैं ॥ ३१ ॥ सब भूराज
नैंन नहिं देखैं ॥ सब पताल सुख त्रण करि लेखैं ॥ जोग सिद्धि अणिमादिक अष्ट ॥ जोगी
जिन हित साधे कष्ट ॥ ३२ ॥ तिनहूकौं कबहूं नहिं लेई ॥ आपुहुतें तिन सेबें तेई ॥ मुक्ति
कटहीं रहै सदाई ॥ परि मेरो जन छुवै न काई ॥ ३३ ॥ मेंहीं एक सदा प्रिय ताकौं ॥ मम
चरणनि चित रातो जाकौं ॥ ताहीं ते मेरे प्रिय सोई ॥ ता बिन और नहीं प्रिय कोई ॥ ३४ ॥
त्यौं मेरो सुत विधि नहि प्यारौ ॥ नहि संकर जो रूप हमारौ ॥ नहिं प्रिय त्यौं संकर्षण भाई ॥
श्रीअर्धंगा त्यौं नहिं साई ॥ ३५ ॥ यौं नहिं प्रिय मेरे देह ॥ जेसो तुमसों परम सनेह ॥ तुमसै
भक्त महाप्रिय मेरैं ॥ ताकै रहौं निरंतर नेरैं ॥ ३६ ॥ इच्छा रहित अरु सीतल हृद॥ सम निरवै-
र सबनि परि सुहृद ॥ ब्रह्मदृष्टि देखे सब मांहिं ॥ ब्रह्म विचार तजै पल नाहीं ॥ ३७ ॥ मैं ताकौं

प्रथम यौं करौं ॥ त्रिगुण पास बंधन विस्तरौं ॥ परि ताको ऐसो बल भारी ॥ काटी माया श-क्ति हमारी ॥ ३८ ॥ एते परि सब औगुण तजै ॥ उलटि आइ मम चरणनि भजै ॥ अरु सब सुख ताके वस रहैं ॥ सो ताजि मोहि कछू नहिं गहैं ॥ ३९ ॥ बहु तनके भवबंधदहै ॥ नाम प्रगट करि मेरो कहै ॥ तिन तिनकौं मम चरननि ल्यावै ॥ सदा सबनितैं आपु छिपावै ॥ ४० ॥ अहंकार ममता नहिं आनै ॥ मोहि छोडि दूजो नहिं जानै ॥ गुणातीत ता जनके पाछै ॥ यह तन धारि फिरेंमें आछे ॥ ४१ ॥ सातिक गुणधारी यह देह ॥ करै सुद्धता चरणनि षेह ॥ निह कंचन तनहूं नहिं रक्त ॥ मोही सौ तिनहीं अनुरक्त ॥ ४२ ॥ सीतल हृदय विगत अभिमाना ॥ कृपावंत सब एक समाना ॥ केहूं काम चलै नहिं बुद्धी ॥ मोही सेइ पाइ अतिसुद्धि ॥ ४३ ॥ मुक्ति हुतें नितनि स्पृह रहै ॥ ते जन मेरे सुषकौ लहै ॥ तासुखकौं सुख जानै तेई ॥ और सकल समझै नहिं केई ॥४४॥ निस्पृह जननी सुख पावै ॥ स्पृहावंतके निकट न आवै ॥ विषय सुषनि बस मानव होई ॥ इंद्रिय जीत सकै नहिं कोई ॥ ४५ ॥ परि आधीन होई मम जबहीं ॥ विषय कछू न सकैं करि तबही ॥ विषय शत्रुमें सकल निवारौं ॥ आप मिलाऊं भव भय टारौं ॥ ४६ ॥ पावक प्रकट कऱ्यौ ले अस्म ॥ होइ प्रचंड करै सब भस्म ॥ त्यौं मम भक्ति प्रकट जो होई ॥ जौर पाप रहैं नहिं कोई ॥ ४७ ॥ बहुरि पापकौ निकट न आवैं ॥ भक्ति प्रताप मोहिसो पावैं ॥ साधै सिद्ध जोग अष्टांग ॥ बहुविधि जज्ञ होई जो सांग ॥ ४८ ॥ सांख्य विचार सकल जो जानैं ॥ बेद पढैं देवें बहु दानैं ॥ तपहि करैं इंद्रिय मन बाधैं ॥ और सकल धर्मनिकौं साधैं ॥४९॥

१२ तोहू मोंहि कदें नहिं पावै ॥ भक्ति मोहि ततकाल मिलावै ॥ एक मोहि भक्ती बसकरै ॥

दूजेतें अति अंतर परै ॥ ५० ॥ श्रद्धा सहित करे मम भक्ती ॥ तासौं मेरी अति आसक्ती ॥ 
में ब्रह्मादि सकलको इस ॥ मो बिन औरे सकस अनीस ॥ ५१ ॥ सो में भक्तनके आधीन ॥
ते मोसों ज्यौं जलसौं मीन ॥ जो चंडाल भक्तिमें आवे ॥ ताही तन निरमलता पावे ॥ ५२ ॥
वर्णाश्रम सब वंदन करें ॥ ता पदरेणु सीसपर धरें ॥ तीनौं भवन दास सब ताके ॥ मेरी भक्ति
विराजे जाके ॥ ५३ ॥ विद्यापढै धर्म बहुकरै ॥ जीवदया बहुविधि विस्तरै ॥ सत्यवंत अरु दृढ
संतोष ॥ कबहूं कहूं करैं नहिं रोष ॥ ५४ ॥ कष्ट सहित पूरण तप साधै ॥ मन इंद्रिय देहादिक
बाधै ॥ तीरथ वृतनि आदिदे जेतै ॥ सब आचर्ण करे जो तेतै ॥ ५५ ॥ परिजो मेरी भक्ति न
होई ॥ तो निरमल नहिं होवे कोई ॥ बिन रोमांच द्रवें विनचित्त ॥ आनंदाश्रु कला बिन नित्त
॥ ५६ ॥ तौलों साध भक्ति नहिं कहैं ॥ भक्ति विना उरसुद्ध न लहैं ॥ द्रवै प्रेमतो जाको चेत॥
कबहूं रोवे मेरे हेत ॥ ५७ ॥ कबहूं गदगद बाणी होई ॥ कबहूं ऊंचे गावे सोई ॥
कबहूं मधुर सुर गावैं ॥ कबहूं प्रेममगन रहिजावे ॥ ५८ ॥ कबहूं नृत्य प्रेम
वस करै ॥ कबहूं हसे गुणानि विस्तरै ॥ लोकवेदकी लाज न जाने ॥ ज्यौं उनमत्त सकल यौं
ठाने ॥ ५९ ॥ जे एसो मेरो जन होई ॥ त्रिभुवन सुद्ध करत है सोई ॥ सकल भुवनके पापनि-
वारे ॥ सकल भुवनको सो जनतारै ॥ ६० ॥ जेसैं हैम मलिनता होई ॥ बहुजल मांहि धोइजें
सोई ॥ औरहि जगत बहुत विधि कीजे ॥ हेमहि बहुत कसोटी दीजें ॥ ६१ ॥ परिकेई
बिधि शुद्ध न होई ॥ कोटी जगत करै जो कोई ॥ सोई हेम अग्निमें दीजें ॥ देकरि फूंक तस
अतिकीजें ॥ ६२ ॥ तातें कोई मल नहिं रहैं ॥ अपनें सुद्धरूपकों गहै ॥ त्यौंहीं जतन 

करे बहुकोई ॥ परिआतम निरमल नहिं होई ॥ ६३ ॥ मेरी भक्ति मांहि जब आवे ॥ तब सबकर्म मेल छिटकावे ॥ निरमल होइ लहे निजरूप ॥ पावै मोहि तजै भव कूप ॥ ६४ ॥ ज्यौं ज्यौं मेरी भक्तिहि करैं ॥ मेरे गुणानि हृदयमैं धरैं ॥ श्रवन कीरतन सुमर ठानै ॥ ज्यौं ज्यौं और वासना भानै ॥ ६५ ॥ त्यौं त्यौं हृदय प्रकाशे ज्ञान ॥ देषे ब्रह्म मिटैं सब आन ॥ द्वैतभाव कितहूं नहि रहे ॥ निरभय निजानंद पद लहैं ॥ ६६ ॥ नैंननि मांहि रोगज्यौं होई ॥ तातै कछु न देखे सोई ॥ पुनि ज्यौ ज्यौ ओषदहि लगावें ॥ त्यौ त्यौ दृष्टि होत नितआवै ॥ ६७ ॥ त्यौ त्यौ वस्तु सकलकौ देषै ॥ आपुहि परम सुखी करि लेषै ॥ तातै भक्ति रूप दृढ अंजन ॥ जातैं देषै देवनिरंजन ॥ ६८ ॥ जो संसार सुखनिकौ ध्यावै ॥ सो संसार मांहि वहिजावै ॥ अरु जो ध्यावै मेरे चरना ॥ पावे मोहि मिटे भव मरना ॥ ६९ ॥ तातैं सब साधन भ्रम जानो ॥ सुपन समान द्वैत सब मानो ॥ मनक्रमवचन सकलकौ त्यागौ ॥ निशदिन ममचरणनि अनुरागौ ॥ ७० ॥ जो या भवहि चहै छटिकायौ ॥ अरु चाहै मम चरणनि आयौ ॥ ते तिनकी संगति परिहरै ॥ जे नर जुवतिसौं बाताहि करै ॥ ७१ ॥ जुवती सुखनि सुनै नहिं श्रवना ॥ नैनन देखे करे न गवना ॥ कबहूं भूलि हृदै नहिं आनै ॥ मनक्रमवचन निरंतर भानै ॥ ७२ ॥ ऐसे बंधन कहूं न होई ॥ कोटी संग करे जो कोई ॥ ज्यौं जोषित अरु जोषित संगी ॥ बंधन करें होत प्रसंगी ॥ ७३ ॥ तातैं तिनकी संगति तजै ॥ सावधान मम चरणनि भजै ॥ निरभय ठौरकरै अस्थाना ॥ मो बिन संगतजै सब आना ॥ ७४ ॥ मेरो ध्यान निरंतर करै ॥ प्रेमसहीत हृदेमें धरै ॥ कृष्णवचन सुनि हृदये राखै ॥ उद्धव और प्रष्णकौं भाषै ॥ ७५ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपा

ई ॥ हेप्रभु तुमहि कौन विधि ध्यावै ॥ कौंन रूपमें चित्त लगावै ॥ मैंतो मुगत सेइ तुमचरना ॥
पग्जिो चहै मिटायो मरना ॥ ७६ ॥ कृपासिंधु तुम करुणा करो ॥ ध्यान जोग बानी बिस्तारो ॥
सुनि उद्धव निजजनकी बानी ॥ श्रीहरिजी आपु बखानी ॥ ७७ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥
चौपाई ॥ उद्धवतोकौं ध्यान सुनाऊं ॥ जोग सहित सब अंग बताऊं ॥ जोगसहित जो ध्यानहि
करै ॥ तो मन बेग रजहि परिहरै ॥ ७८ ॥ सम आसनमें आस्थिर होई ॥ जंघनि परि राषे कर दोई
देह समान चले नहिं दोलै ॥ नासा दृष्टि कछू नहिं बोले ॥ ७९ ॥ इडा पूरि कुंभक थिरधारै ॥
पुनि रेचक पिंगुला निसारै ॥ बहुरौं पूरि पिंगुला द्वारा ॥ इडा निसारे वारंवारा ॥ ८० ॥ इंद्रिय
अर्थ सकल परिहरै ॥ मेरो हेत हृदेमैं धरै ॥ उद्धव द्वै विधि जोग कहावै ॥ ताको भेद गुरुतैं पावैं ॥ ८१ ॥
मंत्र सहितसो नाम सगर्भ ॥ मंत्र बिनासौं कहैं अगर्भ ॥ तातैं सो सगर्भसें नाम ॥ सो उत्तम
हैं प्राणायाम ॥ ८२ ॥ पूरै राषे रेचक करै ॥ ॐकारमंतर ऊर धरै ॥ घंटा नाद तुल्य उर
ध्यावै ॥ तासौं मिलि करि प्राण चलावै ॥ ८३ ॥ यों त्रिकाल अभ्यासे कोई ॥ प्राण मासहीमैं
स्थिर होई ॥ बहुरौं हृदय कमलको ध्यावै ॥ अष्ट पांसरीसों विकसावै ॥ ८४ ॥ ऊंधे मुखसौं
उर्द्ध विकरै ॥ ताके मध्य सूर्यहीं धरै ॥ सुरजमै पूरण ससि आनै ॥ शशिमें अनल तेजमय
जानै ॥ ८५ ॥ अनल मध्य ममरूपहि ध्यावै ॥ परम प्रीतिसौ मनहि लगावै ॥ अंगुष्ठ समहि
चतुर्भुजरूप ॥ अतिसीतल सुखदान अनूप ॥ ८६ ॥ नूतन सजल मेघतन स्याम ॥ तडिततु
ल्य अंबर रुचि धाम ॥ मंदहास सोभानिधि आनन ॥ मकराकृत कुंडल सुभ कानन ॥ ८७ ॥
कंठै कौस्तुभमणि वनमाला ॥ उर भृगुलता लक्ष्मी विशाला ॥ शंख चक्र गदा अरु पद्म ॥ हस्त

चार सोभा अति सझ ॥ ८८ ॥ हेम मुकुट हीरामनि जऱ्यौ ॥ अति सोभायमान सिर धऱ्यौ ॥
भालतिलक अंबुज वर नयन ॥ भक्तप्रसाद सुधाको अयन ॥ ८९ ॥ कर कंकन अंगद मुद्रिका ॥
पग नूपुर कटिमै क्षुद्रिका ॥ अंकुश वज्र ध्वजा अरविंद ॥ चिह्नित चरण हरण दुष द्वंद ॥ ९० ॥
नष मणि गणकी प्रभा प्रकास ॥ उर अज्ञान अंध तमनास ॥ और सकल अंगति सब भूषन ॥
जिनकैं ध्यान मिटैं सब दूषन ॥ ९१ ॥ वय किसोर परमहि सुकुमार ॥ नष शिख ध्यावै वारंवार ॥
चरणनिते प्रति अंगहि ध्यावै ॥ एकगहै एकहि छटिकावै ॥ ९२ ॥ यौंले नषतें शिष परजंत ॥
निसदिन हृदये ध्यावै संत ॥ औंर वासना सब परिहरै ॥ मेरोरूप अडि गमन धरै ॥ ९३ ॥
याविधि मन जब निहचल होई ॥ तब फिरि अंगन ध्यावे कोई ॥ अतिसुन्दर सुषमैं मन धारै ॥
और सकल चितवनहि निवारै ॥ ९४ ॥ याविधि मन अपनें वश होई ॥ तब विराटमैं धारै
सोई ॥ सकल विराटरूप मम जानै ॥ मोतें भिन्न कछू नहिं मानै ॥ ९५ ॥ यौं विराट ममरूपहि
जानी ॥ निहचल भयो भेदकौं भानी ॥ तब ताहूतें मनहि निवारै ॥ शुद्ध निरंजन ब्रह्म विचारै
॥ ९६ ॥ ब्रह्मविचार निरंतर करे ॥ सब आकार दूरि परिहरे ॥ आतम ब्रह्म एक करि देखे ॥
चेतन रूप अखंडित लेखे ॥ ९७ ॥ निजानंद निहचल निरधारा ॥ सत्य स्वरूपबार नहिं पारा ॥
एक अजन्मा आपें आप ॥ सुखदुख रहित पुन्य नहिंपाप ॥ ९८ ॥ काल न धर्म जीव नहिं
माया ॥ आपैं आप निरंजन राया ॥ जैसैं अग्नि अखंडित होई ॥ तातें उठें पतंगा सोई
॥ ९९ ॥ बहुरि अग्नी मांहि समावैं ॥ तबहि पतंगा नाम गवावैं ॥ एसैं आतम ब्रह्म
विचारै ॥ एक जानि करि द्वैत निवारै ॥ १०० ॥ ऐसी भांति विचारहि करते ॥ निसदिन

ब्रह्म मांहि मन धरते ॥ त्रिगुणाकार सकल भ्रम भागे ॥ होइ ब्रह्म सोवत ज्यौं जागे ॥
॥ १०१ ॥ ह्वै करि ब्रह्म ब्रह्ममिलि जावै ॥ जहांहुतें बहुरी नहिं आवै ॥ ऐसी विधि भव
दुःखनि दहै ॥ मेरो निजानंद पद लहै ॥ १०२ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ यह पेंडो तोसो
कह्यो जाकरि हरिपुरि जाइ॥ परियामैं बहु विघनहैं ते भाषौं समुझाइ॥१०३॥
इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांचतुर्द-
शोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ कह्यो पंदरहीं ध्यायमैं सिद्धि धारणाधार ॥ परम ज्ञानमें ऊ-
पजे, अंतराय तिनलार ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥
उद्धव जागे पंथ समुझाऊं ॥ तामें बहुतें विघ्न बताऊं ॥ जो इंद्रिय मन प्राणहि बाधें ॥ सावधा-
नव्है जो गहि साधे ॥ १ ॥ मोमें धरे अपनों चित्त ॥ ताकौं सिद्धि विघ्नहैं नित्त ॥ जोतिन
सिद्धिनिकौं परिहरे ॥ सो मम चर्णनिकौं अनुसरैं ॥ २ ॥ तिनसौं कबहूं रहैं भुलाई ॥ तो श्रम
सकल वृथाहीं जाई ॥ ऐसैं कृष्णबचन उरधारैं ॥ उद्धव कीनौं प्रष्ण विचारैं ॥ ३ ॥ उद्धव
उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ केइ प्रकार धारण देव ॥ अरु सिद्धिनकौं कइ विधि भेव ॥ तिनके
नाम कृपाकरि कहौं ॥ जोगिनिकेविघ्ननिकौं दहौ ॥ ४ ॥ तुमआधीन सिद्धिहे सकल ॥ तुमरि
कृपातें होई अकल ॥ उद्धव प्रष्ण हृदेमें धारी ॥ तब बोले गोपाल मुरारी ॥ ५ ॥ श्रीभगवा-
नुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव सिद्धि अठारह कहियैं ॥ मम धारणा करतें लहियैं ॥ तिनमैं

अष्टसिद्धि प्रधान ॥ दश मध्यमते करौं बषान ॥ ६ ॥ अथ अष्ट प्रधान सिद्धि ॥ जातें देहरूप अणु होई ॥ कितहूं नहीं आवर न कोई ॥ अणिमा सिद्धि नाम यह जानौ ॥ महा मोहनी माया मानौ ॥ ७ ॥ १ ॥ जो तन करै महा विस्तार ॥ जहां तहां कछु वारन पार ॥ महिमा नाम सिद्धिसो कहियै ॥ कबहूं ताकौं भूलिन गहियै ॥ ८ ॥ २ ॥ जो यह देहहिं अति लघु करै ॥ मुष्टि न आवै दृष्टि न परै ॥ सो यह लघिमा सिद्धि कहावै ॥ मम जन याकें निकट न आवै ॥ ९ ॥ ३ ॥ जे जे इंद्रिय भोगानि करै ॥ जहां विषयनि विस्तरै ॥ तिन सब भोग निजा करि लहियै ॥ प्राप्ती नाम सिद्धिसो कहियै ॥ १० ॥ ४ ॥ एक ठौरही बैठेरहै ॥ देषे सुने सकलकी कहै ॥ ताहि अगोचर रहे न काई ॥ सो प्रकाशक सिद्धि कहाई ॥ ११ ॥ ५ ॥ इंद्रिय देह बुद्धि मन प्रान ॥ तिहूंलोक जिनको अस्थान ॥ तिनकौं त्यौं प्रेरे ज्यौं जानै ॥ ताहि ईशिता सिद्धि बषानै ॥ १२ ॥ ६ ॥ विषय सुषनिकौं कदे न गहै ॥ जातें अति आनंदित रहै ॥ वसिता नामक सिद्धि कहावै ॥ मेरो भक्त निकट नहिं आवै ॥१३॥७ ॥ जो जो इच्छा मनमें ल्यावे ॥ सो सो सकल पलकमें पावे ॥ नाम अवसिता सिद्धिहि सोई ॥ मेरो जन आदरै न कोई ॥१४॥८॥अष्टसिद्धि ए अती प्रधान ॥ इनतें मध्यम भाषों आन ॥ अथ दश गुण हेतु सिद्धि ॥ तनके गुण व्यापें नहिं कोई ॥ नाम अनुरमी कहिये सोई ॥ १५ ॥ १ ॥ दूर विश्रबन सुने सब बैन ॥ २ ॥ दूरसरस देषे सबनैन ॥ ३ ॥ मनके बेग मनो जव धावै ॥ ४ ॥ कामरूप बहुरूप बनावै ॥ १६ ॥ ५ ॥ परके तनमें करे प्रवेस ॥ सिद्धि छठी परकाय प्रवेस ॥ ६ ॥ निज इच्छातें तजे शरीर ॥ सो स्वच्छंद मृत्यु है वीर ॥ १७ ॥ ७ ॥ मिलै अप्सरनि विजरे देवा ॥ पेषै तिनहि लहें सब भेवा ॥ सो सुर क्रीडा परसन कहियैं ॥ मिथ्याफल

है कदै न गहियैं ॥ १८ ॥ ८॥ जो संकल्प करे सो होई ॥ जथा संकल्प कहियै सोई ॥ ९ ॥
जहा गयौ चाहै तह जावै ॥ अप्रतिहतगति सिद्धि कहावै ॥१९ ॥ १० ॥ ए दशामिलि अष्टा-
दश कहियै ॥ औरौ पंच तुच्छ नहिं गहियै ॥ अथ पंच तुच्छ सिद्धि ॥ वर्त्तमान अरु भूत
भविष्य ॥ सब कछु जाने लष्य अलष्य ॥ २० ॥ यहहै सिद्धि त्रिकाल ज्ञान ॥ आगे सिद्धि
वषानैं आन ॥ १ ॥ सीत उष्ण आदिक जे द्वंद्व ॥ तिनहि निवारे सो अद्वंद्व ॥ २१ ॥ २ ॥
परके मन आदिककूं जानैं ॥ सो अभिज्ञता सिद्धि बखानैं ॥ ३ ॥ विष अरु अग्नि सूर्य जल
थंभा ॥ जातें होवे इसो अचंभा ॥ २२ ॥ प्रतिष्टंभ सो सिद्धि कहावै ॥ हरिजन ताके निकटन
आवै ॥ ४ ॥ काहू सौ जीत्यो नहिं जाई ॥ सो अपराजय सिद्धि कहाई ॥ २३ ॥ ५॥ वे अष्टा-
दश अरु ए पंच ॥ मिलितेईसे सकल प्रपंच ॥ ऐसें मूलरूप उचारी ॥ साषा बहुत नहीं
विस्तारी ॥ २४ ॥ २३ ॥ मम धारणा करतें आवैं ॥ जोगिनकौं बहुविधी चलावैं ॥ जो तिनतें
वेचलेन कबहीं ॥ तो मम चर्णनि पावै तबहीं ॥ २५ ॥ जाहिधारणातें जो आवे ॥ एसैं जोगीकूं
विचलावे ॥ सो सब उद्धवतोसों कहौं ॥ जोग पंथके विघ्नानि दहौं ॥२६॥ सगुणरूप जो कछु विस्तारा॥
सो नानाविधि रूप हमारा ॥ ताही ताहि मांहि मन लावै ॥ तैसी तैसी सिद्धिहि पावै ॥ २७ ॥
अथ सिद्धि साधन तेवीस ॥ २३ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गंधा ॥ पंचभूतके सूक्षम बंधा ॥
तिनमैं जा जामें मनलावै ॥ ता ताके रूपहि मिलि जावै ॥ २८ ॥ महत्तत्त्वमैं मनहि लगावै
पंचभूत साष करि ध्यावैं ॥ जा जा साषामैं मनधारै ॥ ताही ता समदेह बधारै ॥ २९ ॥ २ ॥ ॥४८॥
पंचभूतके जे परमानू ॥ तिनमें जोगी धारैं ध्यानू ॥ ता ता सम लघु देहहि करै ॥ काहूंसौं

कहु गह्यौ न परै ॥ ३० ॥ ३ ॥ सातिक अहंकार मन धारै ॥ ताकौं मेरौ रूप विचारै ॥ तबजे
इंद्रिय भोगनि करै ॥ बहुत भांति विषय विस्तारैं ॥ ३१ ॥ ते ते सुख ए जोगी पावैं ॥ सो वह प्राप्ती
सिद्धि कहावै ॥ ४ ॥ मेरो सूत्ररूप मन आनै ॥ तातैं त्रिभुवनकी गति जानै ॥ ३२॥ ज्यौंकर दीवाले
घर देखै ॥ यौं त्रिभुवन आचर्णनि पेखै ॥ ५ ॥ मेरे कालरूप मन धारै ॥ सब व्यापक सब ईस वि-
चारै ॥ ३३ ॥ तातैं सिद्धि ईशिता पावै ॥ त्रिभुवन जाने त्यौं वरतावै ॥ जाही सौं जोई करवावै ॥
ताके अंतर त्यौं उपजावै ॥ ३४ ॥ ६ ॥ आदिपुरुष जो मेरो रूप ॥ तामे धारे चित्त अनूप ॥
तातैं वासिता सिद्धि पावैं ॥ विषयनि विन आनंद बढावैं ॥ ३५ ॥ ७ ॥ निरगुण ब्रह्म-
मांहि मन धारै ॥ सब करता सब ईस विचारै ॥ तातैं सिद्धि अबासिता लहै ॥ सोई सो पावै
जो चहै ॥ ३६ ॥ ८ ॥ शुद्ध सत्वमय मोहि विचारै ॥ तामैं जोगी मनकौं धारै ॥ तातें सुद्ध
आपुहीं होई ॥ षट उरमि व्यापे नहिं कोई ॥ ३७ ॥ ९ ॥ गगन धार प्राण मन धारै ॥ शब्द
रूप उर मांहि विचारै ॥ तब जहँ लगे पवन आकाश ॥ सुने तहां लौं वचन निवाश ॥ ३८ ॥
॥ १० ॥ नैननिमैं सूरजकौं धारै ॥ अरु सूरजमें नैन विचारे ॥ अपरिच्छिन्न मोहिकौं लेषे ॥ तब
सो तिहूं लोककौं देषे ॥ ३९ ॥ ११ ॥ पवनसहित मोमें मन धारै ॥ जहां तहां मम रूप विचारै ॥
ऐसैं मनकौं जहां चलावै ॥ मनके वेग तहां ऊजावैं ॥ ४० ॥ १२ ॥ सारे मेरे रूप विचारै ॥ तिन-
ही तिनमैं मनकौं धारै ॥ चाहै भयो रूप तब जोइ ॥ वानर लागै होवे सोई ॥ ४१ ॥ १३ ॥
कन्यो प्रवेसहि चाहै जामैं ॥ ध्यान आपुनौ आने तामैं ॥ तब ता तनमें जावे ऐसैं ॥ भृंग
१३ फूलतें फूलहि जेसैं ॥ ४२ ॥ १४ ॥ मूल द्वार पग बंध लगावैं ॥ प्राण चलाइ सीसमे ल्यावै ॥

ब्रह्मरंध्रमें गमनहि करै ॥ जो मन होइ तांहि अपुसरै ॥ ४३ ॥ १५ ॥ स्वर्ग देव सुर बनिता ध्यावै ॥ मेरो रूप जानि मन ल्यावै ॥ तबते सहित विमानहि आवै ॥ ते जोगीकूं सुख उपजावै ॥ ४४ ॥ १६ ॥ जो जो वस्तु हृदेमें धारै ॥ ता ताको प्रभु मोहि विचारै ॥ सोई सो पावै ततकाल ॥ जबहीं चाहे काल अकाल ॥ ४५ ॥ १७ ॥ सकल नियंता सबको ईस ॥ नित स्वाधीन सकलके सीस ॥ जोगी एसो मोकों ध्यावै ॥ ताकी आणन कोइ मिटावै ॥ ४६ ॥ १८ ॥ ज्ञान रूप सब अंतरजामी ॥ ध्यावै मोहि सकलको स्वामी ॥ अपनी जानै जन्म मरनकी ॥ ज्ञान त्रिकाल सबके मनकी ॥ ४७ ॥ १९–२० ॥ प्रकृति गुणनितें न्यारो जानै ॥ अरु तिनको स्वामी करि मानै ॥ ध्यावै मोहि अद्वंद्व ॥ तब कोई नहिं व्यापै द्वंद्व ॥ ४८ ॥ २१ ॥ सबमें व्यापक सकल अतीत ॥ लिपै न सूर अग्नि जल सीत ॥ एसो मोकौ ध्यावै कोई ॥ एसो लक्षण पावै सोई ॥ ४९ ॥ २२ ॥ जे मेरे आवतारनि ध्यावै ॥ आयुध छत्र चमर मन ल्यावै ॥ ताकौ कहु न पराजय होई ॥ सबहिन मांहि विराजे सोई ॥ ५० ॥ २३ ॥ यौं धारणा करै मम जोई ॥ सिद्धिनि पावै जोगी सोई ॥ परिए अंतरायहें सारै ॥ मेरे भक्तनि दूरि निवारै ॥ ५१ ॥ मोतें ए इनतें मैं नाहीं ॥ तातै मम जन निकट जाहीं ॥ मोहि न लहें नहि जे लेवैं ॥ मोहि भजैं तिनकौ ए सेवैं ॥ ५२ ॥ मोहितें उतपति सब इनकी ॥ में प्रतिपाल करौं तिन तिनकी ॥ मम आधीन सिद्धि अरु जोग ॥ सांख्यरु ज्ञान धर्म धन भोग ॥ ५३ ॥ सबको जनक सकलको स्वामी ॥ मैं सब इनको अंतरजामी ॥ सबमें बाहिर भीतर एक ॥ मोमें वरतै सकल अनेक ॥ ५४ ॥ पंचभूत सब भूतनि मांहीं ॥ बाहिर भीतर दुजा

नाहीं ॥ त्यौं सबमेंहीं नाहीं आन ॥ आनदृष्टि सोई अज्ञान ॥ ५५ ॥ तातें द्वैत भाव नहिं आनै ॥ मेरो रूप सकल करि मानै ॥ साधन सिद्धि सकल भ्रम तजें ॥ मेर चर्ण निरंतर भजै ॥ ५६ ॥ मम प्रसाद मम चर्णनि पावैं ॥ अति अपार भवदुःष मिटावैं ॥ यह में तासों भाष्यौ ज्ञान ॥ यातें और सकल अज्ञान ॥ ५७ ॥ दोहा ॥ एक ब्रह्म करि देषनौ, यह सुनि दुष्कर ज्ञान ॥ पूछी विष्णु विभूति तब, उद्धव परम सुजान ॥ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांपंचदशोऽध्यायः १५ ॥ दोहा ॥ कहत सोलमैं ध्यायमैं, प्रगट रूप इह देश ॥ ज्ञान वीर्य प्रभाव सब, वर्णन करी विशेष ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ तुमहो परम ब्रह्म अविनासी ॥ चिदानंद विज्ञान प्रकासी ॥ आदिरु अंत मध्य नहिं जाकौ ॥ कोई भेद लहे नहिं ताकौ ॥ १ ॥ तुमहीं सकल जगत उपजावौ ॥ तुम प्रतिपालौ तुम विनसौ ॥ तुम सब बाहिर अरु सब मांही ॥ सदा अलिप्त लिपौ कहु नाहीं ॥ २ ॥ जहां तहां तुमहींहों एका ॥ इह सब भ्रम जो दृष्टि अनेका ॥ हे प्रभु यह जग अति विस्तारा ॥ ऊंच नीच बहु विविध प्रकारा ॥ ३ ॥ अरु या जीव सत्य करि मान्यौ ॥ विषयनिसौं बहुभांति बधान्यौ ॥ याकै एक दृष्टि क्यौं आवे ॥ कैसें सकल ब्रह्मकरि ध्यावे ॥४॥ ज्ञानवंत तव जनहैं जेतें ॥ ब्रम्ह दृष्टि देखतहैं ते तें ॥ तातैं अब तुम करुणा करौ ॥ निजविभूति मोंसौं विस्तरौ ॥ ५ ॥ तिनमें देखि सबनिमें देषौं ॥ तब अद्वैत ब्रह्मकरि लेषौं ॥ सुनि उद्धवके उत्तम बैन ॥ बोले हरिजी करुणा ऐन ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥

चौपाई ॥ उद्धव प्रश्ण भली तुम कीनी ॥ जातैं परै परमगति चीनी ॥ यहि प्रश्ण अर्जुननें
करी ॥ तासों जामें विधि उचारी ॥ ७ ॥ तेही विधि अब तोहि सुनाऊं ॥ ऐसें ब्रह्म दृष्टि
उपजाऊं ॥ कौरव अरु पांडव कुरुषेत ॥ जबहि जुरे भारतकै हेत ॥ ८ ॥ तब अर्जुन कौरवहूं
विषै ॥ सकल बंधु अपने करि लिषै ॥ इन सबहिनकों जो में मारौं ॥ आपुहि आप नरकमैं
डारौं ॥ ९ ॥ ऐसी विध आन्यौंहंकार ॥ आपुहि मान्यौं मारनहार ॥ तबमें ताहि
ज्ञान समुझायौ ॥ ताकौ तब अज्ञान मिटायौ ॥ १० ॥ प्रश्णकरी अर्जुन तब एसी ॥ तुम
मासौं कीनीहै जैसी ॥ तातैं उत्तरकौं उचरौं ॥ या विधि ब्रह्मदृष्टिकौं करौं ॥ ११ ॥ उद्धव में
सबहिनको स्वामी ॥ अरु सबहिनको अंतरजामी ॥ आपहुनें सबकौं उपजाऊं ॥ सब पापों सब
कौं वरताऊं ॥ १२ ॥ सकल रहै मेरे आधीन ॥ मोहीमें सब होवें लीन ॥ तातें सब में दूजा ना-
हीं ॥ यौं विभूति जानो मन मांहीं ॥ १३ ॥ परितोसों विशेषसों कहौं ॥ तेरी द्वैत दृष्टिकौं दहौं ॥
सब रक्षकानि मांहि में रक्षक ॥ तिनमें काल सकल जे भक्षक ॥ १४ ॥ सोमें प्रकृति गुणनिकी
आदी ॥ पंचभूतमें में भूतादी ॥ सूत्रहि सकल गुणिनिमें जानों ॥ बडे मांहि महत्तत्त्वहि मा-
नो ॥ १५ ॥ सूक्ष्मानि मांहि जीव मुहि देषो ॥ सब दुर्जयानि मांहि मन लेषौ ॥ बेदनिमें ब्रम्हा
मुहि जानौ ॥ ॐकार मंत्रनिमैं मानौ ॥ १६ ॥ छंदनिमे गायत्रीछंद ॥ में अकार अक्षरके वृंद ॥
मैं सबदेवानि मध्य पुरंदर ॥ सकल वसुनमैं मैं वैश्वानर ॥ १७ ॥ नीलकंठ एकादश हरमैं ॥
विष्णुनाम द्वादश दिनकरमैं ॥ तिनमें भृगुजे सप्त महाऋषि ॥ तिनमैं मनुजै सबै राजऋषि ॥
॥ १८ ॥ देवऋषिनिमें नारद जानौ ॥ कामधेनु धेनुनमैं मानो ॥ सिद्धनिमैं मैं कपिल स्वरूप ॥

पंखी माही गरुड मम रूप ॥ १९ ॥ प्रजापतिनमें मेंहों दच्छ ॥ तिनमें मकर जहांलौं मच्छ ॥
वादनिमें अध्यातम वाद ॥ सब असुरनिमें मे प्रह्लाद ॥ २० ॥ तमप्रकासक मांहि दिनेस ॥
जक्ष रक्ष गण मांहि धनेस ॥ तिनमें सोम सकल जे उडुगन ॥ सब धातुनमें मेंहौं कंचन॥२१॥
गजनिमांहि में गज ऐरावत ॥ में अनंग जे सृष्टि उपावत ॥ तहा वरुण जे सब जलजंत ॥
नागनिमें मम रूप अनंत ॥ २२ ॥ नरनिमांहि मम रूप नरेस ॥ सर्पमांहि वासुकि सर्पेस ॥
उच्चैश्रवा हयनिमें जानों ॥ दंडधारि तिनमें जम मानो ॥ २३ ॥ सकल मृगनिमें मैं मृगराज ॥
सरितनिमें गंगा सरिताज ॥ सब आश्रमनि मांहि संन्यास ॥ वर्णनिमांहि विप्र मम वास
॥ २४ ॥ सकल सरनमें रूप समुद्र ॥ सकल धनुषधारिनमैं रुद्र ॥ मेंहो धनुष आयुधनि मांहीं ॥
परम निवास मेरु मो मांहीं ॥ २५ ॥ जे अति गहन हिमालय तिनमैं ॥ में पिप्पल सब वनस्प-
तिनमैं ॥ मैं पुरोहितानि मांहि वसिष्ठ ॥ तहां बृहस्पति जे ब्रह्मिष्ठ ॥ २६ ॥ सेनापतिन माहि
सेनानि ॥ धरम प्रवृत्तक ब्रह्मा जानि ॥ सकल औषधिनमैं जव जानौं ॥ पितरनि मांहि
अर्यमा मानौ ॥ २७ ॥ ब्रह्मयज्ञ सब यज्ञनि मांहीं ॥ वृत अद्रोह समाको नाहीं ॥ वायु अग्नि
जल सूर जबानी ॥ अरु मन ए षट सोधक जानी ॥ २८ ॥ चतुरनि मांहीं आतमविचार ॥
ब्रह्मचारीमें सनतकुमार ॥ इस्त्रिनिमें सत रूपा रानी ॥ पुरुषनिमें स्वायंभू जानी ॥ २९ ॥
सावधान तिनमैं संवत्सर ॥ अभय ठौर तिनमैं उर अंतर ॥ मेंहों धर्म अभयको
दान ॥ गुह्यनमें प्रिय मौन समान ॥ ३० ॥ त्रिया पुरुष संजोगी जे ते ॥ ब्रह्मा-
हुतें उरें सब ते ते ॥ सकल बानरनिमैं हनुमंत ॥ ऋतुनि माहि मम रूप वसंत ॥ ३१ ॥ मार्ग-

शीर्ष मासनिम जानौ ॥ नक्षत्रनिमैं अभिजित मानौ ॥ देवलअसित रहित जे दुंदर ॥ कमल
कोस सबहिनमैं सुंदर ॥ ३२ ॥ जुगनि मांहि सतजुगसैं नाम ॥ वेदनिमांहि वेदमैं साम ॥ व्या-
सनिं माहि व्यास द्वैपायन ॥ तिनमैं तुमजें विष्णु परायन ॥ ३३ ॥ कविनि मांहि कवि शुक्र
हि जानौ ॥ सक्तिवंत मम यह तन मानौ ॥ विद्याधरनी मांहि सुदर्शन ॥ पद्मराग तिनमैं जे
मणिगण ॥ ३४ ॥ सब तृण जातिनमैं कुस जानौ ॥ होम वस्तुमैं गोघृत मानौं ॥ तिनमैं धनजे
सब व्यवसाय ॥ जय मारग सब तिनमैं न्याय ॥ ३५ ॥ अंग समाधि जोग अंगनिमै ॥ मेंहों
क्षमा क्षमावंतानिमैं ॥ धीरजमें जे धीरजवंत ॥ मैं बल तिनमें जे बलवंत ॥ ३६ ॥ छलहि मां-
हि छलमेंहों जूप ॥ मेरे हेत कर्म मम रूप ॥ वासुदेव संकर्षण वीर ॥ प्रद्युम्न अनिरुद्ध सरीर
॥ ३७ ॥ नारायण हयग्रीव महीधर ॥ नरहरि अरु जमदग्नि पुत्रवर ॥ व्यूहार्चन नव पूजा
जानौ ॥ वासुदेव तहँ मोकौं मानौं ॥ ३८ ॥ तिनमैं थिरता जे सब भूधर ॥ पूरव चित्ति नाम-
क ते अप्सर ॥ मेंहो विस्वावसु गंधर्व ॥ धरणीमांहि गंधमें सर्व ॥ ३९ ॥ रस जल मांहि
शब्द आकास ॥ रवि शशि तारनिमैं परकास ॥ तेजस्विनिमैं पावक जानौ ॥ विप्र भक्तातीनि
मैं बलिमानौ ॥ ४० ॥ वीरनि माहीं अर्जुन सार ॥ में सब उतपति थिति संहार ॥ इंद्रिय मन
बुध्यादिक जे ते ॥ मेरी शक्ति प्रवृतें ते ते ॥ ४१ ॥ सबहेतून्हे अर्थनि गहैं ॥ ते जड तिनमैं
चेतन रहौं ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गंध ॥ तिनमैं पंचभूत संबंध ॥ ४२ ॥ इंद्रिय मन महत्तत्त्व
हंकार ॥ त्रिगुण सहित ए प्रकृति विकार ॥ प्रकृति पुरुष जहां कछु जेतौ ॥ मेरो रूप सकलहै
तेतौं ॥ ४३ ॥ मो बिन कहूं कछूहें नाहीं ॥ मेहीं प्रगट रहौं सब माहीं ॥ जो परमाणु गिणोमें

॥५१॥

जबहीं ॥ तो तीन पारन पावों तबहीं ॥ ४४ ॥ परी मम निरमित जे ब्रह्मंड ॥ तिनकों गितन परै नहिं खंड ॥ तातैं कहौं विभूति कहांलैं ॥ जो कछु मेरोरूपरातहांलैं ॥ ४५ ॥ औंरहु जुगति विभूती कहौं ॥ द्वैत दृष्टि एसी विधि दहौं ॥ लज्जा तेज क्षमा धन दान ॥ सुंदरता ऐस्वर्य रु ज्ञान ॥ ४६ ॥ बल सौभाग्य धैर्य जद जहां ॥ ममविभूति जानौ तह तहां ॥ ए विभूति तोसों कछु कही ॥ अति अपार कहिवेकों रही ॥ ४७ ॥ मन थिर काजकरि यह जानौ ॥ इह अज्ञान कढें मतिमानौ ॥ इंद्रिय देह बुद्धि मन प्रान ॥ निश्चल करि देखो भगवान ॥ ४८ ॥ मनतें सब आकार उतारौ ॥ चेतन मेरो रूप विचारौ ॥ एक अखंडित जहँ तहँ सोई ॥ आपापर दूजा नाह कोई ॥ ४९ ॥ ऐसौ ज्ञान ब्रह्मको पावौ ॥ ब्रह्महि पाइ जगत नहि आवौ ॥ तन मन इंद्रिय बुद्धि प्राना ॥ थिर करि जिनन न धर्‌यौ मम ध्याना ॥ ५० ॥ ताके बहुत भांति आचरना ॥ जप तप व्रतादिक करना ॥ काचे कलस भर्‌यौ जल जैसें ॥ पल पल श्रवि जावै सब तैसें ॥ ५१ ॥ तातें वचन काय मन प्रान ॥ सबकौं बंधकरें मम ध्यान ॥ मोहि ध्याइ मो मांही समावै ॥ ता संसार मांहि नहिं आवै ॥ ५२ ॥ दोहा ॥ ॥ ज्यौं उद्धव तोसौं कह्यौ, यह विभूतिकौं ज्ञान ॥ त्यौंहीं सूषम थूल सब, देषो श्रीभगवान ॥ ५३ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेविभूतिवर्णनेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ हंस उक्त स्वधर्म पुनि, भक्ति लक्षणा प्रीत ॥ कही सतरमें ध्यायमैं, वर्णाश्रमकीरीत ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ दासनिमैं उद्धव निज दास ॥

जाके हृदय ज्ञान प्रकास ॥ जिन जीवनकी हित मनधरी ॥ तातैं प्रश्ण कृष्णसौं करी ॥ १ ॥
॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ प्रभु तुम कल्प आदि उच्चाऱ्यौ ॥ भक्ति निमित्त धर्म बिस्ताऱ्यौ ॥
वर्णाश्रम आदिक नर जेते ॥ तिन धर्मनिसौं लागे ते ते ॥ २ ॥ तिनमैं कोई भक्तिहि पावै ॥
कोई करम सिंधु बहि जावै ॥ तातैं तुम करुणामय देवा ॥ भाषो नर धरमनिको भेवा ॥ ३ ॥
धर्म करत ज्यौं उपजे भक्ति ॥ तुमरे चर्ण बढे अनुरक्ति ॥ छूटै काल जाल भव कूप ॥ लहे
तुमारौं ब्रह्मस्वरूप ॥ ४ ॥ जद्यपि तुम विधिसौं विस्ताऱ्यौ ॥ जब प्रभु हंसरूप तन धाऱ्यौ ॥
परिबिहु काल कहेतैं भयौ ॥ तातै धर्म लीन ह्वै गयौ ॥ ५ ॥ हैं कछु औंर करे कछु ओर ॥ जातैं
जविन पावे ठौर ॥ तातैं तुम करुणा करि भाषौ ॥ बहे जाततै जीवनि राषौ ॥ ६ ॥ अरु यह तुमहीं
जानै देवा ॥ तुम बिनऊ दूजो लहै न भेवा ॥ तुमहीं कहो सुनो उर धरौ ॥ तुमहीं राखौ तुमही करौ ॥७॥
ब्रह्माहूंकी सभा मझारी ॥ वेदजहां नित मूरतिधारी ॥ तहांहु यह कोंई नहीं जानैं ॥ ज्यौ बंधे
त्यौं सबें बखानै ॥ ८ ॥ अरु यह कैसें करि मन आवै ॥ कर्मकरे तें भक्तिहि पावै ॥ अरु तुम
याही कौं मन धारौ ॥ जातें निज धर्मनि विस्तारौ ॥ ९ ॥ जो वैकुंठ प्रयाणो करि हैं ॥ यह निजधर्म
ता पीछे कोई नहिं कहै ॥ यह निज धर्म ग्रसहीं रहै ॥ १० ॥ तातैं अब तुम करुणा करौ ॥ यह
निजधर्म वेगि विस्तरौ ॥ ऐसी सुनि उद्धवकी बानी ॥ आपुहि बोले सारंगपानी ॥ ११ ॥ श्री-
भगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ धन्य धन्य उद्धव जन मेरे ॥ दूजो नहीं बराबर तेरे ॥ मेरो निज जन
कहियै सोई ॥ हेत पराए वरते सोई ॥ १२ ॥ तातैं तुम परकारज कऱ्यौ ॥ मोतें परम
धम विस्तऱ्यौ ॥ उद्धव परम धरम मम भक्ती ॥ और सकलतें करै विरक्ती ॥ १३ ॥

भक्ति विना जोई जो धर्म ।। सो सब जानौ परम अधर्म ।। जबमें कियौ प्रथम संसार ।। तब नाहिं
होतो विना कर्म बिस्तार ।।१४।। जेई जे मानव तन धरैं ।। मोही सेईते ते उधरैं ।। ह्वै कृतकृत्य लहैं
मम धाम ।। तातें सो कृत जुगसें नाम ।। १५ ।। तब ॐकार रूप सब वेदा ।। ऐसें कछुनहूते
भेदा ।। सब इंद्रिय मन निहचल करै ।। मेरो ध्यान निरंतर धरै ।। १६ ।। एसें पापनि परि
हरै ।। सब मेरे चर्णानि अनुसरैं ।। त्रेता विषें भए मतिमंद ।। विषयनितें मानैं आनंद ।। १७ ।।
तिन निमित्त बहु उद्यम करैं ।। राजस तें पापनि बिस्तरैं ।। तब तिन हेत बेद बिस्तारैं ।। बहुत
भांतिके कर्म निवारैं ।। १८ ।। वर्णाश्रमके भेद उपाये ।। न्यारे न्यारे कर्म ग्रहाये ।। अपनौ धरम
त्याग जो करै ।। सो नर जाई नरकमें परै ।। १९ ।। ऐसैं बहुविधि भय दिषलायौ ।। थोरे कर्म
निमें ठहरायौं ।। तामें भाष्यौं उत्तम भजन ।। मोविन सकल कर्मकौं तजन ।। २० ।। बहुरो बहु
आरंभनि चहै ।। राजसतें नहिं निश्चल रहै ।। तिनके हेत यज्ञ उपजायौ ।। विष्णुरूप कहि
सबनि सुनायौं ।। २१ ।। विष्णु जजन कीजेंतामाहीं ।। द्वैत दृष्टि आनीजैं नाहीं ।। मैं मुषहूंते
विप्र उपायो ।। क्षत्रिय बाहुनितेंहि बनायो ।। २२ ।। जंघन बैस्य पदनतें सुद्रा ।। पदनीचे और
सब क्षुद्रा ।। पुनि गृहस्थ जंघनतें कियो ।। ब्रह्मचर्य उर संभव लीयौ ।। २३ ।। वक्षस्थल उप-
ज्यौं बनवास ।। मस्तकहुतैं रच्यौं संन्यास ।। तातें पिता सकलमें एक ।। मोतें उपज्यौं सकल
अनेक ।। २४ ।। तातें मोहि मेटि जोकरैं ।। सो सब जाइ बंधनमें परै ।। जा जा अंगहुतें जो
उपज्यो ।। त्यौं त्यौं ताको लक्षण निपज्यो ।। २५ ।। ऊंचे अंगहुतैं तो ऊंचौ ।। नीचे अंगहुतैं
९४ सो नीचौ ।। तिनके बहुविधि भये सुभाव ।। तातैं उपजैं नाना भाव ।। २६ ।। सम दम सत्य

क्षमा संतोष ॥ सदोदयाल न उपजै रोष ॥ तप अरु सौच न भृम भक्ती ॥ इन लंक्षणन विप्र अनुरक्ती ॥ २७ ॥ क्षमा तेज बल उद्यम धीर ॥ सूर उदार अचल गंभीर ॥ विप्र भक्त मेरो दृढभाव ॥ ए क्षत्रीके भए सुभाव ॥ २८ ॥ बुद्धी आस्तिक दान अदंभ ॥ विप्रभक्त उद्यम आरंभ ॥ वैस्य भयो लीनेंए लक्षण ॥ मंदबुद्धि परि महा विचक्षण ॥ २९ ॥ गाई अरु ते वर्णकौं सेवै ॥ तिनतैं कछू मिले सो लेवै ॥ सम संतोष कपटता नाहीं ॥ ऐसें लक्षण सूद्रनि माँहीं ॥ ३० ॥ मिथ्यावादरु हिंसा चोरी ॥ बुद्धि नास्तिक हृदय कठोरी ॥ काम क्रोध अरु लोभ विकारा ॥ वर्ण नीचके यही प्रकारा ॥ ३१ ॥ काम क्रोध मद तृष्णा रहित ॥ सत्य क्षमा परमारथ सहित ॥ जीवदया अरु तजै अधर्म ॥ यह सबकौं साधारण धर्म ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचर्यके धर्मनि कहौं ॥ जातैं भक्ति उपाई चहौं ॥ विप्र क्षत्रि अरु वैस्य त्रिबरना ॥ इनकौं सकल वेद विधि करना ॥ ३३ ॥ गर्भाधानादिक संस्कार ॥ तिहूं बरणकौं यह आचार ॥ जबते बहुरि जनेऊ पावै ॥ तबते गुरुके निकट रहावै ॥ ३४ ॥ बहुविधि गुरुकी सेवा करै ॥ वेदपढै अर्थनि उरधरै ॥ जनेउ मेषला कर जपमाला ॥ दंड कमंडल अरु मृगछाला ॥ ३५ ॥ दंत वस्त्र तन मल न निवारै ॥ सीस जटा हस्तनि कुशधारै ॥ आसन चंचल कदैं न करै ॥ लोक वारता हृदे न धरैं ॥ ३६ ॥ मूत्र पुरीष त्याग आसनाना ॥ होमरु जप भोजन जलपाना ॥ इनमें बचन नहीं उच्चरै ॥ नष केसादिक दूर न करैं ॥ ३७ ॥ सदा निरंतर दृढव्रत धारै ॥ कबहूं भूलि बिंदु नहिं डारै ॥ जो आपहुतैं जावै कबहीं ॥ बहुत भांति पिछतावै तबहीं ॥ ३८ ॥ करि असनानरु प्राणायाम ॥ जापकरैं त्रिपदीसें नाम ॥ अग्नि अर्क गुरु विप्ररु गाई ॥ सुरमुनि वृद्धनिन मन

कराई ॥ ३९ ॥ संध्योपासन करै त्रिकाल ॥ वचनन बोले हालन चाल ॥ गुरुकौं मेरौ रूपहि
जानैं ॥ नरकी बुद्धि कदै नहिं आनै ॥ ४० ॥ सर्वदेवमय गुरुकौं लेषै ॥ तनके कछु आचरण
न देषै ॥ भिक्षा आदि और कछु जोई ॥ गुरुकौं आनि समर्पै सोई ॥ ४१ ॥ जब गुरु ताकी
आज्ञा देवै ॥ तबै प्रसाद आपुहीं लेवै ॥ बैठै ठाढे आवत जात ॥ भोजन सयनरु राति प्रभात ॥ ४२ ॥
नीच भांति गुरुसेवा करै ॥ अंजलिसौं पीछै अनुसरै ॥ एसें व्रतहि अखंडित धारै ॥ मनहूंमें
नहिं भोग विचारै ॥ ४३ ॥ ऐसें गुरुकुल वरते सोई ॥ ज्यौं लगि वेद समापति होई ॥ पुनि
ब्रह्माके लोकहि चाहैं ॥ तो गृहस्थते नहिं संबाहैं ॥ ४४ ॥ गुरुकौं देह समर्पण करे ॥ वेदविचार
हृदेमें धरे ॥ गुरु अरु अग्नि आप सब मांहीं ॥ सेवै मोहि अवर कछु नाहीं ॥ ४५ ॥ जुवति अरु
जुवतिके संखी ॥ इनकौ कदै न होई प्रसंगी ॥ दरस परम बानी परहास ॥ त्यागे दूरि मानि अतित्रास
॥ ४६ ॥ सौच आचमन अरु असनान ॥ संध्योपासन गत अभिमान ॥ तीरथ सेवा जप तप मि-
च्छा ॥ तजैं दरस संभाषण इच्छा ॥ ४७ ॥ मन अरु वचन देह वसकरै ॥ मेरे चर्ण हृदेमें धरै ॥
अरु मम भजन सबनिको धर्म ॥ भजन विना सब धर्म अधर्म ॥ ४८ ॥ ऐसें ब्रह्मचर्य व्रतधारी॥
दृढ तप निशदिन वेदविचारी ॥ विगत पाप एसी विधि होई ॥ मेरी भक्ति लहै तब
सोई ॥ ४९ ॥ ऐसी बिधि भवसागर तजै ॥ मेरै परम रूपकौं भजै ॥ अरु जो कबहीं होई सकाम ॥ तब
सोकरै जुवाति अरु धाम ॥५०॥ केनहि काम गहै वनवास ॥ केअधिकार पाइ संन्यास ॥ अरुजो उपजी
मेरी भक्ति ॥ तो नहीं करे कहूं आसक्ति ॥५१॥ यह हे ब्रह्मचर्यको धर्म ॥ यातें दूजो सकल अधर्म ॥
अब गृहस्थको धर्म सुनाऊं ॥ सकल गृहस्थनिकौं समुझाऊं ॥ ५२ ॥ ब्रह्मचर्य जो नहीं ठहरावै ॥ तो

गृहस्थ आश्रममें आवै ॥ गुरुतें वेदपढै सब जबहीं ॥ गुरु दाक्षिणा देय पुनि तबहीं ॥ ५३ ॥ गुरुतें आ-
ग्याले उरधरै ॥ तब विधिसौं आश्रमहीं करै ॥ देषै उत्तम कुललक्षण ॥ करै विवाह त्रिया विचक्षण
॥५४॥ ॥ ५४ ॥ ज्यौं देषैं अपनों अधिकार ॥ त्यौंही करैं विवाह विचार ॥ विप्र विवाहैं चारौं वरना ॥
विप्र छोडि छत्रीकौं करना ॥ ५५ ॥ वैंस्य विवाहे वैस्य रु सूद्र ॥ शूद्र एकहीं ऊंच न क्षुद्र ॥ उत्तम
सो जो एकहि करैं ॥ बहुतानि कष्ट नहीं विस्तरैं ॥ ५६ ॥ श्रुति अध्ययन जज्ञ अरु दान ॥ तिहूं
वर्णकौ एक समान ॥ दान ग्रहन जज्ञ करवा वन ॥ अधिक विप्रकौं वेद पढावन ॥ ५७ ॥ परि
ए तीन वृत्तिहे ऐसैं ॥ अग्नि मध्य जल वरषैं जैसैं ॥ इनतें ब्रह्मतेज नहिं रहै ॥ तातैं इनैकौं विप्र
न ग्रहै ॥ ५८ ॥ करि शिल उंछ देह निरबाहै ॥ तातैं अधिककों नहिं सबाहे ॥ विप्र देह पूरण
तप पइयैं ॥ विषयनि लागि सुनहीं गवइयैं ॥ ५९ ॥ बहुत भांति कष्ट तप करियैं ॥ हरिभजि
हरिहींकौं अनुसरियैं ॥ शिलोंछ व्रतकरि राखै देह ॥ नहिं ममता जुवती सुत गेह ॥ ६० ॥
आतिथि पालनौ रज तम नाहीं ॥ मोहीकौं देखै सब मांहीं ॥ जीवन्मुक्त होइ सो विप्र ॥ मेरे
चरणानि पावे क्षिप्र ॥ ६१ ॥ जो कोई मम भक्तिहि करै ॥ ताकौं कछू आपदा परै ॥ सो आपदा
मिटावै कोई ॥ सोमेरो हितकारी होई ॥ ६२ ॥ ताकौं मैं उद्धारौं ऐसैं ॥ नावनसौं अंभोनिधि
जैसैं ॥ परिक्षत्री निजधर्म विचारै ॥ सकल पालना हिरदै धारै ॥ ६३ ॥ क्षत्री सबके दुःखनिहरै ॥
सकल जीव प्रतिपालन करै ॥ सोक्षत्री सुरलोकहि जावै ॥ वासव सहित महासुख पावै ॥ ६४ ॥ ॥५४॥
जो आपदा विप्रकौं परै ॥ तोसो बनिज वृत्तिकौं करै ॥ जद्यपि षडग वृत्तिहै ऊंची ॥ परिसो अति
हिंसातें नीची ॥ ६५ ॥ जो क्षत्रीकौं परै विपत्ती ॥ तोसोगहै वनिजकी वृत्ती ॥ किंवा विप्रवृत्तिकौं

गहै ॥ अथवा मृगया करि निरबहै ॥ ६६ ॥ वैस्यहि परै आपदा जबहीं ॥ शूद्रवृत्तिसो धारै तबहीं ॥ अरु जो विपत्ति शूद्रकौं परै ॥ तोप्रतिलोमज वृत्तिहि करै ॥ ६७ ॥ याविधि जबहीं मिटै विपत्ती ॥ तबहीं गहैं आपनी वृत्ती ॥ पंचजज्ञ ए प्रतिदिन करणें ॥ गृहस्थकौं नाहीं परिहरणें ॥ ६८ ॥ करिकैं पाठ ऋषिनकौं भजै ॥ करि कछु होमहि देवानि जजैं ॥ भूतानि बलि स्वधा सौं पितर ॥ जलअन्नादि सकलसो देनर ॥ ६९ ॥ तिन सबनीमैं मोकौं जाने ॥ और सबनि परकरुणा आनै ॥ जोही कछू सहज धन पावै ॥ किंवा न्यायतेंहि उपजावै ॥७०॥ तासौं लोग अपनो पोषै ॥ ओर यज्ञ करि मोहि संतोषै ॥ जेती लागत घरमें होई ॥ ते तोही धन राषे सोई ॥७१॥ और सकल मम हेत लगावै ॥ भूलिन दूजै मारग जावै ॥ जद्यपि रहै कुटंबहु मांहीं ॥ तोहूं लिपै कदे कहु नाहीं ॥ ७२ ॥ निश दिन हृदये करै विचार ॥ मिथ्या जानै सब परिवार ॥ इस्त्री पुत्र बंधु सब एसैं ॥ जलके निकट बटाउ जेसैं ॥ ७३ ॥ ए सबयौं प्रतिदेहहि आवै ॥ ज्यौं निद्रा प्रति सुपना पावै ॥ ज्यौं ज्यौं जागे वारंवारा ॥ त्यौं त्यौं मिटैं सुपन व्यवहारा ॥ ७४ ॥ यौंही प्रतिदेतहि ए आवै ॥ देह तजें सब जित तित जावै ॥ अरु यौंही स्वर्गादिक लोक ॥ पाये हर्ष गए अतिसोक ॥ ७५ ॥ तातैं सकल वासना दहै ॥ अतिथि समान भवनमैं रहै ॥ अहंकार ममता नहिं आनै ॥ सब माया बंधन करि मानै ॥ ७६ ॥ सब कर्मणि मेरे हितकरै ॥ मोविच अंतराय परिहरै ॥ प्रेमभाव दृढ उरमैं राषै ॥ औरहि सकल हृदेतैं नाषै ॥ ७७ ॥ एकहि पुत्र भए बन जावै ॥ किंवा गेहहि मांहि रहावै ॥ एसो ग्रही मुक्तकरि मानौ ॥ और कछू हृदये नहिं आनौ ॥ ७८ ॥ अरुजौ होइ भवन आशक्ती ॥ जुवंति सुतादिक सौं अनुरक्ती ॥ विषय सुलंपट तृष्णा आतुर ॥ ज्ञानरहित कर

मनमें चातुर ॥ ७९ ॥ आपुहि परम सताहि न जानै ॥ औरनकी चिंता उर आनै ॥ भाई वृद्ध पिता हे मेरो ॥ मो बिन दुःख लहै बहुतेरो ॥ ८० ॥ यह अबला लघु संतति जाकी ॥ मोबिन होइ कहा गति ताकी ॥ ए अनाथ मोबिन सबबाला ॥ क्यौं करि जीवें अती विहाला ॥ ८१ ॥ मोबिन इनहि कौन प्रतिपालै ॥ कौनहिं विविध दुखनिकौं टालै ॥ ऐसैं निशदिन आनैंचिंता ॥ कबहूं नहिं होवै निहचिंता ॥ ८२ ॥ कदेन सुष पावे यालोक ॥ ग्रस्यौ रहै चिंता भयसोक ॥ या विधि चिंता करत अपारा ॥ नरकहि जावै वारंवारा ॥ ८३ ॥ दोहा ॥ ब्रह्मचर्य ग्रह-चर्यकौ, मैं भाष्यौ इहधर्म ॥ जातैं उद्धव और सो, कछु सब जा़न अधर्म॥ ॥ ८४ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषा-यांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥

दोहा ॥ ॥ अष्टादशवें ध्यायमें, वानप्रस्थ संन्यास ॥ अधिकार विशेष कर, तद्गत करत प्रकास ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ अबमें कहों धर्म बनबास ॥ अरु अधिकार सहित संन्यास ॥ जातें मेरी भक्तिहि पावै ॥ भक्तिपाइ ममचरणनि आवै ॥ १ ॥ बरष पचासहुतें उपरांत ॥ तब बनजाइ रहे एकांत ॥ नारि सुतनमें रहनें देई ॥ जोविधि बनैं संगतो लेई ॥ २ ॥ कंदमूल फल वृत्तिहि करै ॥ वलकल मृगछाला तनधरे ॥ त्रणपत्ताकी सजा संवारै ॥ इंद्रियके सब अर्थनि वारै ॥ ३ ॥ केस रोम नष दूर न करै ॥ देह दंत मल नहिं परिहरै ॥ भूमि सयन त्रिकाल अस्नान ॥ मलन उतारै मुसलसमान,॥

॥ ४ ॥ ग्रीषम ऋतु पंचाग्नी साधै ॥ बरषामें छाया नहिं बाधै ॥ सीस सकल जल धारास है ॥ सीतकाल जल सायर रहैं ॥ ५ ॥ एसी भांतिकरै तप दुष्कर ॥ द्वंद्व न व्यापै ज्यौं जल पुष्कर ॥ अग्नि पक्क रितु पक्क फलादी ॥ भोजन लघु पवित्र अन्नादी ॥ ६ ॥ मूसल ऊषलके पाषान ॥ केदंतनिसौं षोटे धान ॥ देह जीविका आपुहि आनैं ॥ अधिक नग्रहै संच नहिं जानै ॥ ७ ॥ तिनहीं तिनसों मौंकौं जजे ॥ और जज्ञ वनवासी तजे ॥ अग्निहोत्र अरु पूरणमास ॥ त्यौंहीं दरशरु चातुरमास ॥ ८ ॥ इन सबहिनकौं मम हित करै ॥ मोंबिन और हृदे नहिं धरै ॥ यौं तपकरि मोंकों आराधे ॥ प्राणदेह इंद्रिय मन बाधे ॥ ९ ॥ यौं ह्वैं सुद्ध लहै मम भक्ति ॥ और त्रिगुन विस्तार विरक्ती ॥ यौं तबहीं मम चरणनि पावै ॥ केक्रम ब्रम्हलोक ह्वै आवै ॥ १० ॥ अरु जो एसें कष्टहि करै ॥ परि कामना हृदेमैं धरै ॥ ता सम मूरख दूजा नाहीं ॥ ताके वृथा सकल श्रम जाहीं ॥ ११ ॥ यौं पंचोत्तर वरषनि पाछै ॥ ग्रहैं सुद्ध संन्यासहि आछैं ॥ सकल क्रियाकों त्यागहि करै ॥ मनसौं मम सेवा अनुसरै ॥ १२ ॥ कर्मरचित सब लोकनि जानै ॥ तातैं छिनभंगुर करि मानै ॥ ताहींहुतें करे सबत्यांग ॥ मन वच क्रमसौं दृढवैराग ॥ १३ ॥ वेदविहिता विधि मोकों जजे ॥ ऋत्विजकौं सर्वस दै तजे ॥ जब कोई संन्यासहि करै ॥ तब सुर बहुत विघ्न विस्तरै ॥ १४ ॥ परि यह विघ्न गणें कछु नाहीं ॥ मेरे चरणधरै उरमांहीं ॥ जो कबहीं कछु वस्त्रहि राषै ॥ तो कोपिन और सब नाषै ॥ १५ ॥ दंड कमंडलु करमें धारै ॥ ज्यौं मल त्यौं नहिं और विचारै ॥ देषि देषि धरणी पग धरै ॥ वस्त्रछानि चल पानहि करै ॥ १६ ॥ सत्यवंत बानीकों बोले ॥ हृदय विचार कदे नहिं डोले ॥ मौन धारि बानीको दंडे ॥ अरु का-

याके कर्मनि षंडे ॥ १७ ॥ प्राणायाम मनाहि सबकरै ॥ सब इंद्रिय अर्थनि परिहरै ॥ अरु ए चिन्ह नहीं जा मांहीं ॥ भेषहु धरे जतीसो नाहीं ॥ १८ ॥ भिक्षा करे सप्त घर विप्र ॥ औरहि कहूं गहै नहिं षिप्र ॥ सोऊ विप्र चतुर विध जेते ॥ जानी रहे विप्रकें ते ते ॥ १९ ॥ विप्र कहिजे दशहु प्रकार ॥ तिनको तुमसौं कहौं विचार ॥ देवविप्र ऋषिविप्रहि जानो ॥ विप्रविप्र अरु क्षत्रीमानौ ॥ २० ॥ वैश्य सूद्र अरु एक बिडाल ॥ पसु अरु म्लेछ विप्र चंडाल ॥ भिक्षा नित अरु पढै पढावै ॥ सकल अर्थ अरु तत्त्व बतावै ॥ २१ ॥ इंद्रिय जीतरु सील संतोष ॥ देवविप्र सो निर्गत रोष ॥ तप अरु सत्य न हिंसा करै ॥ दिनदिन षटकर्मनि अनुसरै ॥ २२ ॥ काल लोप कबहूं नहिं होई ॥ ऋषि ब्राह्मण कहिय तुहे सोई ॥ बिन हिंसा फलफुलनि ल्यावै ॥ तिनहींसौं देह वरतावै ॥ २३ ॥ वरषा सीत उष्ण सब सहै ॥ विप्र विप्र नित श्रद्धा गहै ॥ अश्वादिकनिकरै आरोह ॥ रणमें सूरत जेतन मोह ॥ २४ ॥ नीति सहित टाने आरंभ ॥ क्षत्री विप्र हरै नहिं दंभ ॥ जो उद्यम बानिजकौं करै ॥ पशु राषे षेती विस्तरै ॥ २५ ॥ सो वह वैस्य ब्राह्मण कहियें ॥ तातें ले भिक्षा नहिं गहियें ॥ तेल लून घृत दूधरु लक्षा ॥ तिल अरु नील मही मधु मक्षा ॥ २६ ॥ इनकौं बनिज करतुहे जोई ॥ शूद्र विप्र कहिय तुहे सोई ॥ सब भूतनिके द्रोहहि करै ॥ सबकै छिद्रनि देषत फिरै ॥ २७ ॥ प्रतिदिन हिंससों अधिकार ॥ विष्ट कहावे सो मंजार ॥ भक्ष अभक्ष अकारज कारज ॥ गम्य अगम्य न लषे अनारज ॥ २८ ॥ कृतघन सकल पशुनके लक्षण ॥ सो पशु ब्राह्मण कहैं विचक्षण ॥ वापी कूप तलाव फुडावै ॥ वन बागादिक नास करावै ॥२९॥ संध्या अरु अस्नान न जानै ॥ एसो विप्र म्लेछ बखानै ॥ निंदक लोभी परधन हरै ॥ निरदय क्रूर पिशुनता ॥५६॥

करे ॥३०॥ सो चंडाल विप्र करि मानै ॥ ऐसैं दशविध बिप्रनि जानै ॥ तातैं उत्तम भिक्षा करै ॥
औरे सकल दूरि परिहैरै ॥ ३१ ॥ सात घरनितैं भिक्षा लावे ॥ ताहि करि संतोष उपावे ॥ सो
ले जोवे नदी तडाग ॥ तातैं कछूक करे विभाग ॥ ३२ ॥ कोई मांगे ताकों देई ॥ के जलमांहि
प्रवाह करेई ॥ बिचरै धरणी होइ निसंगा ॥ कदे कछु न संवारै अंगा ॥ ३३ ॥ तन मन इंद्रिय
निग्रह करै ॥ मेरो रूप हृदेमें धरै ॥ निशदिन रहे अतमाराम ॥ विषय सुखनिको सुने न नाम
॥ ३४ ॥ समदरसी अरु धीरजवंत ॥ सदा रहे निरभय एकंत ॥ मेरो भाव भयौ अतिसुद्ध ॥
परम विवेकी ज्यौं जलदुध ॥३५॥ आपुहि मोहि विचारे एक ॥ कदे न देषे भूलि अनेक ॥ आत-
म अंस ब्रह्मकौं जानौ ॥ बंधमुक्ति दोऊ भ्रम मानौ ॥ ३६ ॥ बंधन जब इंद्रिय वस होई ॥
मुक्ति इंद्रियं बंधे सोई ॥ ऐसैं जानी इंद्रिय जीते ॥ मोहि सुमरिते काल व्यतीते ॥ ३७ ॥
दुहूं लोकतें होइ विरक्ती ॥ तनहूं नहिं होवे आसक्ती ॥ पुर ग्रामादि आइ जो परै ॥ भिक्षा
अर्थ प्रवेसहि करे ॥ ३८ ॥ देस पवित्र सैल बन सरिता ॥ वामप्रस्थ जहां आचरता ॥ तहां
तहा नितहीं चलि जावै ॥ तिन आश्रमनी भिक्षा पावै ॥ ३९ ॥ तिनसों लहै सिलाकौ
अन्न ॥ तातें होवे मनहि प्रसन्न ॥ ताहीतें निरमलता गहै ॥ उपजै ज्ञान सकल मल दहै ॥ ४० ॥
इंद्रिय अर्थनि सत्य न देषे ॥ छिन भंगुर सबन स्वर लेषे ॥ तातें सबतें ग्रहे विरक्ती ॥ नहिं उद्यम
न विषे आसक्ती ॥४१॥ यह सब अहंकार कृत जानै ॥ आतम विषे सुपन सम मानै ॥ कदैन
हृदये चिंतवन करै ॥ मन बच कर्म दूरि परिहैरै ॥ ४२ ॥ ऐसी विध जब उपजे ज्ञान ॥ होई
विरक्त तजै सब आन ॥ मेरी भक्ति हृदेमें आवै ॥ तब सब वर्णाश्रम छिटकावै ॥ ४३ ॥ विधि

निषेध दोउ भ्रम जानै ॥ वेदस्मृतिकी संकन मानै ॥ अतीबुद्धि बालक्र सम रहै ॥ विधि
निषेध कछु कहे न गहै ॥ ४४ ॥ सब जाने परि जो उनमंत ॥ चेतनमय दीसे जडवंत ॥
पुष्पित बानी रतनहिं होई ॥ कबहूं बाद न ठाने सोई ॥ ४५ ॥ बाहिर मध्य एक सम रहै ॥ क-
बहूं कोइ पक्ष नहिं गहै ॥ ज्यौं ज्यौं कहे सुने त्यौं त्यौंहीं ॥ उत्तमता नहिं त्यागे क्यौं ही ॥४६॥
काहूतें उद्वेग न आनै ॥ अरु काहूके आपु न ठानै ॥ निंदा आदि सुने दुर बैन ॥ अंतरधरे
निरंतर चैन ॥ ४७ ॥ कांहूंकौ अपमान न करे ॥ मन वच कर्म मान बिस्तरे ॥ पशु समान वैरा
दि न जानै ॥ सकल विकार देहके भानै ॥ ४८ ॥ ज्यौं आतम अपने तन मांहीं ॥ सोई सबमें
दूजा नाहीं ॥ ज्यौं बहु घटनि मांहि ससि एक ॥ घटनि संग जानिये अनेक ॥ ४९ ॥ तातैं
इष्ट अनिष्टहि करे ॥ सो सब आपुहिकौं विस्तरे ॥ तातैं आतम बुद्धिहि राषे ॥ भेद देह कृतसो
सब नाषे ॥ ५० ॥ असमे समे भोजनहि आवे ॥ तोहूं कछु नहिं मनमें ल्यावे ॥ करमचित
सब देहति जानै ॥ तिनहीतैं सब दुख सुख मानै ॥ ५१ ॥ ते सब सुखदुख कर्म सरीर ॥
यों आतममें ज्यौं मृग नीर ॥ केवल आहारहिं नहिं नाषै ॥ उद्यमहूं करि प्राणनि राषै
॥ ५२ ॥ प्राणनि राषें होइ विचारा ॥ लहे मोहि छूटै संसारा ॥ जो मेरी इच्छातैं आवे ॥
उत्तम मध्यम जो कछु पावै ॥ ५३ ॥ यौंहि असन वस्त्रादिक चहै ॥ जेसो आवे तेसो गहै ॥
प्रिय अप्रियकी बुद्धि न आनै ॥ ए दोऊ मिथ्याकरि मानै ॥ ५४ ॥ कोई टेक न मनमैं धरै ॥
मोबिन और सकल परिहरै ॥ सोच आचमन अरु अस्नाना ॥ और कछु आचणाहि नाना
॥ ५५ ॥ ते कछु संकातें नहिं करै ॥ जो कछु सो इच्छा आचरै ॥ ज्यौं मेरे श्रुतिको भय नाहीं ॥

दोऊ भ्रम जानतहों मांहीं ॥ ५६ ॥ परि तथापि कर्मनि आचरौं ॥ लोकनिके हित मनमैं धरौं ॥ त्यौं ज्ञानी विधि किंकर नाहीं ॥ विधिनिषेध भ्रम जानै मांहीं ॥ ५७ ॥ परि इच्छा अपनी आचरै ॥ लोकनिको हित मनमें धरै ॥ ताकों भेद दृष्टि कहु नाहीं ॥ ज्ञानदृष्टि देखतहैं मांहीं ॥ ५८ ॥ पूरब संसकारहे जौंलौं ॥ देहमांहि सो वरतैं तौंलौं ॥ बहुरे सो भवमें नहीं आवै ॥ मेरो निज निर्मल पद पावै ॥ ५९ ॥ अरु जाकों उपजे वैराग ॥ कन्यौ चहे या भवको त्याग ॥ परि मम भजन जुक्ति नहिं पावै ॥ सो सतगुरुकी सरणहि आवै ॥ ६० ॥ श्रमहीं बिना लहे सो जुक्ती ॥ पावे मौहि लहे भवमुक्ती ॥ गुरुकौं ब्रह्मरूप करि देषे ॥ मानव बुद्धि कदे कहिं लेषे ॥ ६१ ॥ श्रद्धा सहित असूया तजे ॥ मन वच कर्म निरंतर भजे ॥ ज्यौं लगि ब्रह्मविचारहि पावै ॥ त्यौं लगि गुरु तजि कहूं न जावै ॥ ६२ ॥ पीछैं ज्यौं जानें त्यौं रहै ॥ परमहंसके धर्म निगहै ॥ परिजिनषट-रिपु जीते नाहीं ॥ इंद्रिय अर्थ विचारत मांहीं ॥ ६३ ॥ चंचल बुद्धि न ज्ञान विराग ॥ ताके सकल वृथा हे त्याग ॥ भेषदिखाइ जीवका करे ॥ ताको दोष कह्यौ नहिं परे ॥ ६४ ॥ देवपितर ऋषि भूलिन नाषै ॥ तिनको रिण अपने सिर राषै ॥ अंतरगतिमें ताहि छि-पावै ॥ आपहि वंचे बंध उपावै ॥ ६५ ॥ सो सुखकहु न लहे यालोक ॥ अरुयौं भ्रष्ट होइ परलोक ॥ एहैं वर्णाश्रमके धर्म ॥ इनतें भक्ति लहे देहिकर्म ॥ ६६ ॥ अब चान्यौंके धर्म प्रधान ॥ न्यारे न्यारे करो बखान ॥ समरु अहिंसा संन्यासीको ॥ तप इज्या यह वनवासीको ॥ ६७ ॥ ग्रहमैं दया यजन यह कर्म ॥ द्विज आचारज सेवाधर्म ॥ ब्रह्मचर्य तप सौच संतोष ॥ सकल सुहृद कितहूं नहिं रोष ॥ ६८ ॥ मेरो भजन सकल मम कारण ॥ यही धर्म सभके साधारण ॥ ग्रही देइ

वानिता ऋतुदाना ॥ भूलि न गमन करै दिन आना ॥ ६९॥ याविधि अपनें अपनें धर्म ॥ मेरे हेत करै सब कर्म ॥ सबमें जाने मेरो भाव ॥ काहू पर नहिं धरै अभाव ॥७०॥ सोपा वै मेरी दृढभक्ती ॥ और सकलतें करे विरक्ती ॥ तातैं उपजे मेरो ज्ञान ॥ देषे मोहि मिटे सब आन ॥ ७१ ॥ ऐसो व्है पावै ममरूप ॥ बहुरि न आवे या भवकूप ॥ जेई सकल बर्ण अरु आश्रम ॥ तिनके एसें भाषे धर्म ॥ ७२ ॥ भक्ति सहित ए मोहि मिलावैं ॥ भक्ति विना भवसिंधु बहावैं ॥ ऐसो तत्त्व लहै सो तरै ॥ और सकल नित जन्मेमरै ॥ ७३ ॥ ॥ दोहा ॥ ए उद्धव तोसौं कह्यो, वर्णाश्रमको धर्म ॥ यातें ममभक्ती लहै, छूटै बंधन कर्म ॥ ७४ ॥॥ इतिश्रीभागवते महापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेअष्टादशोऽध्यायः॥ १८ ॥

दोहा ॥ ॥ पूर्वहि आश्रम धर्मतें, निर्णय ज्ञान सुभाग ॥ उनबिंशति अध्यायमें, ज्ञानादिकतें त्याग ॥१॥ ज्ञान विज्ञानरु भक्तिहु, ताके लच्छन सार ॥ प्रषणोत्तर पचतीसजू साभसु भलेप्रकार ॥ २॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उद्धव एहि वर्ण अरु आश्रम ॥ तिनके मैं भाषे सबधर्म ॥ इनमें रहि ममभक्ति उपावै ॥ तातैं मेरो ज्ञानहि पावै ॥ १ ॥ ज्ञानहि पाइ सकल भ्रमजानै ॥ वर्णाश्रम मिथ्या करि मानै ॥ सब साधन ताजि मोकौं ध्यावै ॥ और कछू हृदये नहिं ल्यावै ॥ २ ॥ ज्ञानीको मैंही हौं साधन ॥ अरु मेरौ नितकरे अराधन ॥ मोहि करी मोकौं आराधै ॥ तन मन इंद्रिय मोसों साधै ॥ ३ ॥ मोबिन स्वर्गादिक नहिं लेई ॥ मेरेहीं चर्णनि चितदेई ॥ मोबिन मुक्ति कदै नहिं गहै ॥ मोबिन सकल

वासना दहे ॥ ४ ॥ मोसों हितमें ताकौं प्रीय ॥ मोबिन और सकल अप्रीय ॥ जेहैं सहित ज्ञान विज्ञान ॥ तेही जानें मोहि सुजान ॥ ५ ॥ ज्ञानीतें मेरे प्रिय नाहीं ॥ सदा बसे मेरे मनमांहीं ॥ में ताको मेरैहै सोई ॥ दूजो नहिं परसपर कोई ॥ ६ ॥ जप तप तीरथ व्रत अरु दाना ॥ कहौं कहांलौं जेविधि नाना ॥ जेविधि करे नहीं फल एसो ॥ ज्ञान कलातें होवै जेसो ॥ ७ ॥ तातें ज्ञान हृदेमैं धरै ॥ औरे साधन सकल निवारै ॥ सबमैं रूप आपनौ जानौ ॥ मोहि जानि प्रभुसेवा ठानौ ॥ ८ ॥ व्है करि लहित ज्ञान विज्ञान ॥ देषे सकल एक भगवान ॥ बहुरी मम निजरूप समावै ॥ जहां जाइ कबहूं नहिं आवै ॥ ९ ॥ जबहीं प्राणी ज्ञानहि पावै ॥ तबहीं मम निजरूप समावै ॥ ज्ञानविंना नहिं पावै मोही ॥ यह निजमतो कहतहौं तोही ॥ १० ॥ उद्धव तोमैं विविध विकारा ॥ जन्म मर्ण सुखदुःख अपारा ॥ ते समस्त या तनके जानौ ॥ सो तन माया भ्रमकरि मानौ ॥ ११ ॥ आपुहि सुद्ध निरंजन देषौ ॥ द्वैत अतीत एककरि लेषौ ॥ ए जे प्रगट सकल देहादी ॥ ते आतममेंहु ते न आदी ॥ १२ ॥ अरु अंतहू रहे कछु नाहीं ॥ अब आज्ञानहुतें बरताहीं ॥ ज्ञान दृष्टि कर बरते जबहीं ॥ त्रिगुण रहित आपु हेत बहीं ॥ १३ ॥ जैसैं रज्जुमांहि अति कहै ॥ आदि न हुतौ अंत नहिं रहै ॥ भ्रमतें मध्य मंदमति मानै ॥ हेनाहीं परिहै सो जानै ॥ १४ ॥ त्यौं देहादि सकल भ्रमदेषौ ॥ आपुहि सदा ब्रह्ममय लेषौ ॥ एसो सुनि हरिजीसों ज्ञान ॥ उद्धव जन पूछयौ भगवान ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ हेप्रभु ज्ञान कृपाकरि कहो ॥ मेरे नाना भ्रमकौं दहो ॥ अरु त्यौंही भाषो विज्ञान ॥ भक्ति आपनी परम विधान ॥ १६ ॥ जाकौं चाहै सकल महंत ॥ जातें होइ जगतको अंत ॥ याबिन ज्ञान ध्यान कछु नाहीं ॥ सकल साधन

वृथाही जाहीं ॥ १७ ॥ याकौं पाइ मुक्तिनहिं लेवे ॥ और सुखनिपर दृष्टि न देवे ॥
एसी भक्ति क्रिपाकरि कहो ॥ अपने जनहि और निर्बहो ॥ १८ ॥ यह भवसागर
बिकट अनंत ॥ जामें भ्रमत न आवे अंत ॥ तापरि तपें त्रिविध संताप ॥ तिनमें परे आपहीं
आप ॥ १९ ॥ तातें जीव महादुष पावे ॥ सुखठानै सो दुखहुइ आवे ॥ तातें दूजो रक्षक नाहीं ॥
में विचारि देख्यौ मनमांहीं ॥ २० ॥ तुमरे चर्ण छत्रासिर धारे ॥ सो समस्त संताप निवारे ॥
ताकौं दसदिशि अमृत वर्षे ॥ ताके दरश और सब हर्षे ॥ २१ ॥ ज्यौं कोहू कंगालहि लीजैं ॥
ताके सीस छत्रधरि दीजे ॥ सोव्हे भूप महीसुख पावे ॥ अरु औरनिके दुःख मिटावे ॥ २२ ॥
त्यौं तुम चर्ण छत्रासिर धारे ॥ सो अपनें सबदुःख निवारे ॥ सोभे तीनोलोक मांहीं ॥ ता सम
और कहूं को नाहीं ॥ २३ ॥ अरु जेताके सरणहि आवै ॥ ते ते सकल परम सुख पावे ॥ या भव
कूपहि पर्‍यौ विहाल ॥ तापर डस्यो महा आहिकाल ॥ २४ ॥ तातें विषयि सुख जानै ॥
तिन निमित्त बहु उद्यम ठानैं ॥ तातें सदा अमित दुख पावे ॥ जाकौं कबहूं अंत न आवैं ॥ २५ ॥
ताकौं कृपा पीयूष पिआवौ ॥ काढि कूपतें मृतक जिआवौ ॥ वचनामृतकी बरखा करौ ॥ अपनें
गुणानि बांधि उद्धरौ ॥ २६ ॥ तुमही जगतपिता जगस्वामी ॥ जगपालक जगअंतरजामी ॥
एसें बचन सुने भगवान ॥ तब उद्धवसौं भाष्यौ ज्ञान ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥
उद्धव प्रष्णकरी तुम जोई ॥ धर्म पुत्रकी नीती सोई ॥ सर सज्यामें भीषम परे ॥ हमरे सुतनत
उच्चरे ॥ २८ ॥ तेई अबमें तुमहि सुनाऊं ॥ भक्ति ज्ञान विज्ञान बताऊं ॥ प्रकृतिपुरुष मह ततहं
कार ॥ शब्दादिक जे पंच प्रकार ॥ २९ ॥ त्रय गुण अरु इंद्रिय दश एका ॥ पंचभूत मिलि भए

अनेका ॥ थावर जंगम विधि प्रकारा ॥ इन अट्ठाइसको बिस्तारा ॥ ३० ॥ इन विन ओर कहूं कछु नाहीं ॥ एकदृष्टि देखे सबमांहीं ॥ जाकरि सकल एकही जानै ॥ ताकों साधू ज्ञान बखानै ॥ ३१ ॥ अरु जब एह अठाइस तत्त्व ॥ माया जाने सकल अतत्त्व ॥ आतम ब्रह्म एक करि जानै ॥ देहादिक सब मिथ्या मानै ॥ ३२ ॥ रज्जु जानि ज्यौं सर्प निवारै ॥ त्यौं समस्त मम रूप निवारै ॥ जैसें दिसा मोह मिटजावै ॥ आठोदिसकी खबरहि पावै ॥ ३३ ॥ करत निरंतर ज्ञान विचारा ॥ देखे ब्रह्म मिटै विस्तारा ॥ ताकौं कहिय तुहै विज्ञान ॥ जातें लहै मोहि तजि आन ॥ ३४ ॥ आदिहु तो जो रहिए अंत ॥ सोईहै अबहूं बरतंत ॥ वरणाकार प्रगटहैं जैंते ॥ आदिरु अंत नहींहैं ते तै ॥ ३५ ॥ तातैं अबहूं मिथ्या देखै ॥ तिहूंकाल मोहीकौं लेखै ॥ जेसें तिहूंकालमें धरणी ॥ घट नामादिक मिथ्याकरणी ॥ ३६ ॥ श्रुतिकौ मतौ हृदेमें आनै ॥ नेति नेति श्रुति सदा बखानै ॥ नामाकर वेद भ्रममाषै ॥ ब्रह्मसत्य दूजो सब नाखै ॥ ३७ ॥ सकल घटनिमैं एक बतावै ॥ ऊंचनीच सब भेद मिटावै ॥ एसी भांति विचारै वेद ॥ जानै मोहि मिटावे भेद ॥ ३८ ॥ अरु त्यौंही प्रगट सबलेखै ॥ सप्तधातुके सब तनदेखै ॥ देखै सब उपजत विनसंत ॥ योंही प्रतक्ष विचारे संत ॥ ३९ ॥ अरु सतपुरुष भएहैं जे ते ॥ तिनकें बचन विचारै ते ते ॥ एकहि मतो सबनिकौ देखै ॥ जाने मोहि भेद भ्रमलेखै ॥ ४० ॥ अरु त्यौं अनुभव हृदय विचारै ॥ चेतन राषि अचेतन टारै ॥ सबदेखै चेतन आधारा ॥ इंद्रिय देह विविध विस्तारा ॥ ४१ ॥ चेतनतें जड अर्थनि गहैं ॥ चेतन विना कोइ नहिं रहैं ॥ यौं वेदांत तथा दृष्टांत ॥ अनुभव अरु त्यौंही सिद्धांत ॥ ४२ ॥ इन चारहुको मतो विचारै ॥ मोहि जानि सब भेद निवारै ॥

सकल दृश्यतें होइ विरक्ती ॥ चेतन ब्रह्मसदा अनुरक्ती ॥ ४३ ॥ कर्मरचित सब मिथ्यामानै ॥ ब्रह्मलोककों न ईश्वरजानैं ॥ देष्यौ सुन्यौ हृदेमें आवै ॥ सो सब बंधन जानि बहावै ॥ ४४ ॥ मेरी भक्ति हृदेमें धरै ॥ जिनतें भक्तिहोइ ते करै ॥ भक्तरु भक्ति हेतहैं जे ते ॥ तुमसौं पीछैं भाषें ते ते ॥ ४५ ॥ अब बहुरो तव हेत विचारौं ॥ भक्त भक्ति साधन उच्चारौं ॥ मेरी कथा सुनै अरु कहै ॥ प्रीति सहित उर अंतर गहै ॥ ४६ ॥ पूजामें अतिनिष्ठा धारैं ॥ बहुत भांति अस्तुति बिस्तारै ॥ वंदनकरै प्रदक्षिणा देई ॥ अरु अष्टांग प्रणाम करेई ॥ ४७ ॥ सब भूतनमें मोकौं जानैं ॥ परि मम जन मेरों तन मानै ॥ मम भक्तिनिकौं बहुविधि सेवै ॥ तन मन धन तिनहाकौं देवै ॥ ४८ ॥ मेरे हेत करे जो करै ॥ मोबिन और सकल परिहरै ॥ मेरे गुणनि कहै उर धारै ॥ दूजि कामना सकल निवारै ॥ ४९ ॥ मे रे अर्थ अर्थ सबत्यागे ॥ सुख अरु भोगनितें वैरागे ॥ जप तप जोग जज्ञ व्रत दाना ॥ सयनासन भोजन जलपाना ॥ ५० ॥ इत्यादिक सब ममहित करै ॥ यातैं अंतर सब परिहरै ॥ सदा आपुकौं मोहि निवेदै ॥ प्रेम शस्त्र उर ग्रंथिहि भेदै ॥ ५१ ॥ ऐसैं जब ममभक्तिहि लहै ॥ तब अवसेष कछू नहिं रहै ॥ साधन साध्य लहै सो सकल ॥ काल कर्मतें होवे अकल ॥ ५२ ॥ जब मोविषे चित्तकौं धारै ॥ तब ह्वै सातिक रज तम टारै ॥ धर्मैश्वर्य ज्ञान वैराग ॥ इनकौं सहज लहै बडभाग ॥ ५३ ॥ अरु जो मेरी भक्ति न पावै ॥ देह गेहसों चित्त लगावै ॥ तब होवै रज तम अधिकारा ॥ बढै अधर्म परै संसारा ॥ ५४ ॥ बंध मुक्तिकौ चितहै कारण ॥ बो रे चित्त चित्तहै तारण ॥ मोमें धारै मोकों लहै ॥ भवमैं धारै भवमैं वहै ॥ ५५ ॥ तातैं धर्म ज्ञान वैराग ॥ ईश्वरता आदिक जेभाग ॥ ते समस्त मेरे आधीन ॥ तातैं होवे ममले

लीन ॥ ५६ ॥ सेवत मोहि सकल ए पावै ॥ मोबिन कोई निकट न आवै ॥ मेरी भक्ति कहावै धर्म ॥ उद्धव दूजो सकल अधर्म ॥ ५७ ॥ एक ब्रह्म दरसन सो ज्ञान ॥ या बिन और सकल अज्ञान ॥ अरु उद्धव सोहै वैराग ॥ जो समस्त विषयनिको त्याग ॥५८॥ अरु ऐश्वर्य सिद्धि आणि मादी ॥ मम सेवककी सेवक आदी ॥ तातें जे मम सरणहि आवै ॥ तेई भुक्ति मुक्ति सुखपावै॥५९॥ दोहा ॥ ऐसैं अद्भुत बैन जब, कहे कृपाकरि कृष्ण ॥ तब उद्धव जन हरषि करि, कीनो हरिसौ प्रष्ण ॥ ६० ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हेप्रभु पूरण कृपा व करौं ॥ ज्यौंहे त्यौं बहुविधि विस्तरौ ॥ जो तुम धर्म भक्ति कृत भाष्यौ ॥ ब्रह्म दृष्टिकौं ज्ञानहि राख्यौ ॥ ६१ ॥ अब वैरागादिक समुझावो ॥ मेरे सब संदेह मिटावो ॥ जोहैं सकल तत्त्वसो भाषौ ॥ होई अतत्त्व दूरि करि नाषौ ॥ ६२ ॥ यम कहिये सो केइ प्रकार॥ अरु त्यौं कहो नियम बिस्तारा ॥ अरु सम कौन कौन दम देवा ॥ कौन क्षमा अरु धृतिको भेवा ॥ ६३ ॥ कौन सूरता तप अरु दान ॥ कौन सत्यको ऋतहि बषान ॥ कौन त्याग कौन धन इष्ट ॥ कौन जज्ञ दक्षिणा वरिष्ट ॥ ६४ ॥ बल अरु भगको लाभरु सुख ॥ विद्या लज्जा सोभा दुःख ॥ पंडित मूरख पंथ कुपंथ ॥ स्वर्ग नरक बंधु ग्रह ग्रंथ ॥ ६५ ॥ कौन दरिद्र कौन धनवंत ॥ कौन कृपन कोई स्वरवंत ॥ अरु इनतैं उलटे हैं जे ते॥ असम अदम आदिक हैं ते ते ॥६६॥ मोसों देव कृपाकरि भाषौ ॥ राखौ तत्त्व अतत्त्वहि नाषौ ॥ यौं सुनि बहु उद्धवके प्रष्ण ॥ तबहि कृपाकरि बोले कृष्ण ॥ ६७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ हिंसा रहित सत्य अस्तेय ॥ संग
२६ विवर्जित सबको हेय ॥ लज्जा मौनरु आस्तिक थीर ॥ ब्रह्मचर्य अरु क्षमा गंभीर ॥ ६८ ॥ ए

 द्वादश यम गहै निवर्ती ॥ अरु त्यौं द्वादशनियम प्रवर्ती ॥ सौचरु कपट रहित धरमादर ॥ 
जप तप अरु दम पूजा सादर ॥ ६९ ॥ तीरथ अटन अतिथिकौं पोष ॥ गुरुसेवा अरु दृढ
 संतोष ॥ परउपकार होम विस्तारै ॥ मुक्ति मुति चाहै सो धारै ॥ ७० ॥ सम जो मोमें
निष्ठाबुद्धी ॥ दम इंद्रिय निग्रह मन शुद्धी ॥ जो दुखनी उपजावै कोई ॥ तिनतैं जाकै दुःख
न होई ॥ ७१ ॥ सकल सहै कछु मन नहिं आनै ॥ ताकों मम जन क्षमा बखानै ॥ जिभ्या
इंद्रिय चंचल होई ॥ तिन दोनोंको त्यागे सोई ॥ ७२ ॥ रस अरु अबलाकौं नहि गहै ॥
ताकौं मम जन धृतिहि कहै ॥ भूतद्रोह त्याग सो दान ॥ भोग तजनसौं तप नहिं आन ॥७३॥
सोइ सूर जो जिते स्वभाव ॥ सोई सत्य सकल मम भाव ॥ मोकों लिये बचन सो सत्य ॥
मो बिन बोले सकल असत्य ॥ ७४ ॥ कर्मनिमें जो होइ असंग ॥ सो वह परमसौ चहै अंग ॥
सोहै त्याग तजै फल कर्म ॥ सो धन इष्ट परम मम धर्म ॥ ७५ ॥ यज्ञ रूपमें हों नहिं आन ॥
सो दक्षिणा देइ मम ज्ञान ॥ प्राणायाम परम बल कहियैं ॥ जाकरि बडो शत्रु मन गहियैं ॥७६॥
मम ऐश्वर्य भाग्य जो पावै ॥ चेतन निजानंद ह्वै आवै ॥ मेरी भक्ति एक इहलाभ ॥ भक्ति
विना सो सकल अलाभ ॥ ७७ ॥ जातें भेद मिटै सो बिद्या ॥ उद्धव दूजी सकल अविद्या ॥
लज्जा मानि अकर्म न गहे ॥ मम जनताकौं लज्जा कहे ॥ ७८ ॥ निहकिंचन निरपेक्ष न लोभा ॥
इत्यादिक जे गुणते सोभा ॥ सो सुष जो सुखदुःख अतीत ॥ पुन्य न पाप उष्ण नहिं सीत
॥ ७९ ॥ विषयनकी इच्छा दुख जानौं ॥ गुणसंपन्न आढ्यसो मनौं ॥ बंध मुक्तकी युक्तिहि 
जानै ॥ मम जन पंडित ताहि बखानै ॥ ८० ॥ अहंकार जाके जग आदी ॥ अपने कहे देह

गेहादी ॥ सो समस्त मूरखही जानौं ॥ यातैं और भांति मतिमानौ ॥ ८१ ॥ जाकरि मोहि लहै सो पंथ ॥ जो प्रवृत्ति सो सकल कुपंथ ॥ नित संतोषी सीतल हृदय ॥ सात्विक चित्त सबनि पर सुहृदय ॥ ८२ ॥ सोइ स्वर्ग जो सुखभंडार ॥ नरकनिमैं तामस अधिकार ॥ सतगुरु एक बंधुकरि जानौ ॥ और सकल बैरी करि मानौ ॥ ८३ ॥ सतगुरु हैं सो मेरो रूप ॥ जातैं जीव तजैं ग्रहकूप ॥ सतगुरु बिना बंधु नहिं कोई ॥ सतगुरु बिन सब बैरी होई ॥ ८४ ॥ मानव तन सोई ग्रह कहियैं ॥ ताकैं ग्रहै ग्रही ह्वै रहियैं ॥ सो दरिद्र जो तृष्णावंत ॥ कृपण इंद्रियनि बस बरतंत ॥ ८५ ॥ विपयनि अनाशक्त सो ईस ॥ विषयति वसते सकल अनीस ॥ इतनी प्रष्णकही मैं तोसौं ॥ जा जा विधि तुम पूछी मोसौं ॥ ८६ ॥ विंधिनिषेधकै लक्षण जेसैं ॥ महापुरुष जानतहै तेसैं ॥ विधिनिषेधक्कौं जालौं जानै ॥ ऊंच नीच बहुभेदनि मानै ॥ ८७ ॥ सो यह सकल निषेधहि जानौ ॥ भेद दृष्टिमैं विधि मतिमानौ ॥ विधि निषेध निषेधहि देषौ ॥ दुहुतैं परैं तांहि विधि लेषौ ॥ ८८ ॥ विधि निषेध पसु मानव माने ॥ पंडित कदे हृदैं नहिं आने ॥ तातैं विधि निषेध भ्रम जानौ ॥ मेरो रूप सकल करि मानौ ॥ ८९ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ विधि निषेध भ्रम जाननौ, ज्ञान कह्यौ जब कृष्ण ॥ वेदवचन तब सुमरि करि, उद्धव कीनी प्रष्ण ॥ ९० ॥ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांएकोनविंशतितमोध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा ॥ कहत बीसमैं ध्यायमैं, भक्ति क्रियात्मक ज्ञान ॥ अधिकारीहु विभा-

गतैं सुलभ योग त्रय जान ॥१॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ हेप्रभुजी तुम करुणा
करौ ॥ मेरो यह संसे परिहरौ ॥ तुमरी आज्ञा कहियें बेद ॥ ताहीमें दीसतुहै भेद ॥ १ ॥ विधि
निषेध सो वेद भखाने ॥ ताहीतें सबको कोई मानै ॥ तुमरी आज्ञा क्यौं भ्रम लेषे ॥ जातें विधि
निषेध नहिं देखे ॥ २ ॥ अरु यह प्रगटहि दीसैं देव ॥ विधिनिषेधके बहुविधि भेव ॥ प्रगटहि
विधि वर्ण अरु आश्रम ॥ तिनके विधि भांति विधि कर्म ॥ ३ ॥ तिनके प्रगटहि फल स्वर्गादी ॥
अब कोनहिं यह पंथ अनादी ॥ अरु निषेध प्रगटहि प्रतिलोम ॥ अंबष्ठादिक जे अनुलोम ॥ ४ ॥
वर्णनिमैं शंकरहि जे ते ॥ अरु तिनहिके कर्म पुनि ते ते ॥ तिनके प्रगटहि फल नरकादी ॥
कहैहु ते फल जाइ न बादी ॥ ५ ॥ जाके फलहि वेद ज्यौं कहै ॥ ताकौं करि नर त्यौंही लहै ॥
अरु त्यौं द्रव्य देस वय काल ॥ प्रगटहि विधि निषेध गोपाल ॥ ६ ॥ अरु जो विधि निषेध
नहिं सत्य ॥ तो सुख दुख अरु फलहि असत्य ॥ कोई स्वर्ग नरक नहिं जावै ॥ तो बहुश्रम
करि विधि न करावै ॥ ७ ॥ अरु काकहियैं वारंवार ॥ तुमरे वचन अनेक प्रकार ॥ यह तो
कह्यौ तुमारे वेद ॥ जातें विधिनिषेध भेदके ॥ ८ ॥ देव पितर मुनि मानव जे ते ॥ वेद नयन
देखतहैं ते ते ॥ विधिनिषेध तिनके फल जानैं ॥ अरु त्यौंही त्यौं तेऊ ठानैं ॥ ९ ॥
सकल तुमारी आज्ञा मांहीं ॥ ज्यौं ज्यौं थापे त्यौं वरताहीं ॥ सो मिथ्या क्यौं कहियै वेद ॥
याकौं मोहि बतावो भेद ॥ १० ॥ द्वै विधि वचन बढै संदेह ॥ वेहैं सत्य किधों प्रभु एह ॥
यह पूरण संदेह मिटावौ ॥ एक भांतिके वचन सुनावौ ॥ ११ ॥ या विधि परम ज्ञान विस्तारौ ॥
अपनें रचे जीव निस्तारौ ॥ सुनि उद्धवकी ऐसी बानी ॥ तब बोले श्रीसारंगपानी ॥ १२ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव परम ज्ञान अब कहौं ॥ तेरें सब संदेहहि दहौं ॥ मैं भाषेंहैं तीन उपाई ॥ कर्मरु भक्ति ज्ञान समुझाई ॥ १३ ॥ ज्यौं जाकौ देष्यो अधिकार ॥ ताकौ तेसो कियो बिचार ॥ जोभाषों सबहिन सों ज्ञान ॥ तो ते विष इतजैं नहिं आन ॥ १४ ॥ तातैं कर्म अकर्म छुडाऊं ॥ लेकरि ज्ञान मध्य ठहराऊं ॥ तातैं वचन सकल मम सत्य ॥ विधिनिषेधसो नहिं असत्य ॥ १५ ॥ परिए सकल ज्ञानके कारण ॥ ज्ञान लहेतें सकल निवारण ॥ ए तुम सेदि ब्रह्मकी जानौ ॥ तातैं कछु संदेह न आनौ ॥ १६ ॥ जिन भव सुख ज्यौंहे त्यौं जान्यौ ॥ ब्रह्मलोकलौं नस्वर मान्यौ ॥ तातें तिनकै उद्यम दहै ॥ और सकल तजि थिर ह्वै रहै ॥ १७ ॥ तिनकों ज्ञान जोग अधिकार ॥ थिर ह्वै करनो ब्रह्मविचार ॥ अरु जिन विषयनि सुष नहिं जानै ॥ अरु तिनके उद्यम नहिं भानै ॥ १८ ॥ परि मम गुणानि सुनी सुखमानै ॥ मेरो भजन भलौ करि जानै ॥ ताकों भक्ति जोग हितकारी ॥ ऐसैं जानै तत्त्व विचारी ॥ १९ ॥ अरुजे वियषनिके आधीन ॥ तिनके उद्यमसौंलौं लीन ॥ कथा सुननको नहिं अवकास ॥ अरु मम प्रीति नहिं अभ्यास ॥ २० ॥ तिनकों कर्म जोग सुखदाई ॥ इनतें औरन श्रेय उपाई ॥ ए तीनौं भाषतहौं तोसौं ॥ निश्चल चित ह्वै सुनियो मोसौं ॥ २१ ॥ प्रथमहि कर्म जोग विस्तारौं ॥ विषयी जीवनिकौं निस्तारौं ॥ मेरे बहुविधि गुण विस्तारा ॥ कथाप्रसंगहि विविध प्रकारा ॥ २२ ॥ तिनमैं प्रीति न उपजै तोलौं ॥ मम जन संगकरै नहिं जोंलौं ॥ अरु जोंलौं न बढै वैराग ॥ विषयनिकौ नहिं होवै त्याग ॥ २३ ॥ तोलौं कर्म जोग नहिं तजै ॥ कर्मनि करि नित मोकौं भजै ॥ अपने धर्म मांहिथितिरहै ॥ कबहूं भूलि निषेध न गहै ॥ २४ ॥ यज्ञ महोत्सव बहुविधि करै ॥ सकल कर्म मम हित विस्तरै ॥ मनतें

इच्छा सकल मिटावै ॥ सो नर स्वर्ग नरक नहिं जावै ॥ २५ ॥ ऐसैं ज्ञान भक्तिकौं लैहै ॥ तातैं कर्म काल सबदहै ॥ उद्धव इह मानव तन ऐसौ ॥ सकल सृष्टिमांहीं नहिं जैसौ ॥ २६ ॥ स्वर्ग नरकके वछैं जाकौं ॥ परिक्यौंही नहिं पावैं ताकौं ॥ ज्ञान भक्ति यातन करि लैहै ॥ और सबनि करि भव जल वहै ॥ २७ ॥ जो एसो मानव तन पावै ॥ ॥ सो समस्त कामना मिटावै ॥ तजै निषेध सकलही कर्म ॥ अरु कामना हेत जे धर्म ॥ २८ ॥ अरु फिरि नहिं वंछे नर देहा ॥ परम रतन नहिं षोवे एहा ॥ जद्यपि बहुरो नर तन पावै ॥ परिज्ञानादिक कछु न रहावै ॥ २९ ॥ मातपिता भाई कुललोग ॥ ज्ञान मिटावैं करि संयोग ॥ खान पान आदिक बहु साधैं ॥ बालपन सौं ताकों बाधैं ॥ ३० ॥ तातैं ज्यौं लगि नाहीं मरे ॥ त्यौं लगि जतन निरंतर करे ॥ या तनकौं मिथ्या करि जानौं ॥ अरु सो ब्रह्मदानि करि मानौं ॥ ३१ ॥ तातैं जतन निरंतर करैं ॥ सावधानता हिरदै धरै ॥ या तनमैं आशक्त न होई ॥ करे उपाय मुक्तिको सोई ॥ ३२ ॥ ज्यौं पंषी तरु वासा करै ॥ तामैं तीति मान मन धरै ॥ अरु ता वृक्षहि काटै कोई ॥ जिनके हृदै दया नहिं होई ॥ ३३ ॥ वृक्ष संग जो पंखी परै ॥ तो तिनकैं वस व्है करि मरै ॥ परिसो प्रथम वृक्षहि त्यागै ॥ काटत देषि आप उठिभागै ॥ ३४ ॥ आपुहि ऐसी भांति बचावै ॥ पीछे तहा रहै जहँ भावै ॥ त्यौंही नर तन तरु आधारा ॥ अतम पंखी किय आगारा ॥ ३५ ॥ ताकौं निशदिन करे प्रहार ॥ सदा निरंतर वारंवार ॥ ऐसो देषि धरै तन त्रास ॥ प्रथमहि त्यागैं तरुको वास ॥ ३६ ॥ मोमें आइ बसेरा करैं ॥ तातैं बहुरि न जन्मे मरै ॥ मानव तन भवसागर नावा ॥ मेरि कृपाहूतैं यह पावा ॥ ३७ ॥ जामें गुरु षेवट सुखदाई ॥ सानुकूलमैं पवन सहाई ॥ तोहूं

आपुहिं जो नहिं तारे ॥ नाव छोडि भवसागर डारे ॥३८॥ ताकौं आतम घाती मानौ ॥ दूजो आतम घाति न जानौ ॥ अरु जो भवतें होइ विरक्ती ॥ दुखमय जानिनहो वैरक्ती ॥ ३९ ॥ सो समस्त इंद्रिय वस करे ॥ मन निश्चल करि मोमैं धेरे ॥ जो मन धारत अचल न होई ॥ तोहूं आतुर होई न कोई ॥ ४० ॥ एकहि वार न सकल निवारै ॥ क्रम क्रम सकल उपाधिहि टारे ॥ कछु इक आसा पूरे मनकी ॥ हृदये रषै मूलषऊनकी ॥४१॥ देवै सो तजवेके हेत ॥ सावधान नित रहे सुचेत ॥ आगे फलकी अवधि बतावै ॥ दोष दिषाइ विरक्ति उपावै ॥ ४२ ॥ एसें क्रमहि क्रम मन डारै ॥ क्रम क्रम सकल विकार निवारै ॥ इंद्रिय गुण हृदये नहिं आनै ॥ स्वास जीति मनकी गतिभानै ॥ ४३ ॥ मन जीतनकौं परम उपाई ॥ जातें मन गति जानी जाई ॥ जेसैं अवस तुरंगहि होई ॥ अस्ववार वस होइ न सोई ॥ ४४ ॥ तब तापर चढिकरि अस्वार ॥ हठ नहिं करै एकही वार ॥ कछु हयकौं रुष सहित चलावे ॥ पीछें दे चाबुक दोरावै ॥ ४५ ॥ ऐसी विधि याकों बसकरै ॥ त्यौं जोगी क्रम क्रम मन धरै ॥ सांख्य विचार निरंतर करै ॥ या विधि यह जग जन्मेमरै ॥ ४६ ॥ तत्त्वनकी उत्पत्ति विचारै ॥ ज्यौं ज्यौं बिनसे त्यौं मन धारै ॥ सकल उपाधि उरेकी देषै ॥ आपुहि परे सकलतें लेषै ॥ ४७ ॥ याविधि जों लगि मन बस होई ॥ तों लगि करै विचारहि सोई ॥ ऐंसी विध जब सांख्य विचारैं ॥ गुरुके वचन हृदयमें धारे ॥ ४८ ॥ तब सबहीतें होई विरक्ती ॥ मन मोंमें होवे अनुरक्ती ॥ जोंग पंथजे अष्टप्रकारा ॥ अरु यह-आतम देह विचारा ॥ ४९ ॥ अरु मम श्रवन कीरतन ध्यान ॥ मन जीतनकौं पंथन आन ॥ जोगरु भक्ति सांख्य ए तीन ॥ सब ग्रंथनिमें लीने बीन ॥ ५० ॥ इनतें चोथो

नहीं उपाई ॥ तातैं मन मोंमें ठहराई ॥ तातैं चोथे कछु नाहिं करणौ ॥ इन पंथानि मोंकौं अनु
सरणौ ॥ ५१ ॥ अरु जो कदे पाप ह्वै आवै ॥ सावधान ता उर न रहावै ॥ तोहूं और न करै
उपाई ॥ सो सो पाप इनहितें जाई ॥ ५२ ॥ और करै नानाविधि जोई ॥ सो सो अधिक
अधिक मल होई ॥ विधिनिषेध सबहीं मल जानौ ॥ कबहूं कछु उत्तम मतिमानौ ॥ ५३ ॥
विधिनिषेध ऐ कीने दोई ॥ जातैं बंधरहैं सबकोई ॥ भयतें बहु आरंभनि करैं ॥ अपनैं आपनैं
विधि आचरैं ॥५४॥ ता पीछे सब बंध जनाऊं ॥ करौं अबंध सकल छोडाऊं ॥ सकल न त्यागै एकहि
वारा ॥ तातैं कीनै बहुत प्रकारा ॥ ५५ ॥ तातैं विधिनिषेध नहिं करणा ॥ सकल त्यागि मोंमें
मन धरणा ॥ विधिनिषेध जन मिथ्या जानै ॥ अरु भव सुख सब दुखकरि मानै ॥ ५६ ॥ परि
समरथ तजिवेंकों नाहीं ॥ प्रबल ज्ञान प्रगट्यो नहिं मांहीं ॥ ताकौं भक्ति जोग अधिकार ॥
सहजैं छूटैं सकल विकार ॥ ५७ ॥ मेरी कथा निरंतर सुनै ॥ हृदय मांहि मेरे गुन गुनैं ॥ दृढ
विश्वास हृदेमैं राषै ॥ मेरे गुण नामाहित नित भाषै ॥ ५८ ॥ यों जद्यपि विषयनिमैं रहै ॥ परि
मन वच क्रम त्यागहि चहै ॥ सो नित भक्ति जोगसौं भजै ॥ मोविच अंतराय सब तजै ॥५९॥
तंत्रपंथ पूजा विस्तरै ॥ ममहित जो कछु सों सब करैं ॥ याविधि सकल वासना नासे ॥ मेरो
रूपहि हृदय प्रकासे ॥६०॥ तातैं ब्रह्मरूप करि जानै ॥ द्वैतभाव मिथ्या करि मानै ॥ संसय
कर्म भर्म सब भागै ॥ अहंकार तजि सोवत जागै ॥ ६१ ॥ जहां तहां मोहींकौं देखै ॥ मोबिन
और कछू नहिं लेखै ॥ ऐसो ह्वै ममरूप समावै ॥ याही जन्म और नहिं पावै ॥ ६२ ॥ तातैं
जाकौ मेरी भक्ती ॥ निशदिन ममचरणनि अनुरक्ती ॥ तातैं जद्यपि नाहीं ज्ञान ॥ अरु नाहीं

वैरागानिदान ॥ ६३ ॥ तोहूं सो मोकौं अनुसरै ॥ अति दुस्तर भवसागर तरै ॥ वर्णाश्रमके धर्मनि करै ॥ बहुत भांति तपकौं आचरै ॥ ६४ ॥ निशदिन सांख्यहि ज्ञान विचारै ॥ गहि वैराग सकल अघजारै ॥ साधे जोगहि अष्ट प्रकारा ॥ दान वृतादिक बहु विस्तारा ॥ ६५ ॥ ए सब आपुहितें चलि आवै ॥ मम जनके आधीन रहावै ॥ मेरीभक्ति सकल सिरताजा ॥ जैसें सकल नरनिमें राजा ॥ ६६ ॥ भुक्ति भुक्ति पल नहिं परिहरै ॥ मम जनकी नित सेवा करै ॥ अरु में जद्यपि बहुविधि कहौं ॥ भुक्ति मुक्ति कछु दीनी चहौं ॥ ६७ ॥ परि मेरै निजजन नहिं लेवै ॥ सकल त्यागि ममचरणानि सेवै ॥ निरपेक्षता परम है श्रेय ॥ मोबिन सकल वस्तुकौ हेय ॥ ६८ ॥ निस्पृहता यह सुखहि अपार ॥ जहां न काल कर्म आधिकार ॥ में निस्पृह निस्पृह जो होई ॥ मेरो भक्त कहींजैं सोई ॥ ६९ ॥ मेरेशम लक्षणहैं जामैं ॥ मेरो रूप जानियै तामैं ॥ सबतें निस्पृह नित ममभक्त ॥ में निस्पृह तासौं अनुरक्त ॥ ७० ॥ तातैं निस्पृहता सुख ऐसौं ॥ सकल विस्वमें नाहीं जैसो ॥ निस्पृह जन मेरो सुख पावै ॥ स्पृहावंतके निकट न आवै ॥ ७१ ॥ जे एकांत भक्तहैं मेरे ॥ तिनके पुन्य पाप नहिं ने रे ॥ रागद्धेष वर्जित सम दरसै ॥ त्रिगुणातीत ब्रह्मकौं परसै ॥ ७२ ॥ जोगरु भक्ति सांख्य ए तीन ॥ तीनौ एकै कहैं प्रवीन ॥ इनकौं पाई मोंकैं पावै ॥ ए बिन पाइ न मोंमे आवै ॥ ७३ ॥ ए साधनहैं तीनौं नीकै ॥ इन बिन और न तारक जीकै ॥ ए साधनहैं मेरो रूप ॥ इनतें तत्व न और अनूप ॥ ७४ ॥ मेरो गोप्य रहस्यहि जोग ॥ जीव ब्रह्मकौ क्षिप्र संजोग ॥ छूटै सकल अविद्या भोग ॥ काल जाल नहिं संसे रोग ॥ ७५ ॥ ऐसें
१७ तीन पंथ विस्तारै ॥ इन करि बहुत जीव निस्तारै ॥ जेई जे जन इनमैं आवै ॥ तेई ते मेरो

पदपावै ॥ ७६ ॥ दोहा ॥ जे इन पंथनिकौं तजै, करे कर्म अविकार॥ तिनपशु जीवनिकौ कहै, विधि निषेध विस्तार॥ ७७॥ इति श्रीभगवतेमहापुराणे एकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांविंशातितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा ॥ ॥श्रीधर श्रीलक्ष्मीनृसिंह परानंद संदोह॥ तिनकी कृपाकटाक्षतै दुर होंत मन मोह॥ १ ॥ ज्ञान क्रिया हरिभक्तिमें जिनकौं नहिं संतोष ॥ तिन काम्योंके हित कहै, द्रव्य देश गुण दोष॥ २ ॥ ॥श्रीभगवानुवाच॥ चौपाई ॥ ज्ञान भक्ति अरु कर्म उपाई ॥ आप मिलनकौं दिए बताई ॥ परिजे अतिहीं पशु अज्ञान ॥ इनकौं छोडिकैरे कछु आन ॥ १ ॥ बहुत कामना हृदये धरै ॥ तिन हित बहुकर्मनि विस्तरै ॥ ते पशुदुःख निरंतर पावै ॥ भव प्रवाह मांहि बहि जावै ॥ २ ॥ तिन हित विधिनिषेध उच्चरै ॥ तिनके बहु आरंभ निवारै ॥ अपनौंहू आपनौ अधिकार ॥ तामें वरतें तजि विस्तार ॥ ३ ॥ ऊंचौ नीचौ सब परिहरै ॥ अपने कर्म मांहि अनुसरै ॥ सो सो तिन तिनकौं विधि जानौ ॥ तातै और निषेधहि मानौ ॥ ४ ॥ ए कछु वस्तु बुद्धि मति देखौ ॥ पशुजीवनकौं बंधन लेखौ ॥ उपजी वस्तु समस्त असुद्ध ॥ परि कहि भाषै सुद्ध असुद्ध ॥५॥ कर्म सकल छोडावन कारण ॥ मैं यह कियो वेद उच्चारण ॥ पाप छुडाई धर्म ग्रहवाऊं ॥ याबिधि बहु आरंभ छुडाऊं ॥ ६ ॥ यह समस्त जगको व्यवहार ॥ यातें जगको वार न पार ॥ क्षिति जल पावक पवन आकास ॥ सब जग पंचभूत परकास ॥ ७ ॥ ब्रम्हादिक थावर परजंत ॥ पंचभूत करि सब वरतंत ॥ अरु

एकहि आतम सब मांहीं ॥ तातैं भेद कहूं कछु नाहीं ॥ ८ ॥ परि तथापि में भाष्यो वेद ॥ ताकरि कीने नाना भेद ॥ तिनके स्वारथ सुखके हेत ॥ विधि उच्चारे फलनि समेत ॥ ९ ॥ देश काल गुण द्रव्य सुभाव ॥ इनके भाषे नाना भाव ॥ एक निषेध एकविधि भाषै ॥ यौं संकोच मांहि सब राषै ॥ १० ॥ जाही देश कृष्ण मृग नाहीं ॥ अरु जह द्विजसेवा न करांही ॥ अरु जो कृष्ण मृगहि जब रहै ॥ परि मिलेछ तहँ वासा गहै ॥ ११ ॥ अरु जद्यपि तुरकउ तहँ नाहीं ॥ परि मघ हद आदिनके मांहीं ॥ अरुजो मगधादि परिहरै ॥ परि कदरजता दूर न करै ॥ १२ ॥ अरु कदरजता मेटी होई ॥ परिजो उषर होवे सोई ॥ सो सो देस निषेध कहीजैं ॥ तिनमैं वासादिक नहिं कीजैं ॥ १३ ॥ तिनतें और देंस सुचि जानै ॥ तिन मांही वासादिक ठानै ॥ अरु जो काल कर्मको नाहीं ॥ सूतक आदि भये जा मांही ॥ १४ ॥ सो सो काल निषेध कहीजै ॥ उत्तमसो जामें विधिकीजे ॥ वस्त्रादिकाहि जलादिक सुद्ध ॥ मूत्रादिकतें होइ अशुद्ध ॥ १५ ॥ सुद्ध असुद्ध वचनतें त्यौंहीं ॥ सूंघेतें पुष्पादिक यौंहीं ॥ तवहीं पाक कर्‍यौ सो सुद्ध ॥ बहुत कालतें होइ असुद्ध ॥ १६ ॥ कहियै भूमि मसान असुद्ध ॥ बहुत कालतें कहियै सुद्ध ॥ भूमें जब वरषा जल होई ॥ बहुत कालतें शुद्धहि सोई ॥ १७ ॥ ऐसी भांती ओरहु जानौ ॥ शुद्ध अशुद्ध भेद पहिचानौ ॥ विनास्नान सुद्ध बालादिक ॥ स्नानादिकतैं शुद्ध जुवादिक ॥ १८ ॥ जीरण वस्त्र अधनकौं सुद्ध ॥ द्रव्यवंतकौं परम असुद्ध ॥ औरौं सकल शक्ति अनुमान ॥ शुद्धअशुद्धहि कियो बखान ॥ १९ ॥ सो सब देस काल अनुसार ॥ विधिनिषेधकौ कह्यौ विचार ॥ धन अरु पात्र बस्त्र गजदंत ॥ तेलरु घृत हेमादि अनंत ॥ २० ॥ काल अग्नि जल माटी वाई ॥

जथा जोग है सुद्ध कराई ॥ अरु जो कछु लाग्यौ दुर्गंध ॥ ज्यौं लगि धोए मिटे न गंध ॥२१॥
त्यौं लगि जानि अशुद्ध न गहियै ॥ गंध गएतें निर्मल कहियै ॥ शक्ति अवस्था तप अस्नान ॥
संसकार सुभकर्मरु दान ॥ २१ ॥ मम सुमरगणतें होवै सुद्ध ॥ करे अन्यथा होइ असुद्ध ॥ मेरो
मंत्रलियै विधि जानौ ॥ मंत्रविहीन निषेधहि मानौ ॥ २३ ॥ अर्पे थोहि सुद्ध सबकर्म ॥ करे
विपर्जय होइ अधर्म ॥ देशरु काल कर्म अरु करता ॥ द्रव्य मंत्र ए खट आचरता ॥ २४ ॥
ए जो सुद्ध होइ तो सुद्ध ॥ ए असुद्ध तो होइ असुद्ध ॥ अरु कहु होवे शुद्ध अशुद्ध ॥ कहु
अशुद्धही होवै शुद्ध ॥ २५ ॥ सुद्ध असुद्ध भेदहै जाके ॥ राग दोष होवेगो ताके ॥ जोईहै
ऊंचेको धर्म ॥ नीचेको है ऊंच अधर्म ॥ २६ ॥ अरुजो कछू धर्म नीचेकूं ॥ सोईहै अधर्म ऊंचेकूं॥
ताहीतें दोऊ भ्रम जानै ॥ मेरोभक्त कदे नहिं मानै ॥ २७ ॥ जो कबहूं विष अमृत लीजै ॥
ले ऊंचे नीचेकूं दीजै ॥ तो तिनमें तो भेद न होई ॥ मरनों अमर एक सम दोई ॥ २८ ॥ योंही
विधिनिषेधहु होवैं ॥ ऊंच नीचकी ठौर न जोवै ॥ परिए दोऊ हे कछु नाहीं ॥ आपविचारो
अंतर मांही ॥ २९ ॥ नीचै नीचकर्म आचरैं ॥ मदिरा पानादि कहूं करै ॥ तोहूं इनकों दूषण
नाहीं ॥ सो नितहीहै दूषण मांहीं ॥ ३० ॥ अरुजो ग्रही करतुहै संग ॥ ऋतुकै समय जुवति
प्रसंग ॥ तो ताकौं कछु दूषण नाहीं ॥ सो नितहीहै दूषण मांहीं ॥ ३१ ॥ ज्यौंही पर्‍यौ धरणीपर
कोई ॥ ताहि न परनैकों भयं होई ॥ परिजे कछू चढेहें ऊंचे ॥ संकरी ढहिआवैं नीचे ॥ ३२ ॥
तातैं तिनकौ संग न करणो ॥ मन बच कर्म संग परि हरणो ॥ ज्यौं ज्यौं प्राणी छोडे कर्म ॥ ॥६६॥
त्यौं त्यौं छूटे पावे मर्म ॥ ३३ ॥ क्षेम धर्म सब नीकौ एह ॥ मिटहिं सोक मोह संदेह ॥ या

निमित्तमें भेद सुनाये ॥ थोरे थोरेमें ठहराये ॥ ३४ ॥ पीछें भ्रम कहि सकल निवारे ॥ ऐसी भांति जीव निस्तारे ॥ जब नर विषयानि उत्तम जानैं ॥ तब तिनमें आशक्तिहि ठानै ॥ ३५ ॥ तातें हृदये उपजै काम ॥ तातें तहां कलहको धाम ॥ ताहीहुतें क्रोध उपजावे ॥ तब अविवेक आपुही आवै ॥ ३६ ॥ सो अविवेक हरै सब ज्ञान ॥ तातें प्रानी मृतक समान ॥ तातें काज अकाज न जानैं ॥ निशदिन बहुविधि चिंता ठानै ॥ ३७ ॥ सब पुरुषारथ होवै छीन ॥ निशदिन रहै दुखित अरु दीन ॥ तातें समुझें आपु न आन ॥ मिथ्या जीवे वृषभ समान ॥ ३८ ॥ ज्यों होवे लुहारकै षाल ॥ स्वासलेत यो षोवे काल ॥ अरु पुनि कहै कर्म फल जे ते ॥ स्वर्गादिक नाना विधि ते ते ॥ ३९ ॥ ते ते कहि करि रुचि उपजाई ॥ मेटि निषेधानि बिधि करवाई ॥ जैसें औषध कटु कषवावे ॥ बालककौं लाडूहि दिषावें ॥ ४० ॥ औषधको फल लाडू नाहीं ॥ औषधपिये रोग सब जाहीं ॥ स्वर्गहेत जो कर्मनि करै ॥ पुनि सुनि तत्त्व फलहि परिहरै ॥ ४१ ॥ तब अनर्थ ताजि अर्थहि आवै ॥ मोमें व्है निह कर्म समावै ॥ अरु यह जबतें जन्महि पावै ॥ तबतें आपुहि विषय कमावै ॥ ४२ ॥ पुत्र कलत्र कुटुंबरु प्राना ॥ इनके हेत चहै सुखनाना ॥ आपु आपुको करै अनर्थ ॥ तिनकौं मूरख जानै अरथ ॥ ४३ ॥ ऐसैं या भवमें नित भर्मै ॥ कदें न जाने सुखके मर्मै ॥ अरु तिनकौं जोभरमत देषै ॥ सदा निरंतर दुखित हु लेषै ॥ ४४ ॥ सो तिनकौं कबहूं न बहावे ॥ अर्थरु काम न कदे दृढावे ॥ तातें मैंतो सबविधि जानौं ॥ कैसैं कामरु अर्थ बषानौं ॥ ४५ ॥ परिजे कछु श्रुतिमांही सुनायै ॥ अर्थ धर्म अरु काम बतायै ॥ ते ते सकल छुडावन कारण ॥ हेत बिचार कियो उच्चारण ॥ ४६ ॥ ऐसो वेदतत्त्व नहिं जानै ॥

मूरख पुष्पित बनै बषानै ॥ फलनि हेत आरंभैं कर्म ॥ तिनकौ कदे न छूटै भर्म ॥ ४७ ॥ कामी कृपण लोभ अधिकारी ॥ तृष्णा आकुस सदाविकारी ॥ फूलहि माहीं फल करिमानै ॥ कामनि लागि तत्त्व नहिं जानैं ॥ ४८ ॥ मैं तिनके नित हृदेमें मांहीं ॥ परि तोहूं ते जानैं नाहीं ॥ जातैं यह सब जगत पसारा ॥ अरु समस्त जाके आधारा ॥ ४९ ॥ जाकी शक्ति पाई सब वर्त्तै ॥ चुंबक संग लोहज्यौं नर्त्तै ॥ जाकी आज्ञा सबहीं मानै ॥ कोई मरजादा नहि भानै ॥ ५० ॥ ऐसो हे सबहिनमें ईस ॥ जेसैं सकल देहमें सीस ॥ परिते काम कर्मतें अंध ॥ मोहि न देषें अर्थनि बंध ॥ ५१ ॥ जैसें नयन रोगमय होवै ॥ आगै होती वस्तु न जोवैं ॥ यौं अज्ञान अंध कर्मिष्ट ॥ देषें नहीं निकटमें इष्ट ॥ ५२ ॥ ते मो बिन मम मतो न जानैं ॥ हानि जीवनि जज्ञादिक ठानैं ॥ ते फिर तिनहिं हतें परलोक ॥ जन्म जन्म पावैं भय सोक ॥ ५३ ॥ जब याकै बहुहिंसा देखी ॥ हनि हनि जीव जीवका पेखी ॥ तिनकै हेत कही यह बानी ॥ हिंसा जज्ञहि मांहि बखानी ॥ ५४ ॥ पसुवध एक जज्ञमें भाष्यौ ॥ और समस्त दूरिकरि नाष्यौ ॥ जब प्राणी तामें ठहरावै ॥ तब पुनि वेदहि सकल छुडावै ॥ ५५ ॥ वा निमित्त पसु हिंसा भाषी ॥ सो मूरषनि तत्त्व करि राषी ॥ तातैं बहुविधि कर्मनि करैं ॥ बहूत काम हृदेमैं धरैं ॥ ५६ ॥ पसुहिंसा करि करि व्यवहार ॥ जे जे पावैं बहुत प्रकार ॥ देव पितर भूतनकौं यजैं ॥ उरतें सुख इच्छा नहिं तजैं ॥ ५७ ॥ सुपन तुल्य स्वर्गादिक भोग ॥ तिनकौं सुनि उत्तम या लोग ॥ तिनकी इच्छा हृदये धरैं ॥ द्रव्य षरचि कर्मनि विस्तरैं ॥ ५८ ॥ विघ्न होइ बहुकर्मनि मांहीं ॥ स्वर्गादिकहू पावैं नाहीं ॥ ज्यौं को सायर पारहि जावै ॥ धन

हित ग्रहके धनहि लगावे ॥ ५९ ॥ पाछैं परैं विघ्न जो कोई ॥ ता दोन्योंतें जावे सोई ॥ यों जे बहुविधि कर्म उपावैं ॥ ते पसु दुहूंलोकतैं जावैं ॥ ६० ॥ सातिक जे ते देवानि भजैं ॥ जक्षादिककों राजस जजैं ॥ तामस भूत प्रेत बहु सेवैं ॥ तन मन धन तिन तिनकौं देवैं ॥ ६१ ॥ इहां यज्ञहू बहुविधि कीजैं ॥ विप्रानि बहुत दक्षिणा दीजैं ॥ तातैं स्वर्गादिक सुख पइयैं ॥ तहां बहुत विध भोग भुगइयैं ॥ ६२ ॥ पुनि जब होवे तिनको अंत ॥ तबहूं जें भुवमें धनवंत ॥ ऐसी भांति कामना करे ॥ तिन निमित्त कर्मनि विस्तरे ॥ ६३ ॥ तिनकौं मेरी बात न भावे ॥ भक्ति कहातैं हृदये आवे ॥ जद्यपि वेद कर्म उचारै ॥ धर्मरु अर्थ काम बिस्तारै ॥ ६४ ॥ परि तथापि ब्रह्महीं बतावै ॥ क्रम क्रम दूजो सकल छुडावे ॥ परि श्रुतिको आसय नहिं जानैं ॥ है कछु औरे और बषानैं ॥ ६५ ॥ शब्द ब्रह्म महादुर्बोध ॥ पंडितहूं नहिं पावे सोध ॥ सूक्षम थूल रूप द्वे जाके ॥ मोबिन भेद लहे को ताके ॥ ६६ ॥ प्राणस्वरूप परासें नाम ॥ पस्यंती को मनमें धाम ॥ तीजी कंठ मध्यमा मूल ॥ चोथी प्रगट वैषरी थूल ॥ ६७ ॥ भेदहि तिनको कोइ न जानै ॥ तातैं औरे और बषानै ॥ अंत पारको ईनहिं पावै ॥ ज्यौं सायर थाह्यौ नहिं जावै ॥ ६८ ॥ अति गंभीर अर्थहे जाकौ ॥ कोई भेद न जाने ताकौ ॥ मैं सबहिनमैं अंतरजामी ॥ शक्ति अनंत सकलको स्वामी ॥ ६९ ॥ सर्वहि व्यापक ब्रह्मरूप ॥ लिषन कबहूं परम अनूप ॥ सोईहै व्यापक सब मांहीं ॥ शब्द रूप दूजाको नाहीं ॥ ७० ॥ कमल नालमैं तंतू जैसें ॥ शब्द रूप सबमें मैं ऐसें ॥ सोई प्रगट्यौ बहुविस्तार ॥ मन करि हृदयहुतें मुषद्वार ॥ ७१ ॥ ज्यौं मकरी तंतू विस्तारै ॥ करि विस्तार बहुरि संहारै ॥ त्यौं मम

वेद भयो विस्तार ॥ ॐकार इक मूलाधार ॥ ७२ ॥ तातैं अक्षर बहुत प्रकारा ॥ तिनतैं छंद वार नहिं पारा ॥ चार चार अक्षर अधिकाहीं ॥ छंद होत एसी विधि जाहीं ॥ ७३ ॥ एकहुतें यों होइ अनेक ॥ बहुरो सकल एकके एक ॥ गायत्री अक्षर चोवीस ॥ उष्णिक छंद अष्ट अरु वीस ॥ ७४ ॥ जो बत्तीस अनुष्टुप सोहै ॥ बृहती नाम तीस षटकोहै ॥ पंक्ति नाम अक्षर चालीस ॥ त्यौंही त्रिष्टुप चंवालीस ॥ ७५ ॥ जगतीछंद अष्ट चालीस ॥ कहत पार नहिं कोट वरीस ॥ याविधि प्रगटयौ बहु विस्तार ॥ जाको कछू वार नहिं पार ॥ ७६ ॥ कहा ऱ्हदेमैं कहा वतावै ॥ ले कहि अंत कहा ठहरावै ॥ ऐसो मतो न जानें कोई ॥ मोबिन भावें विधि किन होई ॥ ७७ ॥ जज्ञरूप कहि मोकौं राखै ॥ सकल देवमय मोकौं भाषै ॥ मेरे हेत कर्म करवावै ॥ मोतें उपज्यौ सकल बतावै ॥ ७८ ॥ अंत सकलको भाखे नास ॥ मोकौं कहै सुनित्य प्रकास ॥ नानारूपनि वृथा जनावै ॥ एकब्रह्म कहि सकल सुनावै ॥ ७९ ॥ जेसैं साप जेवरी मांहीं ॥ यों सब जगत बतावे नाहीं ॥ मौकों नित्य निरंजन भाखै ॥ अंजन सकल दुरि करि नासै ॥ ८० ॥ तातैं श्रुति नित मोहि बतावै ॥ परि यह तत्त्व न कोई पावै ॥ सो पावै जो मम आधीन ॥ हुइ निहकाम रहे लै लीन ॥ ८१ ॥ ॥ दोहा ॥ यों सुनि करि श्रुति तत्त्वकौं, उद्धव लिये आनंद ॥ प्रष्णकरी पुनि कृष्णसौं, ज्यों छूटे भव फंद ॥ ८२ ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेएकाविंशोऽध्यायः २१

दोहा ॥ तत्त्व गणित बावीशमें, कह्यो भेद सब एक ॥ जन्म मृत्यु विधि आदि, प्रकृतीपुरुष विवेक ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥

हे देवेश तत्त्वहैं केते ॥ कहो कृपाकरि मोसों ते ते ॥ जिनकौ रचित सकल संसार ॥ जो दीसै नाना विस्तार ॥ १ ॥ तुमतौ अष्टाविंसति कहैं ॥ तेमें दृढकरि मनमैं गहैं ॥ परि बहुतें मिलि बहुविधि कहैं ॥ अरु तिनतें सुनि त्यौंही गहैं ॥ २ ॥ केइ कहतहैं तत्त्व छबीस ॥ अरु त्यौं कोई कहैं पचीस ॥ केई षट् अरु केई चार ॥ केई भाषैं सप्त विचार ॥ ३ ॥ केई नवकौ करै विवेक ॥ केई भाषैं दश अरु एक ॥ केई तत्व बतावैं षोडश ॥ अरु त्यौं एक कहैं त्रयोदश ॥ ४ ॥ केई भाषैं दश अरु सात ॥ ए रिषिमते स्मृति विख्यात ॥ कौन प्रयोजन ले ले भाखैं ॥ यौं अपनें अपनें मत राखैं ॥ ५ ॥ क्रिपाकरौं निज बेन सुनावौ ॥ सत्य मतो सो मोहि जनावौ ॥ सुनि उद्धवके बैन रसाल ॥ कृपासिंधु बोले गोपाल ॥ ६ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे उद्धव ज्यौं ज्यौं सब भाखैं ॥ जितनें जितनें तत्व निराखैं ॥ ते ते तुम सब मानो सत्य ॥ तत्व विचारै सबै असत्य ॥ ७ ॥ मायादेषि कहैं जो जे ते ॥ मायामांहि सत्यहैं ते ते ॥ मोहिदेखि जो तिनकों देखे ॥ तो समस्त मिथ्याकरि लेषे ॥ ८ ॥ मायामांहीं जुक्त विचारे ॥ अपनों अपनों मतो उचारे ॥ यह यौंहीं यह यौंहीं नाहीं ॥ कहैं सबै मिलि आपु न मांही ॥ ९ ॥ यह यौंहीहै जोमैं भाखौं ॥ तेरी कही सत्य नहिं राखौं ॥ याविधि मम माया भरमाए ॥ तिन नानाविधि पंथ चलाए ॥ १० ॥ मम मायाकी शक्ति अनंत ॥ तिनके पंथनिकौ नहिं अंत ॥ जब सम दम उर अंतर आवैं ॥ तब ए सकल भेद छटिकावैं ॥ ११ जे ते तत्त्व सकल मायाके ॥ जिनतें भए सकल ता ताके ॥ क्रम क्रम तत्त्व उपजते गए ॥ त्यौं त्यौं भेद बहुत विधि भए ॥ १२ ॥ जैसें एक वृक्ष विस्तार ॥ ताकी संपति बहुत प्रकार ॥ कछु साखा बहुतें पर साखा ॥

अरु तिनके बहु विधि उपसाखा ॥ १३ ॥ तिनको बहुत भांति विस्तार ॥ पान फूल फल
विविध प्रकार ॥ अरु ता वृक्षहि बरनें कोई ॥ ज्यौं ज्यौं सत्य त्यौं होई ॥ १४ ॥ थोरे होइ
पर्हें जो साखा ॥ बहुतें होइ मिलि पर साखा ॥ उपसाखा मिलि बहुविधि होवें ॥ ते सब पंथ
सत्य सब जोवें ॥ १५ ॥ यौं संसार वृक्ष विस्तार ॥ माया मूलहि सकल प्रकार ॥ तत्त्व सकल
साखा पर साखा ॥ अरु तिनके बहुविधि उपसाखा ॥ १६ ॥ तातें ज्यौं वर्णे त्यौं सत्य ॥ परि
सब माया सकल असत्य ॥ ज्यौंही ज्यौं जिनके मन आयौ ॥ त्यौंही त्यौं तिन बरनि सुनायौ
॥ १७ ॥ माया करि बंध्यो सो आतम ॥ तातें छोडै सो परमातम ॥ ए दोहू अरु जड चोवीस ॥
तिनकौं मिले सकलहि छवीस ॥ १८ ॥ अरु जे बंध मुक्तहैं दोई ॥ दे भ्रम माया सत्य न कोई ॥
तातें जीव ब्रह्म द्वै नाहीं ॥ यौं पचीस जानौ मन माहीं ॥ १९ ॥ सत रज तम ए गुणहैं जेते ॥
जड सरूप मायाके ते ते ॥ रज उतपति सातिक प्रतिपाल ॥ तामस रूम ग्रसतहै काल ॥ २० ॥
राजसहुतें कर्म अधिकार ॥ तामस तें अविवेक अपार ॥ सातिक गुणतें उपजे ज्ञाना ॥ एहें
मायाकें गुण गाना ॥ २१ ॥ इनतें परे आतमा मानौ ॥ तातें ब्रह्मरूप करि जानौ ॥ पंचवीस
ताहीतें कहैं ॥ त्यौंही ते सुनि और उगहैं ॥ २२ ॥ सोंहे काल गुणनि विस्तारै ॥ सो सुभावतें
शक्ति पसारै ॥ तातें कालरूप हरि जानौ ॥ अरु सुभाव महत्तत्त्वहि मानौ ॥ २३ ॥ तातें तत्त्व अधिकन
गहियैं ॥ पंचवीस छहवीसाहि कहियै ॥ प्रकृति पुरुषमह ततहंकार ॥ तन मात्रा ए पंचप्रकार ॥ २४ ॥
श्रोत्ररु त्वचा नेत्र जिव घ्राना ॥ ए पंचौ इंद्रियहैं ज्ञाना ॥ पायु उपस्थ चरणकर बानी ॥ पंचकर्म
इंद्रिय यह शानी ॥ २५ ॥ मन दशहूं इंद्रियकौ राजा ॥ जाकी शक्तिकरैं सब काजा ॥ क्षिति

जल पवन तेज आकास ॥ ए अठाइस तीन गुण पास ॥ २६ ॥ गति उत्सर्ग ग्रहन अरु बचना॥ ए पांचौ इंद्रिय फल रचना ॥ तातैं अष्टाविंशति तत्त्व ॥ अधिक न भाषें ज्ञानी सत्त्व ॥ २७ ॥ सृष्टिआदि थी माया एक ॥ पुरुष शक्तितें भई अनेक ॥ तनमात्रा मह तत हंकार ॥ एहैं कारण नवे प्रकार ॥ २८ ॥ पंचभूत मन अरु इंद्रिय दश ॥ कारजरूप विकृती षोडश ॥ सत रज तम गुण तीन प्रकार ॥ तिनतें रच्यौ सकल विस्तार ॥ २९ ॥ कारण करण प्रकृती जानौ ॥ पुरुष निमित्तहि साक्षी मानौ ॥ इच्छा सक्ति पुरुषतें पावैं ॥ मिलि समस्त तब सृष्टि उपावैं ॥ ३० ॥ सप्तधातुकौ सब विस्तारा ॥ आतम द्रष्टाके आधारा ॥ सकल तत्त्व सप्तमें आये ॥ तातें एकनि सप्त बताये ॥ ३१ ॥ पंचभूत आपहि उपजाये ॥ तिनके बहुविधि देह बनाये ॥ आपु प्रवेश कियौ हरि तिनमैं ॥ चेतन दीसतुहै जिन जिनमैं ॥ ३२ ॥ ऐसी विधि षटकौ विस्तार ॥ आपु मांहि सबकरें विचार ॥ पृथिवी आप तेज त्रय तत्त्व ॥ अरु आतम निर्मित सबसत्त्व ॥ ३३ ॥ याविधि चार तत्त्व विस्तार ॥ ऊंचौ नीचौ सब संसार ॥ पंचभूत तन मात्रा पंच ॥ पंचइंद्रिय सब परपंच ॥ ३४ ॥ मन आतमा मिलि दशसात ॥ तत्त्व सप्तदश जानो तात ॥ मन आतमा एककरि जानैं ॥ ते जन षोडश तत्त्व बखानैं ॥ ३५ ॥ पंचभूत अरु इंद्रिय पंच ॥ ब्रह्म जीव मनको परपंच ॥ ऐसी विधिकरि पंथ चलावैं ॥ तेरहको सब जगत बतावैं ॥ ३६ ॥ इंद्रिय पंच पंच पुनि भूत ॥ आतम मिलि सब जन उद्भूत ॥ ऐसी विध एकादश कहैं ॥ जुक्ति वि-चार हृदेमें गहैं ॥ ३७ ॥ पंचभूत मन बुधिहंकार ॥ आतम मिलि नवको विस्तार ॥ ऐसी विधि बहु मारग कहैं ॥ जुक्ति विचार हृदेमें गहैं ॥ ३८ ॥ प्रकृति पुरुषको लहैं विवेक ॥ इनकों जानि

एकको एक ॥ ऐसो सुनि तत्वनिको ज्ञान ॥ उद्धव पूछ्यो परम सुजान ॥ ३९ ॥ उद्धव उवा-
च ॥ चौपाई ॥ हे प्रभुजी यह ज्ञान सुनावौ ॥ मेरे उरको भ्रमहि मिटावौं ॥ चेतन ज्ञान रूप अ-
विनासी ॥ सुद्धानंद परम परकासी ॥ ४० ॥ ऐसें आतम तुमरो रूप ॥ परे गुणनितैं परम
अनूप ॥ जड विना समय परम अशुद्ध ॥ दुःखरूप पल सुख नहिं सुद्ध ॥ ४१ ॥ ऐसी
प्रकृति पुरुषतें न्यारी ॥ तोहूं भई परस्पर प्यारी ॥ प्रकृति मांहि आतम मिलि रह्यो ॥
अरु आत्मा प्रकृतिकरि गह्यो ॥ ४२ ॥ इनमें भेदन जान्यौ परे ॥ एकमेक व्है सब
अनुसरे ॥ इनमैं प्रकृति कहालौं कहियैं ॥ कोन आतमा जो दृढ गहिय ॥ ४३ ॥ करि
करुणा बानी विस्तरो ॥ वचन बान संसय परिहरो ॥ तुम माया बंध्यो संसार ॥ तुमहींहुतै
होई उद्धार ॥ ४४ ॥ तुमहीं मायाकी गति जानौ ॥ कृपाकरौ तब तुमहीं भानौ ॥ बानी
सुनी भक्त अपनेकी ॥ तब बोले श्रीकृष्ण विवेकी ॥ ४५ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥
॥ चौपाई ॥ हे उद्धव यह ज्ञान अगाध ॥ कोई एक लहे मम साध ॥ सो यह ज्ञान सुनाऊं तोही ॥
तूंहे सदा अनुव्रत मोही ॥ ४६ ॥ उद्धव प्रकृति रचे संसार ॥ सूक्षम थूल विध परकार ॥
उपजैं वरतें होइ बिनास ॥ तामैं आतम नित्य प्रकास ॥ ४७ ॥ उद्धव यह हे मेरी माया ॥
तिन सत रज तम गुणजाया ॥ तिनकौ त्रिविध सकल विस्तार ॥ जाको कछू वार नहिं
पार ॥ ४८ ॥ त्रिविध कहनकौ परि कहुं भेद ॥ तिनतें जीव लहैं नितषेद ॥ अध्यात्म आधि-
देव अधिभूत ॥ त्रिविध रूप सब जग उद्भूत ॥ ४९ ॥ दृग अध्यात्मरूप अधिभूत ॥ रवि
अधिदेव मिलि अद्भूत ॥ तीनौ मिले परसपर जबहीं ॥ तिनकौ कारज सीझै तबहीं ॥ ५० ॥

तीनौं बिना कछू नहिं होई ॥ तीनी मिलि वरते सब कोई ॥ त्वचास्पर्श पवन त्यौं जानौ ॥ कर्णरु शब्द दिशायों मानौ ॥ ५१ ॥ नासागंध अस्वनी सूता ॥ जिन्हा रसरु बरुण जलजूता ॥ चित्त चेतना अंतरजामी ॥ बुद्धि बोधना ब्रह्मास्वामी ॥ ५२ ॥ अहंकार हंकारता रुद्र ॥ मन मानवो देवता चंद्र ॥ याविधि त्रिविध प्रपंच पसार ॥ सकल परे आतम निज सार ॥ ५३ ॥ इन तीनौं बिन जगत न होई ॥ ते आतम बिन रहे न कोई ॥ आदि सकलके आतम एक ॥ जातें चेतन होह अनेक ॥ ५४ ॥ आतम स्वप्रकास अविनासी ॥ चेतन रूप सकल सुखरासी ॥ ए सब आतमके आधार ॥ अरु आतमा सकलके पार ॥ ५५ ॥ विन आतमा कछू नहिं होई ॥ अरु आतम नहिं जानें कोई ॥ मह तततें उपज्यौ हंकार ॥ तिन्हूं गुणनिकौ त्रिविध प्रकार ॥ ५६ ॥ सो अज्ञान मूलकरि मानौ ॥ जाको कियौ जगत भय जानौ ॥ सो आतमा आपही लियौ ॥ भव भय आपु आपुकौं कियौ ॥ ५७ ॥ आतम सदा एकहीं रूप ॥ अहंकारतें परे अनूप ॥ सो जब रूप आपनौ जानै ॥ तबहीं सकल उपाधी भानै ॥ ५८ ॥ सो कछु होई नहीं उपाधीं ॥ परि आतमा लेइकरि व्याधी ॥ समुझे जबही आपनौ रूप ॥ तब आतमा तजे भवकूप ॥ ५९ ॥ अरु तब रूप आपनौ जानै ॥ जब मम चरण हृदेमें आनै ॥ जद्यपि मिथ्या सब संसार ॥ जो कछु दीसे विविध प्रकार ॥ ६० ॥ परि जोलौं नहिं मोकौं भजै ॥ तोलौं निज अज्ञान न तजै ॥ जबहीं मेरे सरणहि आवै ॥ तबहीं आतम ज्ञानहि पावै ॥ ६१ ॥

**॥ दोहा ॥ ऐसे श्रीमुष बैनसुनि, प्रकृतिपुरुषकौ ज्ञान ॥ उद्धव कीनो प्रश्ण तब, हरि जन परम सुजान ॥ ६२॥ उद्धव उवाच ॥** चौपाई ॥ तुम करि रहित बुद्धिहै

जिनकी ॥ कहियें देव कोन गति तिनकी ॥ सकल व्यापी आतम एक ॥ क्यौंकरि पावै देह अनेक ॥ ६३ ॥ अरु शुभ अशुभ कर्महें जे ते ॥ त्रिगुण रचित कहियें सब ते ते ॥ तिन कर्मनि निह कर्म बंधावे ॥ क्यौंकरि जोनि अजोनी पावै ॥ ६४ ॥ अमर मरे केसें करि देवा ॥ याकौ मोहि बतावो भेवा ॥ यह तुम विना न कोई जानै ॥ जद्यपि विद्या बेदबषानै ॥ ६५ ॥ जो कछु पढे बंध सो होई ॥ तातें तत्त्व न जानै कोई ॥ याविधि उद्धव पूछयो ज्ञान ॥ तब हसि बोले श्रीभगवान ॥ ६६ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उद्धव यह मन परम विकारी ॥ सब इंद्रियनि मांहि अधिकारी ॥ इंद्रिय मिल मनहीं सब करे ॥ सुखहित बहु उद्यम विस्तरें ॥ ६७ ॥ सो तन तजि दूजे तन जावै ॥ तहां तहां आतमही आवै ॥ जिन जिन सुखनि सुने अरु देषे ॥ तिन तिनकौं उत्तम करि लेषें ॥ ६८ ॥ तिनकों सो मन निश दिन ध्यावै ॥ यह तन छीनभए तहँ जावै ॥ वह तन पाइ बिसारें याकौं ॥ जन्ममरण कहिये तुहे ताकौं ॥ ६९ ॥ जा तनमें बांधें अभिमान ॥ छोडै पूरव तन गहि आन ॥ जन्म मरण आतमकौं सोई ॥ दूजो जन्ममरण नहिं कोई ॥ ७० ॥ जैसें सुपन मनोरथ जावै ॥ यह तन छोडी औरहि पावै ॥ तब या तनकी सुद्धि न रहै ॥ वाही तनकौं आपुहि कहै ॥ ७१ ॥ जन्मरु मरण स्मृतिकों होई ॥ आतम जन्म मरणहै सोई ॥ और कछू आतम नहिं मरे ॥ अरु कबहूं नाहीं अवतरे ॥ ७२ ॥ यौं तनमैं मनको अभिमाना ॥ तातें तन उपजतहैं नाना ॥ ते सब आतमके आधारा ॥ तन मन बुद्धि चित्त हंकारा ॥ ७३ ॥ जिन संगति आतमकौं दुःख ॥ तिनहित जे बिन पलनहि सुख ॥ उद्धव सकल देहहें जे ते ॥ सदा सकल विनशतहैं ते ते ॥

॥ ७४ ॥ काल नदी प्रवाह प्रचंड ॥ ताकरि पलक परत नहिं षंड ॥ जैसैं नदी निरंतर वहै ॥ परि देषनकौं त्यौंहीं रहै ॥ ७५ ॥ अरु ज्यौं अर्चि निरंतर जावै ॥ परि दीपकद्युति त्यौंहि रहावै ॥ अरु जैसैं सब वृक्षनिके फल ॥ दीसैं त्यौं परि थिर नाहीं पल ॥ ७६ ॥ त्यौंही सब देहनिकौं जानौ ॥ कालहि ग्रसत निसी दिन मानौ ॥ जद्यपि अवस्था जातीलेषै ॥ बालकुमार जुवादिक देषै ॥ ७७ ॥ परितोहूं पुरष नहिं जानै ॥ में वह ईहौंयौं करि मानै ॥ यह आतम सो सदा अजन्म ॥ देह संगते पावे जन्म ॥ ७८ ॥ अरु त्यौं अमर निरंतर जानौं ॥ देह संग मरतोसो मानौ ॥ जैसैं अग्नि दारुके संग ॥ सदा लहे उतपति अरु भंग ॥ ७९ ॥ ज्यौं लगि तनकी संगति रहै ॥ त्यौंलगि आतम अतिदुष सहै ॥ गर्भ प्रवेस वद्धि अवतार ॥ बाल अवस्था तथा कुमार ॥ ८० ॥ जौवन मध्य जरा अरु मरना ॥ नवहि अवस्था देह अवरना ॥ आतम एक रूप सबहिनमैं ॥ कबहूं नहीं लिपे तिन तिनमैं ॥ ८१ ॥ एसें जानि मुक्ति तब होई ॥ मेरी सरणागत जे कोई ॥ अपनो दादौ पिता विचारे ॥ तिनकौ मरणौ उरमैं धारे ॥ ८२ ॥ भाई ज्यौं अन्नमें अनुरक्त ॥ त्यौंहीं तेहू ते आशक्त ॥ तेतो प्रगट कालवश भये ॥ परवश भए छोडि सबगये ॥ ८३ ॥ मेरी यौं ह्वैहै गति एसी ॥ भई बाप दादाकी जैसी ॥ अरु मेरे अब बालक जैसैं ॥ हमहूं हुते पिताके तैसैं ॥ ८४ ॥ सकल अवस्था सो मम गई ॥ यहतो प्रगट औरही भई ॥ याही विधि जैसैं सब देह ॥ तैसें छुटै पुत्र धनगेह ॥ ८५ ॥ यौं उरमैं बहुभांति विचारै ॥ अपनें बंधन सकल निवारै ॥ देहादिक सब संगति तजै ॥ सदा निरंतर मोकौं भजै ॥ ८६ ॥ बीज जन्म पाकेतें अंत ॥ खेती खेतमांहि वरतंत ॥ खेती करण हारसो न्यारा ॥ यौं तन न्यारो करै

विचारा ॥ ८७ ॥ कर्मबीज विस्तारे नाहीं ॥ दग्धकरे जेही तन मांही ॥ तिनतें न्यारी आपुहि
जाने ॥ संग करेतें सुखःदुख माने ॥ ८८ ॥ तातें तनकौ संग निवारे ॥ याविधि आपु आपुकौं
तारे ॥ जो जन न्यारो आपुन जाने ॥ तन सुख हेत कर्म बहु ठाने ॥ ८९ ॥ तिनतें नाना देह
नि पावे ॥ पुनि पुनि जन्मि जन्मि मरि जावे ॥ सातिकतें सुरके ऋषि होई ॥ राजस नरके
दानव सोई ॥ ९० ॥ तामस पस्वादिकके भूत ॥ याविधि त्रिगुण जगत अदभूत ॥ जद्यपि
आतम सदा अनीह ॥ कबहूं कछू न करे सनेह ॥ ९१ ॥ परित न करते करता होई ॥ संग
दोष बंधतहे सोई ॥ जेसै नाचै गावै कोई ॥ तिनकौ दूजो दृष्टा होई ॥ ९२ ॥ त्यौं त्यौं आपहु
बैठे करैं ॥ तान ताल रागहि उरधरै ॥ त्यौं माया गुण कर्मनि ठानै ॥ आतम करता आपुहि
मानैं ॥ ९३ ॥ तिनहीं कर्मनि बंधे आपू ॥ जो कछू करे होइसो पापू ॥ तिनकौं जानि तजै
नहिं जोलैं ॥ जनम मरण दुखमिटे न तोलैं ॥ ९४ ॥ जलप्रवाह ढिग ठाढैं कोई ॥ तब
वृक्षनि देखे चल सोई ॥ नयन भ्रमत ज्यौं कोई देखे ॥ तब सब भ्रमती धरती लेखे ॥ ९५ ॥
तेसैं यह आतम थिर जानौ ॥ और सकल चंचलकरि मानौ ॥ निश्चल मन करि देखे जबहीं ॥
निश्चल ब्रह्मरूपहें तबहीं ॥ ९७ ॥ जेसें स्वप्न मनोरथ मृषा ॥ यौं सब जगत विषय
सुख तृषा ॥ परि जद्यपि जग सत्य न कोई ॥ तोहूं कदे निवृत न होई ॥ ९७ ॥ जैसैं
सुपन सत्य कछु नाहीं ॥ परि जोलेंहे निद्रा मांही ॥ त्यौंलगि सकल सत्यही जाने ॥ सुखदुख
पावे उद्यम ठानै ॥ ९८ ॥ त्यौं अज्ञान नींदबस जोलैं ॥ जनममरण भव मिटे न तोलैं ॥
तातें उद्धव सबभ्रम जानौ ॥ महा अनर्थ रूप करि मानौ ॥ ९९ ॥ विषयनिकौ उद्यम

छटिकावौ ॥ अरुजैहैं त सकल मिटावौ ॥ ज्यौंलगि आपुहि समुझै नाहीं ॥ त्यौंलगि हैं नाना भय मांहीं ॥ १०० ॥ अरु आपुहि समुझै नहिं तोलौं ॥ मम आधिन होई जोलौं ॥ मम आधीन निरंतर रहै ॥ जग उपहास सीस सब सहै ॥ १ ॥ केई एक करे अपमाना ॥ केई गहि बांधै अज्ञाना ॥ केई मूतें थूतें तनमें ॥ डारैं धूरि भोषके अनमें ॥ २ ॥ एकै डहिकै मूढ डिगावैं ॥ एकै निंदैं चोट लगावैं ॥ एसैं बहुविधि दुख उपजावैं ॥ बहुविधि भयके बैन सुनावैं ॥ ३ ॥ परि जो अपनो श्रेय बिचारै ॥ सो एको मनमैं नहिं धारै ॥ बहु कष्टनितैं मन न डिगावै ॥ सो भव तजि मम चर्णनि आवै ॥ ४ ॥मेरो पंथ खडगकी धारा ॥ जो न डिगे सो उतरे पारा ॥ हरिके बैन निदुष्कर जानी ॥ उद्धव प्रश्णकरि भय मानी ॥ ५ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ प्रभु तुम एसें बैन सुनायै ॥ ते मेरे मन दुष्कर आयै ॥ जो असाथ बिन काज धिकावै ॥ तातैं सहै कोंन विधि जावै ॥ ६ ॥ मेरे हृदे ज्ञान ठहरावौ ॥ सहन उपाइ मोहि समुझावौ ॥ जे सहनो उत्तम करि जानैं ॥ अरु त्यौं औराने पाम बखानैं ॥ ७ ॥ परि ते आइ परें नहिं सहे ॥ अंत प्रकृतिके सब ह्वै रहे ॥ केवल जे तुमचर्ण अधारा ॥ तिनमें कोई नहीं विकारा ॥ ८ ॥ ते नित निश्चल सीतलरूप ॥ नित आनंदित परम अनूप ॥ तिनकौं हृदे लिपे कछु नाहिं ॥ सदाबसे तव चर्णनि मांहीं ॥ ९ ॥ औरे सकल प्रकृति आधीन ॥ सदा बिकारनि आगे दीन ॥ तातें तुमहीं करुणा करौ ॥ ज्ञानादिक मम हृदये धरौ ॥ ११० ॥
१९ दोहा ॥ एसीकीनी प्रश्ण जब, उद्धव परमसुजान ॥ भाख्यौ सहन उपाय तब,

भवभंजक भगवान ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्ध-
वसंवादे भाषायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा ॥ तिरस्कार मन सहनता, संयम बुद्धिप्रकार ॥ कही ध्याय तेवीशमें, भिक्षू गीत मझार ॥ १ ॥ दुष्टवचन शरतें बुरे, भले शत्रुके बान ॥ श्रीधर जो नर सहत है, तामस साधु न आन ॥ २ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥

चौपाई ॥ हेउद्धव ऐसो नहिं कोई ॥ दुर्जन वचन क्षुभित नहिं होई ॥ दुर्जनवचन बान जो सहे ॥ मन क्रम बचन क्षोभ नहिं लहै ॥ १ ॥ जो ऐसो सो साधु कहावे ॥ या बिन साधुपद विन पावे ॥ षेंचि कसी सहने गहिबान ॥ अरुते भेदें मरम स्थान ॥ २ ॥ तौ तिनतें दुष होइन ऐसो ॥ दुष्ट वचन बाननतें जैसो ॥ परिमे तोहि उपाइ सुनाऊं ॥ सहन सीलता उर ठहराऊं ॥ ३ ॥ मोसों सुनो एक इतिहास ॥ जातें होवे न्हदे प्रकास ॥ भिक्षुक एक ज्ञानमय भाषी ॥ ताकी तोहि सुनाऊं साषी ॥ ४ ॥ कियौ असाधुनि बहु अपमाना ॥ तिरस्कार ठान्यो विधि नाना ॥ तब ता भिक्षुक गाथा कही ॥ कुमति आपनी सगरी दही ॥ ५ ॥ सो अब सुनो सुचित है मोसौं ॥ निजजन जानि कहतहौं तोसौं ॥ मालवदेश रहे घर जाको ॥ षेती वणिज जीविका ताको ॥ ६ ॥ क्रोधवंत लोभी अरु कामी ॥ विप्रनके अपजसको नामी ॥ जाके होइ द्रव्य अधिकाई ॥ अरु जो नहिं देही नहिं षाई ॥ ७ ॥ आपनकों पीडा उपजावै ॥ पुत्रादिक षानें नहिं पावै ॥ देवपितर अतिथी नहिं पोषे ॥ बैनहुकों न कदे संतोषे ॥ ८ ॥

सो कदरज एसे द्विज होई ॥ तातैं नीचौ और न कोई ॥ तातैं सो कदरज द्विज भयो ॥ सब जगमें जिन अपजस लयौ ॥ ९ ॥ ज्ञाति अतिथि बंधव निज तनकौं ॥ इनहीं हेत न षरचै धनकौं ॥ पुत्रादि कलपें दुष लहैं ॥ ज्ञाति भृत्य दुर्बैनानि कहैं ॥ १० ॥ पुत्रकलत्ररु कन्या भाई ॥ जहां लगे सब बंध सगाई ॥ ते सब द्रोह निरंतर करैं ॥ ताकौं अप्रिय सब आचरैं ॥११॥ ऐसो देषि पाप अति ताकौ ॥ जक्ष समान वित्तहै जाकौ ॥ धर्म काम दोनौ करि हीन ॥ दुहूं लोकके सुषतैं छीन ॥ १२ ॥ जिन हित पंचजज्ञ नित करैं ॥ सकल गृहस्थ दंडकौं भरैं ॥ तिन तब कीयौ देवनि कोप ॥ तातैं भयो विप्रधनलोप ॥ १३ ॥ कछू द्रव्य ज्ञातिनि हरलयौ ॥ चोरी भएहुतैं कछु गयौ ॥ कछू अग्नि लागतें जर्‌यौ ॥ कछु धरणी मांहीं बीसर्‌यौ ॥ १४ ॥ कछू राज विग्रहतें गयौ ॥ यौं बहुभांति क्षीन सब भयौ ॥ जब ताकौ धन सब हरिलियौ ॥ तिरस्कार तब सबहि न कियौ ॥ १५ ॥ बहुत कष्टकरि धन उपजायौ ॥ सो नहिं दियौ न आपु न षायौ ॥ तातैं उपजी चिंताचित्त ॥ निशिदिन बस्यौ ह्रदेमें वित्त ॥ १६ ॥ होवै तप्त षेदकौं पावै ॥ अस्रू कंठ बहुत विधि ध्यावै ॥ ऐसी विधि उपज्यौ वैराग ॥ जातैं सकल दुखनिकौ त्याग ॥ १७ ॥ तबसो विप्रवचन उचारै ॥ बहुत भांति आपुहि धिकारै ॥ अहो वृथामें कष्ट उपायौ ॥ आप आपकौं दुख उपजायौ ॥ १८ ॥ बहुतैं श्रम उपजायौ द्रव्य ॥ सुपन समान भयो सो सर्व ॥ नामें षरचौ नामें षायौ ॥ नामें एकहु अंग लगायौ ॥ १९ ॥ द्रव्य कदरजको है कछु जे तो ॥ एकहु अर्थ न आयौ ते तो ॥ ना यह लोक नहीं परलोक ॥ केवल दुःखबढै भय सोक ॥ २० ॥ बहुत कष्ट सहि इहां उपायौ ॥ पुनि परलोक नरकयैं जायौ ॥ परम जस-

स्विनको जस सुद्ध ॥ अरु जे पंडित ज्ञानप्रबुद्ध ॥ २१ ॥ सकल गुणिनके हैं गुण जे ते ॥ लोभ लेशतें नासें ते ते ॥ जेसें रूपवंत अति कोई ॥ केहू अंगहीन नहिं होई ॥ २२ ॥ संत कुष्टको छटिको एक ॥ मेटे गुण अरु रूप अनेक ॥ यों थोरेहूं होवे लोभ ॥ मेटे सकल रूप गुणसोभ ॥ २३ ॥ जबते धनको साधन करे ॥ वृद्धिहेत उद्यम विस्तरे ॥ तब ते त्रास शोक भय लहे ॥ चिंत्ता अग्नि निरंतर दहे ॥ २४ ॥ सिद्ध भये अरु रक्षित भोग ॥ नाश लगे नहिं सुख संजोग ॥ चोरी हिंसा मिथ्या दंभ ॥ काम क्रोधविशमर्णा थंभ ॥ २५ ॥ वैररु गर्भस परधा भेद ॥ अप्रतीति चिंता भय खेद ॥ ए पंद्रह जब होइ अनर्थ ॥ तब तिनहूतें होवे अर्थ ॥ २३ ॥ तातें परम अनर्थ कहावे ॥ भलोचहे सो दूरि बहावै ॥ अर्थनाम सुनि भूले लोक ॥ बिन बिचार पावैं भयसोक ॥ २७ ॥ पुत्रकलत्र बंधु अरु भाई ॥ मातपिता हित सजन सहाई ॥ द्रव्यहेत सबकरें विरुद्ध ॥ आपु आपुमें ठानें जुद्ध ॥२८॥ द्रव्य काज अतिक्रोधहि करें ॥ तिनकौं मारें आपुनि मरैं ॥ धनहित प्रीय प्राण छटिकावैं ॥ आपुहि मूढ नरकमैं जावैं ॥ २९ ॥ जाकों देव बहुत विधि ध्यावैं ॥ परि ऐसो नरदेह न पावैं ॥ सो नर तन्न तामें द्विजदेह ॥ करुणामय हरिजीको गेह ॥ ३० ॥ ताकौं पाइ अर्थ नहिं साधौ ॥ सब तजि हरिकौं नहिं आराधै ॥ महा अनर्थ अर्थकौं गहे ॥ सो भवसिंधु आपुतें वहै ॥ ३१ ॥ ताते दूजो नहिं मतिमंद ॥ परै दुःखमैं तजि आनंद ॥ देवपितर ऋषि भूत सहाई ॥ पुत्रकलत्र आपुहित भाई ॥ ३२ ॥ धनहि पाइ जो इनहि न पोषै ॥ औरनकों नाहिं संतोषै ॥ सो सब त्यागि नरकमें जावै ॥ तहां मूढ नानादुख पावै ॥ ३३ ॥ सो तन धनमें ब्रथा गमायौ ॥ भवदुषतें नहिं आप बचायौं ॥ जाहि पाइ बुधि ऐसी करे ॥ जातें बहुरि न जनमें मरे ॥ ३४ ॥

सो नर तनमैं व्रथा गमायो ॥ छांड्यौ अर्थ अनर्थ उपायौ ॥ वय बल आयु सकल मम गए ॥
नषशिख वृद्ध अंग सब भए ॥ ३५ ॥ अबमें अर्थ कोंनाविधि साधौं ॥ दुराराध्य हरिकौं
आराधौं ॥ भईजे अनर्थ सब जानै ॥ तेऊ क्यौं आरंभनि ठानैं ॥ ३६ ॥ छोडे अर्थ अनर्थ उपावैं ॥
क्यौं सब आपु आपु दुखपावै ॥ परिए कोई नहिं स्वतंत्र ॥ सकल देखियत हैं परतंत्र ॥ ३७ ॥
ते जाकी मायाकरि मोहे ॥ नट बाजीके सम सब सोहे ॥ भईसो प्रभुबडो वरिष्ठ ॥ ब्रह्माआदि
सकलको इष्ट ॥ ३८ ॥ जे धन अरु जे धनके दाता ॥ जे कादम अरु कामविख्याता ॥ अरु बहु
धर्म कर्महें जे ते ॥ मातपिता सुषदाई ते ते ॥ ३९ ॥ कहो कहांतें हित आचरै ॥ मृत्यु ग्रस्ततें
नहिं परिहरैं ॥ कालरूप शत्रुहै जाकौं ॥ कहौ कहाको सुषहै ताकौं ॥ ४० ॥ परिजे दीनबंधु भगवान ॥
करुणासागर परमनिधान ॥ तिनहीं मोकों करुणाकरी ॥ जातें मम उर ऐसी धरी ॥ ४१ ॥
भवसागरतें तारै जाकौं ॥ दे वैराग नावही ताकौं ॥ तातें मोहि दियो वैराग ॥ मेरे प्रगटे
पूरण भाग ॥ ४२ ॥ अब जो आयु होई कछु मेरो ॥ ताकरि भजन करौं हरिकेरौ ॥ यातनके
गुण सकल निवारौं ॥ मनतैं सकल कामना टारौ ॥ ४३ ॥ सकल साधु अनुमोदन करैं ॥
तथा अस्तुयौं कहि उच्चरैं ॥ जदपि आयु थोरोहै मेरौ ॥ तोहूं हरिको पद अतिनेरौ ॥ ४४ ॥
नृपटांगज बहि हरिध्यायौं ॥ एक मुहूरतमें हरिपायो ॥ तातें प्रभुसम कोई नाहीं ॥ जनकौं
प्रगट होत फल मांहीं ॥ ४५ ॥ मन बच क्रम अब ताकौं भजौं ॥ दूजी सकल कामना तजौं ॥
ऐसो निश्चय मनमैं धर्‍यौं ॥ भिक्षुक भयो सकल परिहर्‍यौं ॥ ४६ ॥ सीतल हृदय त्रषा सब
त्यागी ॥ निश्चल भयो विप्र बडभागी ॥ अहंकार ममता कछु नाहीं ॥ एकाकी बिचरै भुव

मांहीं ॥ ४७ ॥ इंद्रिय प्राण वचन मन गह्यौ ॥ अंतर बाहिर संगहि दह्यौ ॥ आपुहि काहू कौं
न लखावे ॥ भिक्षाहेत ग्रहनमैं आवे ॥ ४८ ॥ संसकार नहिं तनको जाकौं ॥ जीरण वस्त्र दूक
तन ताकौं ॥ भिक्षुक वृद्धविप्रकों जोवैं ॥ तब बहु दुष्ट घातकी होवैं ॥ ४९ ॥ केई ताकौं दंड
छुडावैं ॥ केई पात्र षोंशले जावैं ॥ केई लहैं कमंडलु करतैं ॥ केई निकशन देइ न घरतें ॥ ५० ॥
केई धूलि भीखमैं डारैं ॥ केई मूढ क्रोधकरि मारैं ॥ केई आसनकौं ले भागैं ॥ उरधहिकर केई
पग लागैं ॥ ५१ ॥ केई कंथा कौ परिहरैं ॥ मारु मारु बानी उच्चरैं ॥ केई खोशलेइ जपमाला ॥
केइ वस्त्र जाहिले बाला ॥ ५२ ॥ केई आनि आनि करि देवैं ॥ केई खोंसि खोंसि पुनि लेवैं ॥ केई
भीख अन्नले जाहीं ॥ भोजन करणें पावे नाहीं ॥ ५३ ॥ केई तनमें थूकैं मूतैं ॥ केई निंदाकरें
बहुतें ॥ केई कानानि लागि पुकारैं ॥ केई सीस धूलि जल डारैं ॥ ५४ ॥ केई मौन छुडाइ
बुलावैं ॥ केई बोलत मौन गहावैं ॥ केई ताहि बांधि करि राखैं ॥ जान न पावे केई भाखैं
॥ ५५ ॥ केई करैं बहुत अपमान ॥ निंदैं बहुविधि मूढ अजान ॥ यहहै चोर जान नहिं पावे ॥
दिन देखे निशिचोरी आवे ॥ ५६ ॥ याकौं छीन भयो है वित्त ॥ तातैं यहहै व्याकुल चित्त ॥
सकल कुटुंब याहि परिहर्‍यौ ॥ जीवन काज भेष यह धर्‍यौ ॥ ५७ ॥ देखो यह केसो है मोटो ॥
महाप्रबल अंतरको खोटो ॥ देखो हम पचिहारे केते ॥ परियाके भेदैं नहिं ते ते ॥ ५८ ॥ धीर
जवंत अडिग यह एसौ ॥ पवन प्रचंड मेरु गिरि जेसो ॥ याके जानि न मह कछु कह्यौ ॥ बक
ज्यौं ध्यान मौन गहिरह्यौ ॥ ५९ ॥ योंकरि क्रोध बंधले डारैं ॥ काठ मांहिदे उपर मारैं ॥ हांसी
सहित बीनती करैं ॥ हिततें विष बैननि उच्चरैं ॥ ६० ॥ एभौतिक दुख भाषे जेसें ॥ दैवात्मक ॥७५॥

पुनि पावैं तैसें ॥ सीत उष्ण वरषादिक दैविक ॥ जरा रोग आदिक जे दैहिक ॥ ६१ ॥ ऐसें बहुविधि पावे दुःख ॥ कदे न आवे तिनकों सुख ॥ परिसो कदे न मनमैं आनै ॥ अपने करे कर्म सब जानै ॥ ६२ ॥ तब तिन भाषी गाथा एक ॥ हृदये धार्यौ परम विवेक ॥ भिक्षुक कहे वचन तब जेई ॥ मैं तोसों भाषतहौं तेई ॥ ६३ ॥ ॥भिक्षुक उवाच॥ ॥चौपाई॥सुखदुखदा-यक लोग न एते ॥ अरु नहिं देह नहीं सुर जेते ॥ नाहीं ग्रह नहिं कर्म न काल ॥ ए समस्त हें मनके ख्याल ॥ ६४ ॥ जात चक्रमें मनहि फिरावै ॥ जीव महादुख मन कर पावै ॥ मनहीं करै विषयनिकौ भोग ॥ तातैं होई कर्म संयोग ॥ ६५ ॥ होवे सत रज तम विस्तार ॥ जातें जोनी विविध प्रकार ॥ तातैं दुःख निरंतर लहै ॥ देह जोगतें निसदिन दहै ॥ ६६ ॥ तातैं दुख दायक मन एक ॥ संत कहैं यह परम विवेक ॥ आप आतमा सदा अनीह ॥ परिसो मनकरि करे समीह ॥ ६७ ॥ मनसों बंध अविद्या माहीं ॥ जातें बंधन जाने नाहीं ॥ विष समान विषय निकौं खावै ॥ ताके संग जीव दुष पावै ॥ ६८ ॥ यहहै जीव ब्रह्मको अंग ॥ याकों संसृति मनके संग ॥ मनकरि रहित ब्रह्म सुखरासी ॥ सदा एक रस परमप्रकासी ॥ ६९ ॥ तातें बंधन मनहीं करैं ॥ संग आतमा जनमैं मरैं ॥ जब मन रहित जीव यह होई ॥ तब शिव जीव भेद नहिं कोई ॥ ७० ॥ तातैं जिन अपनो मन गह्यौ ॥ ताही कछु करणो नहिं रह्यौ ॥ अरु जो मन वशकीनो नाहीं ॥ तो श्रम सकल वृथाहीं जाहीं ॥ ७१ ॥ सुवर्णादि देवे बहुदाना ॥ एकादशि आदी व्रत नाना ॥ अपने अपनें धर्मनि करै ॥ सम दम जप नियमनि विस्तरै ॥ ७२ ॥ विद्या वेद पढे उच्चरै ॥ औरें सकल धर्म विस्तरै ॥ परि जो नाहिं वश मन एक ॥ तो मिथ्या आचरण

अनेक ॥ ७३ ॥ मनवस काज कहे सब ते ते ॥ विधि आचरण वेदमें जे ते ॥ मननिग्रह सो उत्तम ज्ञाना ॥ मननिग्रह बिन सब अज्ञाना ॥ ७४ ॥ तातें मन जो निग्रह करे ॥ सो विधि काहेकौं बिस्तेरै ॥ तातें विधिहूतें कछु नाहीं ॥ सब विधिंहै नमनिग्रह माहीं ॥ ७५ ॥ अरु जो बस नाहीं मनएक ॥ तो विधि कीनें वृथा अनेक ॥ सब इनको फल मनबस करणो ॥ मनवश काज सकल आचरणो ॥ ७६ ॥ मनकौं बसहि करे जो कोई ॥ इंद्रिय गण आपें वसहोई ॥ मन वश विन इंद्रिय वशनाहीं ॥ करि करि जतन बहुत मरिजाहीं ॥ ७७ ॥ मन वश भए सकल बसदेवा ॥ तीनोभवत करेंता सेवा ॥ सकल बलिनतें मन बळवंत ॥ मारिकरे सबहिनकौं अंत ॥ ७८ ॥ मनकौं कोई जीति न शकै ॥ बहुत उपाय करि करि थकै ॥ ऐसें मनकौं जीतै कोई ॥ सबहिन माहि प्रबलहै सोई ॥ ७९ ॥ सो दुर्जय मन बस नाहि करैं ॥ बाहिर जुद्धादिक बिस्तरैं ॥ वैरी मित्र बहुत बिधि ठानैं ॥ अनहित अरु हित तिनतैं जानैं ॥ ८० ॥ ते अतिमूढ सुषी नहिं होवैं ॥ मनजीते बिन जुग जुग रोवैं ॥ दुःखरूप जड मिथ्या तनकौं ॥ आपमानि करि बांध्यौ मनकौं ॥ ८१ ॥ तब बहु किये देह संबंधी ॥ तिनसौं मूरख ममता बंधी ॥ यहमें ए समस्तहैं मेरे ॥ मित्र शत्रु ठानै बहुतेरे ॥ ८२ ॥ तातै मूढ महादुष पावै ॥ उपजि उपजि पुनि मरि मरि जावै ॥ तातैं दुषकौं मनहीं कारण ॥ आतमकौं भव जलमें डारण ॥८३॥ अरुजो सुख दुख दाता एते ॥ मोकौं दुख देतेंहै ते ते ॥ ते सब सुखदुख मोकौं नाहीं ॥ देह एक सब आपुन मांहीं ॥८४॥ ते सुखदुख देहहि सब पावै ॥ आतमके कछु निकटन आवै ॥ अरु जद्यपि मनके संजोग ॥ करे जीव ए सुखदुख भोग ॥ ८५ ॥ ताहूमें दुख देवौ काकौ ॥ रूप सकल मम देखौं जाकौ ॥

आप आपकौं क्यौं दुखदीजै ॥ अपनौ अहित अप क्यौं कीजैं ॥ ८६ ॥ या तननें मेंही दुख
पावौं ॥ अरु तिनहींमें क्यौं उपजावौ ॥ दंतानि भूलि जीभ काटीजैं ॥ तो फिरि तिनहिं कहा
दुष दीजैं ॥ ८७ ॥ दंतनि अरु जिभहीं दुख देई ॥ सोतो सकल आपकों लेई ॥ इंद्रिय अधिपति
दैवत जे ते ॥ जो दुखदानि होइ सब ते ते ॥ ८८ ॥ तोहूं आपको पक्यौं कीजैं ॥ पर उपाधि
क्यौं सिरपर लीजैं ॥ करदीजैं मुख मांहि असनसौं ॥ तो मुख काटे करहि दसनसौं ॥ ८९ ॥
तो पावक अरु वासव जानैं ॥ राग दोष भावे त्यौ ठानैं ॥ यौं सब इंद्रियके जो देवा ॥ करैं
आपमें दुख अरु सेवा ॥ ९० ॥ ते ते सब जानें त्यौं करैं ॥ ज्ञानी अपनैं मन नहिं धरैं ॥ अरु
जो सुखदुख दाता आप ॥ दुजेकौं कछु नाहिंहैं पाप ॥ ९१ ॥ तो यइ सब आपनौ स्वभाव ॥
अरु किनको आनियें अभाव ॥ अरु आतममें सुखदुख नाहीं ॥ उपजैं ज्ञान सकल मिट जाहीं
॥ ९२ ॥ आप भूलि सुखदुख करिलीनै ॥ सब मिटि जाइ आपकौं चीनै ॥ तातैं दोष कौनकौ
धरियैं ॥ जो अपनो मनबश नहिं करियैं ॥ ९३ ॥ अरु जो ग्रह सुखदुखके दाता ॥ लोकवेद
कहियैं विष्याता ॥ तो आपन क्यौं क्रोधहि कीजैं ॥ परको दुःख आप क्यौं लीजैं ॥ ९४ ॥
ग्रह आकाश माहिहें जे ते ॥ द्वाद्श रासि बसें सब ते ते ॥ रागद्धेष आपनमें करैं ॥ तिनकौं
सुखदुख नितहीं परैं ॥ ९५ ॥ जां जां रासि जन्मजे पावैं ॥ तिनकी संगाति सुखदुख आवैं ॥
तातैं आतम सदा अजनमा ॥ वार वार देहानिकौं जनमा ॥ ९६ ॥ तातैं सुखदुख तनहीं पावै ॥
निकट आतमाके नहिं आवै ॥ अरु जद्यपि संगत दुषपरै ॥ आपु क्रोध तो कांसौं करै ॥
॥ ९७ ॥ करणहार ते ग्रहही जानैं ॥ राग दोष भावे त्यौ ठानैं ॥ अरु दुषदानि होइ जो कर्म ॥

ते तो सकल आपही भर्म ॥ ९८ ॥ यह जडदेह कर्मता माहीं ॥ आतम निकट देहहीं नाहीं ॥
आतम चेतन ज्ञान स्वरूप ॥ परे सकलतें परम अनूप ॥ ९९ ॥ तातैं क्रोध कौनंको करौं ॥
काको दोष हृदेमें धरौं ॥ अरु जो दुःख कालतें कहियैं ॥ तो आपनमें कदेन लहियैं ॥ १०० ॥
तनहीं कालहुतैं दुषपावे ॥ ते आतमके निकट न आवे ॥ काल आतमा ब्रह्मस्वरूप ॥ देह
विलक्षण सकल अनूप ॥ १०१ ॥ तातैं कालहुतैं दुष नाहीं ॥ कालभयानक देहहि माहीं ॥
ज्यौं ले अग्नि अग्निमें डारे ॥ सो वह अग्नि न अग्निहि जारे ॥ १०२ ॥ अरु जौंहि मही
कौकन लीजें ॥ ले बहुतें हेमाहिमे दीजें ॥ ताहिम अंस सीतभय नाहीं ॥ जद्यपि रहे स दाता
माहीं ॥ १०३ ॥ यौंहि एक आतमा अकाल ॥ सुखदुखादि देहनिके ष्याल ॥ आतम
सबतें सदा अतीत ॥ इच्छारहित अनीह अभीत ॥ १०४ ॥ अरु आतमा परेतें परै ॥ द्वंद्व
जहां लौं ते सब उरै ॥ कोई आतमकौं नहिं जानै ॥ सुखदुख कौन कौनकौं ठानै ॥ १०५ ॥
सुष अरु दुःष जहांलौं जे ते ॥ एक प्रकृतीके सब ते ते ॥ सो प्रकृति आप जडरूप ॥ चेतन
आतम ब्रह्मस्वरूप ॥ १०६ ॥ केवल मानिलियौ संसार ॥ सुष दुष तन मन सकल असार ॥
मोह निशातें जागे जे ते ॥ निरभय भए सकलही ते ते ॥ १०७ ॥ तातैं अबमें भय नहिं आनौं ॥
आपहि परै सकलतैं जानौं ॥ हरिचरणानि की सेवाकरौं ॥ एसी विधि भवसागर तरौं ॥ १०८ ॥
जेइ जे आए हरिशरण ॥ तिनहीं तिन पाए हरिचरण ॥ तातैं मैं हरिचरणानि भजौं ॥ मन
क्रम वचन आन सब तजौं ॥ १०९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ उद्धव यौं द्विभजयौ विरक्त ॥ तन-
हूंमें न रह्यौ अनुरक्त ॥ बहुत असाधुनि बहुत डिगायौ ॥ परिसो कछू न मनमें ल्यौ ॥ ११० ॥

ए भाष अष्टा दश श्लोक ॥ करि विचार मेट्यौ भयशोक ॥ तातैं उद्धव सुषदुष दायक ॥ आत-
मकों कोई नहिं लायक ॥ १११ ॥ सुष दुष दाता नाहीं कोई ॥ जो तो कहूं द्वैत कछु होई ॥
सुषदुष भ्रमतें जानें सकल ॥ आतम एक अजन्मा अकल ॥ ११२ ॥ भ्रम छूटे दूजाको नाहीं ॥
मेरो रूपमिले मो मांहीं ॥ जब सुषदुष मिथ्याकरि मानै ॥ मान अमान हृदे नहिं आनै ॥११३॥
धीरज धरि ममचरणनि भजै ॥ देहादिककी आसा तजै ॥ तब भवसागरकौं तरि जावै ॥
मेरौ निजानंद पद पावै ॥ ११४ ॥ तातैं उद्धव मन वच कर्म ॥ सकल द्वैतकौं जानौ भर्म ॥
सबतें मनकौ निग्रह करौ ॥ निश्चलकरि ममचरणनि धरौ ॥ ११५ ॥ याहीकौं कहियतुहे जोग ॥
जाकरि होवे मम संजोग ॥ अरु जो या गाथाकौं धारै ॥ सुने सुनावै सदा विचारै ॥ ११६ ॥
तिनके निकट द्वंद्व नहिं आवै ॥ अंतकाल ममचरणनि पावैं ॥ तातैं याकौ सदा विचारौ ॥
मेरो बल अंतरगत धारौ ॥११७॥ दोहा ॥ यह उद्धव तोसौं कह्यो, मन संजम दृढ
ज्ञान ॥ अब भाषतहौ सांष्यकौ, सुनत मिटै ज्यौं आन ॥ ११८ ॥
॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांत्रयो
विंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
दोहा ॥ ॥ सांष्य योग करिकैं कह्यौ, मनको मोह सुदहन ॥ चिंतातैं सब
योनिमैं, आतम आवा गवन ॥ १ ॥ भेदभाव जिनके हृदय, श्रीधर भेद
मिटाय ॥ कृष्णकह्यौ, उद्धव प्रती चौबीशैं अध्याय ॥२॥ श्रीभगवानुवाच ॥

चौपाई ॥ उद्धव तो सौं सांष्यहि कहौं ॥ द्वैत भर्म भ्रमही विन दहौं ॥ जाके सुनतहि छूटे द्वैत ॥ देषै एक ब्रह्म अद्वैत ॥ १ ॥ प्रथमहि महापुरुष जे भये ॥ ते यह सांष्य प्रगट करि गये ॥ मुक्ति सांष्य जानतहीं होई ॥ सांष्य विना नहिं छूटे कोई ॥ २ ॥ सोई सांष्य कहौं में तोसौं ॥ निश्चल मन ह्वै सुनियो मोसौं ॥ उद्धव प्रथमहु तोमें एक ॥ मोबिन कछूनहु तौ अनेक ॥ ३ ॥ तबमें प्रकृति आपतें करी ॥ जड चेतन द्वे विध विस्तरी ॥ तिन दोनोंतें उपज्यौ पुत्र ॥ महत्तत्त्व कहियतुहे सूत्र ॥ ॥ ४ ॥ एक प्रकृतितें गुण त्रय कीने ॥ लक्षण भिन्न तिहूंकौं दीने ॥ सूत्रहुतें त्रय बिधहंकार ॥ भरमावनकौ बडो विकार ॥ ५ ॥ पंचभूत जे पृथिवी आदी ॥ पंचो तन्मात्रा शब्दादी ॥ तामस अहंकारतें एते ॥ राजसतें इंद्रिय सब ते ते ॥ ६ ॥ सातिकतें मन अरु सबदेवा ॥ जिनकौं पाइ भए बहुभेवा ॥ तब सबहिनमें प्रेरि मिलायौ ॥ तिन सबहिन मिलि अंड उपायौ ॥ ७ ॥ अंड सलिलमांही थिर कऱ्यो ॥ तामें में निजअंशही धऱ्यौ ॥ आदिपुरुष सो मेरो रूप ॥ त्रिगुण नियंता ज्ञान स्वरूप ॥ ८ ॥ तास नाभतें उपज्यो पद्म ॥ तामें सकल भुवनको सद्म ॥ पद्महुतें तब ब्रह्मा भयो ॥ वरले मोंसों जग निमयो ॥ ९ ॥ राजस अधिपति भयौ विरंच ॥ तातें प्रगट्यौ सकल प्रपंच ॥ लोकपाल लोकनसौं सारे ॥ तीनोलोक त्रिविध विस्तारे ॥ १० ॥ स्वर्गलोक देवनिकौं दियौ ॥ अंतरिक्ष भूतनि ग्रह कियौ ॥ भूमिलोकमें मानव राषे ॥ असुर अहिनकौं नीचे भाषे ॥ ११ ॥ मै हरलोक जन तप सतलोक ॥ चाऱ्यौं में सिद्धनके ओक ॥ जे त्रिगुण कर्मनिकौं करै ॥ ते तीनो लोकनिमें फिरै ॥ १२ ॥ तप अरु जोग तथा संन्यास ॥ इनतें तिन चारौंमें वास ॥ भक्तिहुतें जावै वैकुंठ ॥ जो सबहिन करि सदा अकुंठ ॥ १३ ॥

प्रबल कालरूपहै मेरा ॥ जगतहि सकल भक्ष्य तिनकेरो ॥ सत्यलोककहुं मैं जो जावै ॥ काल तहांऊ ताकौं खावै ॥ १४ ॥ कबहु जाइ कष्टकरि ऊंचै ॥ कबहूं काल ढहावत नीचै ॥ ऐसी विधि सब भरमत रहैं ॥ जन्में मरें बहुत दुषसहैं ॥ १५ ॥ उत्तम मध्यम नीचे जे ते ॥ छोटे बडे बहुत विधि के ते ॥ जे कछु जहां लगें आकार ॥ ते सब प्रकृति पुरुष विस्तार ॥ १६ ॥ प्रकृति पुरुष विन और न कोई ॥ इंद्रिय मन गोचर है जोई ॥ प्रथमहि निराकारमें एक ॥ तातैं भौ आकार अनेक ॥ १७ ॥ अरु पुनिमें हिरहोंहीं अंत ॥ तातें अबहूं मेरे वरतंत ॥ जाकी आदि अंतहै जोई ॥ ताके मध्यहुमें पुनि सोई ॥ १८ ॥ ज्यौं माटी ते बहु घटभये ॥ अंत फूटि माटी मिलि गये ॥ माटि आदि माटीहै अंत ॥ त्यों माटी मय घव वरतंत ॥ १९ ॥ ज्यौं काचनकै बहु आभरना ॥ आदि अंत एकही सुवरना ॥ त्योंही मध्य और कछु नाहीं ॥ नामरूप मिथ्या हुइ जाहीं ॥ २० ॥ त्यौं जब देषें तजि व्यवहार ॥ तबमेंहीहो सब विस्तार ॥ आदिरु अंत मध्य में एक ॥ मिथ्या नामरु रूप अनेक ॥ २१ ॥ मायातें महत तहंकार ॥ तिनतें होई सकल विस्तार ॥ बहुरो नास सकलको होई ॥ महदादिक निरहैं नहिं कोई ॥ २२ ॥ प्रकृतिमूलयौं पुरुष अधार ॥ अरु जो काल सकल करतार ॥ मेरीशक्ति तनियौं जानौं ॥ मोतें द्वैत कदै मतमानौं ॥ २३ ॥ याविधि चल्यौ जाइ विस्तार ॥ नदीप्रवाह तुल्य संसार ॥ परमातमकी इच्छा जौलौं ॥ वरतें सकल निरंतर तोलौं ॥ २४ ॥ बहुरो प्रलय सकलको होई ॥ सूक्षम थूल रहै नहिं कोई ॥ महाबलिष्ठ शक्ति ममकाल ॥ ताकै सकल जगत यह ख्याल ॥ २५ ॥ काल विनाशे सकल ब्रह्मंड ॥ कितहूं कछून रषे खंड ॥ अनावृष्टि होवै शतवर्ष ॥ तातैं देहनिको

आकर्ष ॥ २६ ॥ छोटे बडैं देहहैं जे ते ॥ लीन अन्नमें होवे ते तें ॥ अन्न भूमिमें होवै लीन ॥ भूमि गंधमिलि होवै छीन ॥ २७ ॥ गंधलीन होवै जल माहीं ॥ जल सूक्ष्म रसमांहि समाहीं ॥ रस तब तेजमाहि मिलिजाई ॥ तेज रूपमें जाइ समाई ॥ २८ ॥ रूप पवन मांही मिलिरहै ॥ पवनहि तब स्पर्श गुणगहै ॥ स्पर्श लीन होई तब गगन ॥ गगन शब्दमें होवे मगन ॥ २९ ॥ शब्दमिलै तामस हंकारा ॥ सो अरु इंद्रिय दश परकारा ॥ ते सबमिलि राजस हंकार ॥ मिलि करि सकलहोई संहार ॥ ३० ॥ अहंकार महत्तत्त्वहि मिलै ॥ प्रकृतितबै महत्तत्त्वहि गलै ॥ देवरु मन सात्विक हंकार ॥ मिलिकरि सकलहोइ संधार ॥ ३१ ॥ प्रकृतिकालमें होवै लीन ॥ कालपुरुष मिलि होवे छीन ॥ पुरुषमिले पुरुषोत्तम मांहीं ॥ पुरुषोत्तम कहुजावै नाहीं ॥ ३२ ॥ भेदाभेद रहित तब एक ॥ नित्यानंद द्वैत वितरेक ॥ चेतन निर्मल ज्ञानस्वरूप ॥ पूरण अक्षय परमअनूप ॥ ३३ ॥ तातैं उद्धव मिथ्या द्वैत ॥ आदिरु अंतमध्य अद्वैत ॥ जल बुदबुद सम सब आकार ॥ उत्तम मध्यम विविध प्रकार ॥ ३४ ॥ एसें सदा विचारे कोई ॥ ताको कौंनभाति भ्रम होई ॥ रवि उद्योतरहै तम कैसें ॥ नदी मध्य दावानल जेसें ॥ ३५ ॥ यहमें भाष्यो सांख्यप्रकार ॥ सकल द्वैत उतपति संहार ॥ जाके ज्ञान न संसेरहै ॥ अहंकार दृढ ग्रंथिहिदहै ॥ ३६ ॥ छोडेरूप अरूप समावै ॥ जातें बहुरिन दुखकौं पावै ॥ तातैं याकौ सदा विचारौ ॥ मोकौं जानि आपकौ तारौ ॥ ३७ ॥ दोहा ॥ उद्धव यह तोकौं कह्यौं, सांख्यज्ञान विचार ॥ अब गुणवृत्तिनको कहौं, भिन्न भिन्न परकार ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादे भाषायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ पचबीशैं अध्यायमैं, निर्गुणता सुविवेक ॥ चितमें वरतै तीनगुण, गुण की वृत्ति अनेक ॥१॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव अब भाषौं गुणवृत्ती ॥ जिनकौं जानैं लहे निवृत्ती ॥ जागुणतें जो लक्षणहोई ॥ भिन्नभिन्न भाषौं सो सोई ॥ १ ॥ सम दम क्षमा विवेक स्वधर्म ॥ लज्जा मान न करै विकर्म ॥ सत्य दया नाहिं भूलै शुद्धी ॥ उत्तम मारगमें थिर बुद्धी ॥ २ ॥ जस अरु सोभा धीरजवंत ॥ परउपकार सदावरतंत ॥ बुद्धी आस्तिक नित निहसंग ॥ संतोषी अरु दान अभंग ॥ ३ ॥ कोमल विनय दीन चतुराई ॥ सीतल हृदय सकल सुषदाई ॥ एसी भांति बहुत संपत्ती ॥ सात्त्विक गुणकी जानो वृत्ती ॥ ४ ॥ आतम इन सबनीतें न्यारा ॥ चेतनकरि वरतावनहारा ॥ भोगशक्ति हृदे बहुकाम ॥ धन अभिलाषा जस अभिराम ॥ ५ ॥ तृष्णा हास गर्व बलवंत ॥ रिपुमित्रादिक भेद अनंत ॥ करि कामना भजे सबदेव ॥ परमारथकौ लहै न भेव ॥ ६ ॥ बहु आरंभनिमैं उत्साह ॥ हृदय कठोर सदा अतिचाह ॥ बहुत वृत्ति राजसकी एसी ॥ ए तुमसौं भाषीमैं जेसी ॥ ७ ॥ हिंसा क्रोध लोभ अधिकाई ॥ जहँ तहँ दीनरु दंड झुठाई ॥ श्रम अरु कलह सोक अरु मोह ॥ निद्रा आलस भय परद्रोह ॥ ८ ॥ निशिदिन चिंता उद्यमहीन ॥ हृदये आशा भइ न छीन ॥ ऐसी बहु तामसकी वृत्ती ॥ जिनतें कदै न लहै निवृत्ती ॥ ९ ॥ उपजैं ममता अरु हंकार ॥ तातें करैं विविधव्यवहार ॥ ते सब मिलित गुणनिकी वृत्ती ॥ जिनतें बाढे बहुत प्रवृत्ती ॥ १० ॥ धर्मरु अर्थ काम अनुरक्ती ॥ श्रद्धा लोभ तथा आसक्ती ॥ धर्म प्रवृत्त परायण जे ते ॥ बहुत भांति

विस्तारे ते ते ॥ ११ ॥ वरतें अपनै अपनै धर्म ॥ प्रिय ग्रहके सुख अरु ग्रहकर्म ॥ ए सब मिलित गुणनिकी वृत्ती ॥ जिनतें बहुविधि होइ प्रवृत्ती ॥ १२ ॥ सम दम आदि जुक्त नर जोई ॥ सात्विक लक्षण कहियैं सोई ॥ राजस कामादिक अधिकार ॥ तामस क्रोधादिक विकार ॥ १३ ॥ जब स्वधर्मसों मो कौं भजै ॥ दूजी सकल कामना तजै ॥ तिया पुरुष भावे सो होई ॥ सात्विक प्रकृति कहीजें सोई ॥ १४ ॥ जब कामना हृदै धरिलेवै ॥ अपनें कर्मनि मोकौं सेवै ॥ यह स्वभाव राजसको कहियैं ॥ मुक्तिहेत कबहूं नहिं गहियैं ॥ १५ ॥ जब हिंसा हृदयमें आनै ॥ तिनकर्मनि ममसेवा ठानै ॥ सो वह तामस प्रकृति कहावै ॥ तातें मम सुष कबहुंन पावै ॥ १६ ॥ सत रज तम तीनौ गुण जेहैं ॥ जीवनिकों बंधन सब तेहैं ॥ ते गुण मेरी आग्या करैं ॥ हातें मोहि भजे ते तरैं ॥ १७ ॥ चितहूंतें ऊपजें ए सकल ॥ इनकौं तजै आतमा अकल ॥ इनकौं छोडि रहै मोमांही ॥ बहुऱ्यो उपजे विनसे नाहीं ॥ १८ ॥ करि साधन रज तम परिहैर ॥ सात्विक गुणकी वृद्धिहि करै ॥ सात्विक सूरजवत परकास ॥ अतिशीतलज्यौं चंद विगास ॥ १९ ॥ सब कल्याण मूल सुषकारी ॥ निश्चल करण सकल दुषहारी ॥ तातें धर्म ज्ञान सुष लहैं ॥ चिंता सोक मोह भयदहै ॥ २० ॥ जब सात्विक तामस नहिं रहै ॥ राजस आइ बसेरा गहै ॥ राजस रूप संग बल भेद ॥ तातें मान कर्म भय षेद ॥२१॥ जब सत रज ए छूटैं दोई ॥ केवल एक तेमागुण होइ ॥ तबहि विवेक नास आवरना ॥ उद्यम रहितरु जडता करना ॥ २२ ॥ तातें सोक मोहको वासा ॥ निद्रा आलस निशिदिन आसा ॥ जबछूटैं इंद्रियकी वृत्ती ॥ हृदये नहिं ईहा उतपत्ती ॥ २३ ॥ चित्त प्रसन्न सकल निहसंग ॥ सो सात्विक मम यहहै अंग ॥ जब

इंद्रिय तन मन अरु बुद्धि ॥ स्थिर नहिं रहे लहै नहिं सुद्धी ॥ २४ ॥ ठानै विविध कमर विस्तार ॥
सो जानौ राजस अधिकार ॥ जब विकार मन बहुविधि गहै ॥ आसाबंध निरंतर रहै ॥ २५ ॥
सोक विषाद चेतनाहीन ॥ सो तामस उद्यम बलछीन ॥ जब उपजै सात्विककौ भाव ॥ तब
सब होवें देव सुभाव ॥ २६ ॥ राजसने असुरनकी वृत्ती ॥ भूतगणनिकी तम उतपत्ती ॥
सात्विकतें जागरणहि होई ॥ राजस पावै सुपना सोई ॥ २७ ॥ तामसहूंतें सुषपति लहै ॥
ब्रह्मरीय निरंतर रहै ॥ सात्विक ऊर्ध्व लोकनी जावै ॥ राजस नर आदिक तन पावै ॥ २८ ॥
तामस नीचै थावर आदी ॥ याविधि भरमें जीव आनदी ॥ सात्विक बुद्धमान जो होई ॥
तामैं मरण लहै नर कोई ॥ २९ ॥ सो देवनिके लोकहि जावै ॥ राजसतें मरि नरतन पावै ॥
तामसतैं मरि नरकनि लहै ॥ तीनौं गुण तजि मोमें रहै ॥ ३० ॥ मेरेहेत कर्म जो करै ॥ तामें
दूजो फल नहिं धरै ॥ सो वह सात्विक कर्म कहावै ॥ तातैं जीव महासुष पावै ॥ ३१ ॥फल
निमित्त मम कर्मानि ठानै ॥ ताकौं राजस कर्म बषानै ॥ हिंसाहेत करे ममकर्म ॥ सो तामसहै
बडो अधर्म ॥ ३२ ॥ भेदरहित वह सात्विक ज्ञान ॥ देहभेद सो राजस जान ॥ बालक मूक
तुल्य जो होई ॥ तामस ज्ञान कहीजैं सोई ॥ ३३ ॥ आतम देहरहित जो एक ॥ सौंहै मेरो
ज्ञानविवेक ॥ होई विरक्त वसे एकंत ॥ सात्विक कहै सो संत ॥ ३४ ॥ ग्रहमें कहिये राजस वास॥
तामस द्युतादिक आवास ॥ थावर चल मम मूरति जहां ॥ निर्गुण वास कहीजैं तहां ॥ ३५ ॥
सात्विक कर्त्ता जो निहसंगी ॥ राजस कर्त्ता जो फलसंगी ॥ विधिकरि रहित तामसी कर्त्ता ॥
आसा लागि कर्म विस्तरता ॥ ३६ ॥ आपहि मेटि रहैं मम शरणा ॥ ताकौं सब निर्गुण आचरणा ॥

सो जन निर्गुण कर्त्ता कहियैं ॥ ताके संग परमद लहियैं ॥ ३७ ॥ जो निहकर्म आतमा
जानै ॥ सकल जतनकी श्रद्धा ठानै ॥ सकल त्यागि निश्चल जो होई ॥ सात्विक श्रद्धा कहियै
॥८१॥ सोई ॥ ३८ ॥ राजस श्रद्धा ठानै कर्म ॥ तामस श्रद्धा करे विकर्म ॥ निर्गुण श्रद्धा मेरी भक्ती ॥
जातें मिटे सकल आशक्ती ॥ ३९ ॥ पंथ पवित्र विना श्रम आवे ॥ जामें अपनो धर्म न जावे ॥
जातें उपजे नहीं विकार ॥ सो कहिये सात्विक आहार ॥ ४० ॥ षाटा मीठा तीषा षारा ॥
दुषदाइक राजस अहारा ॥ जो असुद्ध हिंसातो आवै ॥ सो तामस आहार कहावे ॥ ४१ ॥
ममजन अरु मेरो उच्चिष्ट ॥ सो निर्गुण भोजन अतिसिष्ट ॥ इंद्रिय सुष तृष्णादिक दहै, ॥ तजि
आरंभानि थिर ह्वै रहै ॥ ४२ ॥ आतमतें उपजे सुष जोई ॥ सातिक सुष कहियतुहै सोई ॥
इंद्रिय सुष राजसई गहिऐं ॥ निद्रा आलस तामस कहिऐ ॥ ४३ ॥ मेरे प्रेमभक्ति सुष जोई ॥
निर्गुण सुष कहियतुहै सोई ॥ द्रव्य देश फलकालरु ज्ञान ॥ कर्ता कर्म अवस्था दान ॥ ४४ ॥
श्रद्धा निष्ठा अरु आकार ॥ तिनौ गुण निर्मित विस्तार ॥ जो कछु कहौ सुनौ अरु देषौ ॥
मन अरु बुद्धि जहां लगि पेषौ ॥ ४५ ॥ सो सब प्रकृतिपुरुष विस्तारा ॥ त्रयगुणानि निर्मित
सकल पसारा ॥ इनतैं जीव लहे संसार ॥ त्रिगुण कर्ममय वारंवार ॥ ४६ ॥ जो इनतीनौं गुण
नि निवारै ॥ चित्त आपनौ मोमें धारै ॥ सो मेरो निर्गुण पदपावे ॥ बहुरो या भवमें नहिं आवै
॥ ४७ ॥ यातें यह ऐसी नरदेह ॥ जाकरि मिटें सकल संदेह ॥ होवै प्रगट ज्ञान विज्ञान ॥ पावै
मोहि मिटै सब आन ॥ ४८ ॥ तातैं पंडित सकल तिन्हारै ॥ मोकों सेइ आपकौं तारै ॥ या ॥८१॥
विन सकल अपंडित जानौ ॥ ते ते आतमघाती मानौ ॥ ४९ ॥ सवहूंतें होवे निहसंग ॥

सावधान पलपैरे न भंग ॥ इंद्रिय देह प्राण मन जीतै ॥ मम चरचा दिनरन वितीतै ॥ ५० ॥
सकल सात्विकी संगति करै ॥ राजस अरु तामस परिहरै ॥ देहादिकतें निस्पृह होई ॥ आगे
इच्छा करे न कोई ॥ ५१ ॥ मोमें धारे निश्चलबुद्धि ॥ तब पावै अंतरगत शुद्धि ॥ या विधिसात्वि
कहू छटिकावे ॥ तातें लिंग शरीर मिटावे ॥ ५२ ॥ लिंग शरीर मिटे भव तजै ॥ निर्मलरूप आप
नौ भजै ॥ ऐसें होइ मोहिकौं जानै ॥ बाहिर भीतर द्वैत न मानै ॥ ५३ ॥ मोमें मिलि मौहींमें
रहै ॥ बहुरो काल अग्नि नाहिं दहै ॥ रहै निरंतर मेरे संग ॥ तातें कदे न होवै भंग ॥ ५४ ॥
॥ दोहा ॥ ए उद्धव तोंसो कही, तीनोगुणकी वृत्ति ॥ अब औरै ज्ञानहि कहौं
जातें होइ निवृत्ति ॥५५॥ इतिश्रीभाग० म० एकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसं-
वादेभाषायांपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
दोहा ॥ योगभ्रंश योगीनकौं, होत कुसगंति पाय ॥ कहै सुसंगतिकारणे
छब्बीसें अध्याय ॥ १ ॥ जाय जोषिता संगतें, योगधारणा ध्यान ॥
श्रीधर सदाबिचारिये, एलगीत आष्यान ॥ २ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥
चौपाई ॥ उद्धव यह नरतनहै ऐसो ॥ सकल सृष्टिमें नाहीं जैसो ॥ या तनकरि ममज्ञानाहि पावै ॥
तातें भवताजि मोमें आवैं ॥ १ ॥ तातें ऐसै तनकौं पाई ॥ मो मिलनेंको करे उपाई ॥ अंतरमांही
मोहि विचारै ॥ औरै सकल वासना ठारै ॥ २ ॥ मम भक्तनके लक्षण जानै ॥ त्यौं त्यौं आपु
आपुमैं ठानै ॥ अनायास तब मोकौं पावै ॥ काल व्याल बहुरो नाहिं पावै ॥ ३ ॥ तब माया गुण

मिथ्या जानै ॥ मेरो ज्ञान पाइकरि भानै ॥ यौं ह्वै रहै देहहुंमांहीं ॥ तोहूं फेरलिपैं कहुं नाहीं ॥४॥
परि जद्यपि होवै ऐसोहूं ॥ करे असाधु संग नहिं तोहूं ॥ शिश्नरु उदर परायण जे ते ॥ मन
क्रम वचन त्यागिये ते ते ॥ ५ ॥ करै असाधु एककौ संग ॥ तोहूं ज्ञान ध्यानकौ भंग ॥ असत
संग नर जबहीं करै ॥ ताके संग नरकमें परै ॥ ६ ॥ जैसैं अंध अंधके संग ॥ कूपपरै होवै सुषभंग ॥
याकी गाथा भाषौं एक ॥ जातैं उपजै परमविवेक ॥ ७ ॥ जब उर्बसी बिरह तनदह्यौ ॥ सोक
मोह सागरमें बह्यौ ॥ तब पुरूरवा भाषी जोई ॥ तोसौं भाषौं गाथा सोई ॥ ८ ॥ राजा पुरूरवा
चक्रवर्त्ती ॥ ताकी आन जहांलौं धर्त्ती ॥ श्रापहुतें उतरी उरबसी ॥ सो मिलिकैं नृपके उरबसी ॥ ९ ॥
बहुन्यो श्राप मुक्ति जब भई ॥ तब तजि नृपहिं उर्बसी गई ॥ नृपति बिलाप करै बहु रोवै ॥
परिसो नृपकी ओर न जोवै ॥ १० ॥ राजा नग्नदेह सुध नाहीं ॥ बानी बिकल दीनता मांहीं ॥
लज्जारहित मंदमति जैसें ॥ चल्यौ उर्बसी पीछे तैसें ॥ ११ ॥ अहो प्रिया तुम ठाढी होवो ॥ मेरी
और कृपाकरि जोवो ॥ मोकौं मार कहां तुम जावो ॥ कृपाकरो मेरे ग्रह आवौ ॥ १२ ॥ मिलि
उर्वसी संग सुषपायो ॥ सो सो सकलदुःष ह्वै आयौ ॥ त्रप्तन भयो भोगवत भोग ॥ पाई उर्वसी
को संजोग ॥ १३ ॥ ता उर्वसी ज्ञान आकर्ष्यो ॥ तातैं भलोमानके हर्ष्यो ॥ तन मन हृदय कछू
नाहिं आन्यौ ॥ निशिदिन मास बरषनाहिं जान्यो ॥ १४ ॥ तब ता नृपके पूरणभाग ॥ जातें
प्रगट भयो वैराग ॥ तब नृप बचन बषानै जेई ॥ तोसौं मैं भाषतहों तेई ॥ १५ ॥ ॥ पुरूरवा
उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ अहो एक दोषो मम मोह ॥ आपुहि कियो आपुनो द्रोह ॥ गहियों कंठ
देवकी माया ॥ जिन मेरो सब आयु गमायां ॥१६॥ इन मोकों डहिक्यौ बहुतेरो ॥ सर्वसु आयु

लियौं हरि मेरौ ॥ में दिनरात न जान्यौ जात ॥ अमृतकरि मान्यौ विषात ॥ १७ ॥ वर्ष समूह गए मम बीत ॥ सकल विकारनि लीनो जीत ॥ देषो में केसो डहिकाहो ॥ इस्त्रीके कर आप बिकायौ ॥ १८ ॥ जो में राजा चक्रवर्ती ॥ जीति समस्त करि वस धर्ती ॥ सकल भूप ममचरणनि सेवैं ॥ तन मन धन सब मोको देवें ॥ १९ ॥ सोइ बिकानो मैं स्त्रीहाथ ॥ ज्यौं वानर बाजीगर साथ ॥ ज्यौं ज्यौं इस्त्री मोहि नचायौ ॥ त्यौं त्यौं में मूरष सुषपायौ ॥ २० ॥ तो परि राजसहित तजि मोह ॥ त्रण समान करि चलि बिछोह ॥ नग्न भयो में पीछै धायौ ॥ ज्यौं उन्मत्त आप विशरायौ ॥ २१ ॥ कौन भांति ताकौ बलहोई ॥ तेज प्रताप रहै नहिं कोई ॥ जो होवै इस्त्री आधीन ॥ जेसैं षरी संग षरदीन ॥ २२ ॥ विद्या मौन तपस्या त्याग ॥ बनमें वासरु दृढवैराग ॥ ए समस्त कीनें कछु नाहीं ॥ ज्यौं लगि त्रिया बसै मनमांहीं ॥ २३ ॥ यह उर्वसी जबहितें पाई ॥ काम अग्नि बहुभांति जगाई ॥ परि यह अग्नि न सीतल भई ॥ अधिक अधिक नित बढतागई ॥ २४ ॥ जैसें अग्नि प्रज्वलित होई ॥ तामैं इंधन डारै कोई ॥ सो त्यौं अधिक अधिक प्रज्वरै ॥ पलकहु नहिं सीतलता करै ॥ २५ ॥ में अपनौ नहिं जान्यौ अर्थ ॥ आपु आपुकौ कियो अनर्थ ॥ मूरष आपहि पंडित मान्यो ॥ पड्यौ मृत्युमुष अमृत जान्यो ॥ २६ ॥ जोमें ईस सकल भुवकेरो ॥ सो है रह्यौ तियाकौ चेरो ॥ में मूरष ताकौं धिक्कार ॥ जिन न कियो कछुज्ञान बिचार ॥ २७ ॥ इस्त्रीकरि जाकौ चितहर्‍यौ ॥ ज्ञान विचार सकल पहिर्‍यौ ॥ ताकौं हरि बिन कौन छुडावै ॥ दूजो आपन छूट न पावै ॥२८ तातें में हरिसरणनि गहौं ॥ सकल त्यागि हरिको ह्वे रहौं ॥ जद्यपि देवी मोहि बुझायौ ॥ त्रिया

प्रीति दुख कहि समुझायौ ॥ २९ ॥ तोहूं मैं मूरष नहिं जान्यौ ॥ काम अंध सुखही करि मान्यौ ॥ तातैं ताकौ नहिं अपराध ॥ यह मेरो मम बडौ असाध ॥ ३० ॥ जोहै नरक स्वर्गमय देख्यौ ॥ दुख मांहीं मे सुखकरि लेख्यौ ॥ गुणमें साप जान दुख पावै ॥ अग्नि पतंग परै मरिजावै ॥ ३१ ॥ तो तिनकौ अपराध न कोई ॥ आप दुःख करि लेवै सोई ॥ तातैं तिनकौ एहि सुभाव ॥ मैं मनमें क्यौं धरौं अभाव ॥ ३२ ॥ जो मैं आप अग्निमें परौं ॥ तो उरदुःख कवनकौ धरौं ॥ देंहहि मलिन महादुर्गंध ॥ सो करि जान्यौ विमल सुगंध ॥ ३३ ॥ सोई अपनि अविद्या कर्‌यो ॥ निजानंद आतम वीसर्‌यौ ॥ यह तन तो बहुतनिकौ कहियैं ॥ तामें ममता गहि क्यौं रहियैं ॥ ३४ ॥ मातापिता अपनौं करि कहैं ॥ इस्त्री एकमेक मिलिरैहैं ॥ के यह तन कहिये राजाकौ ॥ के पावक भक्षणहै ताकौ ॥ ३५ ॥ के भूको के स्वान शृगाल ॥ के आपनो मित्रके काल ॥ यह तन कहियैं किन किनकौ ॥ प्रगटहि दीसतहै तिन तिनकौ ॥ ३६ ॥ महा अशुद्ध देह यह एसो ॥ प्रगटहि नरक खानिहै जेसो ॥ तासौं मन बांधे मतिमंद ॥ इस्त्री नाम कालकौ फंद ॥ ३७ ॥ त्वचारु रुधिर मांस अरु अंत ॥ मज्जा मेद रोम नष दंत ॥ विष्ठा मूत्र रेत कृमि हाड ॥ इस्त्री प्रगट नरक पीषाड ॥ ३८ ॥ तातैं इस्त्री अरु ता संगी ॥ ताकौ कदे न होय प्रसंगी ॥ ताके दर्श क्षुभित मस होई ॥ देषे बिना न बिचरै कोइ ॥ ३९ ॥ तातैं तिन दर्शन जो करियैं ॥ आपहि आप नरकमें परियैं ॥ जो यह इंद्रिय अर्थ निवारै ॥ मन क्रम वचन संगति न टारै ॥ ४० ॥ तब यह मन सहजहि थिर होई ॥ कदे विकार न परसै कोई ॥ ताते जे इस्त्रीनिकौं भजै ॥ अरु इस्त्री तिनकौं बुध तजै ॥ ४१ ॥ दर्श पर्श

अरु श्रवण निवास ॥ सब भावनितें मानै त्रास ॥ इंद्रियाकौ विश्वास न करै ॥ ज्ञानवंत नितही परिहरै ॥ ४२ ॥ महापुरुष जे जीवन्मुक्ता ॥ तिनकों यह संग अजुक्ता ॥ तोतें जगतें छूटे चहैं ॥ ते हमसें क्यौं संगति गहैं ॥ ४३ ॥ तातें में संग निवारौं ॥ श्रीपतिचरण समल उरधारौं ॥ दीनबंधु करुणामय स्वामी ॥ कृपाकरी यह अंतरमाजी ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥चौपाई ॥ या विधि वचन कहै नरराज ॥ तजि उर्वसी लोक सबसाज ॥ ज्ञानलह्यौ सब संशय टाऱ्यौ ॥ मन निश्चल करि मोमें धाऱ्यौ ॥ ४५ ॥ तातैं उद्धव यह पुरुषार्थ ॥ नर तन पायौ तबही स्वार्थ ॥ जब समस्तकी संगति तजै ॥ सत संगति गहि मोकों भजै ॥ ४६ ॥ संत बतावें हित उपदेश ॥ जिनतें संशय रहे न लेश ॥ मनकी सब आसक्ति निवारै ॥ संत महा भवसागर तारै ॥४७॥ निस्पृह निरारंभ सम दरसै ॥ संग्रह रहित द्वंद्व नहिं परसैं ॥ अहंकार ममता नहिं आनैं॥मोहि भजैं दूजो नाहिं जानैं॥४८॥मेरीकथा श्रवण जे करैं॥ते सब पापनितैं निस्तरैं ॥ सुनै कहै अंतरगत ध्यावै ॥ अति आतुर सों प्रीति बढावै ॥ ४९ ॥ सो जद्यपि उपदेश न देवै ॥ तोहूं मोहि चहेतें सेवै ॥ तहां कथा मेरी नित होवै ॥ तेई अघ संदेहानि होवै ॥ ५० ॥ ते सहजहीं लहै ममभक्ति ॥ सहजहि होवै सकल विरक्ती ॥ मेरि भक्ति लहे नर जबहीं ॥ पूरण काम भयो सो तबहीं ॥ ५१ ॥ तातैं कछू न करणो रहै ॥ ज्ञानानंद रूप मम लहै ॥ सीत निशा होवै कहु कोई ॥ तहां अग्निपर जारै सोई॥५२॥ तम तुषार भय सहजहि जावै ॥ त्यौं साधु सब दोष मिठावै ॥ यह अपार सागर संसार ॥ जामें बूडे जीव अपार ॥ ५३ ॥ तिनको नाव प्रगट इक एह ॥ संतरूप प्रगटहि मम देह ॥ ज्यौं प्राणनि राषै आहार ॥ मेरी शरण दुःषसंहार

॥ ५४ ॥ ज्यौं परलोक धर्म धन जानै ॥ त्यौं भव तारक साधू मानै ॥ जिनके हृदय प्रगट ममचरण ॥ तिन बिन और न या भवशरण ॥ ५५ ॥ ज्यौं बाहिरहै सूरजएक ॥ यों उर धैरं नेन अनेक ॥ संतहि मातापिता हितकारी ॥ संतदेव बंधू दुखहारी ॥ ५६ ॥ तातैं संग नित करणौ ॥ और उपाय न हृदये धरणौ ॥ तिनतें अनायास भवतरै ॥ अनायास मोकौं अनुसरै ॥ ५७ ॥ तब पुरूरवा ऐसो कऱ्यौ ॥ सहित उर्वसी लोक परिहऱ्यौ ॥ सब तजि भयौ आतमाराम ॥ विचऱ्यो भूमैं है निहकाम ॥५८॥ तातैं असत संग परिहरै ॥ साधू संत निरंतर करै ॥ साधूजन सुषहीं भवतारै ॥ सुखहीं ममचरणनि चित्तधारै ॥ ५९ ॥ दोहा ॥ ऐसो साधु असाधुकौ, मुनि हरिजीसौं संग ॥ तब उद्धवजन पूछियौ; कर्म जोग परसंग ॥ ६० ॥

इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांऐलगीतायांषडाविंशोध्यायः ॥ २६ ॥

दोहा ॥ श्रीधर पूजनविधि सबै, मूरति अष्टप्रकार ॥ सत्तावीशैं ध्यायमैं चित्तशुद्ध निजसार ॥ १ ॥ रागादिक जाचितविषै, सोक्यों होइ असंग॥ तिनहित पूछत कृष्णसौं उद्धव पाइ प्रसंग ॥ २ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥

हे प्रभु कृपाकरो अब ऐसी ॥ भाषौ क्रिया जोग विधि जैसी ॥ जाकै करत होई सतसंग ॥ पावै ज्ञान होइ निहसंग ॥ १ ॥ यह जो तुम प्रतिमाकी पूजा ॥ तातें श्रेय कहै नाहिं दूजा ॥ याकौं कहैं व्यास अरु नारद ॥ गुरू बृहस्पति परमविशराद ॥ २ ॥ औरो सकल मुनीस्वर जे ते ॥

परम श्रेय यह भाषें ते ते ॥ कल्प आदि तुम विधिसों कह्यौ ॥ सो दृढकरि विधि हृदय ग्राह्यौ ॥ ३ ॥ तिन भृग्वादी सुतानि सुनायौ ॥ शंभूहुतें भवानी पायौ ॥ जे ते सकल वर्ण अरु आश्रम ॥ इस्त्री शूद्रहु सबकौ धर्म ॥ ४ ॥ याबिधि और धर्महै जे ते ॥ याही काज कहै सब ते ते ॥ याबिनु और धर्म जे करै ॥ तो तिनतें फिरि बंधन परैं ॥ ५ ॥ यह सब धर्मनि कौहै धर्म ॥ याहीहुतैं कटै सब कर्म ॥ तातैं पूजाविधि विस्तारौ ॥ क्रिपाकरौ जीवन निस्तारौ ॥ ६ ॥ तुम दयाल सबके हितकारी ॥ सुमरत सकल दुःखभय टारी ॥ शुनिकैं परउपकारी बैन ॥ बोले हरषि कमलदलनैन ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उद्धव याकौं अंत न पार ॥ ममपूजा बहुविधि विस्तार ॥ परितोकूं संक्षेप सुनाऊं ॥ तामें तत्त्व सकलकौ ल्याऊं ॥ ८ ॥ पूजाविधि है तीन प्रकार ॥ वैदिक तांत्रिक मिश्रित सार ॥ वेदमंत्र अरु वैदिक अंग ॥ सो कहिए बैदिक परसंग ॥ ९ ॥ योंहीं तांत्रिक मिश्रित जानै ॥ भावै तासौं पूजा ठानै ॥ विप्ररु क्षत्री वैस्य त्रिबर्ना ॥ इनकौं याविधि पूजा करना ॥ १० ॥ सो समस्त विधि तुमहि सुनाऊं ॥ जीवनिकौ कल्यान उपाऊं ॥ प्रतिमा भूमि अग्नि जलवाई ॥ द्विज अरु आप अर्क अरु गाई ॥ ११ ॥ अरु सब हिनमैं मोकौं जानै ॥ जथा जोग सब पूजा ठानै ॥ गुरु अरु मोमें भेद न राखे ॥ मानुष बुद्धिदूरि करि नाखे ॥ १२ ॥ शुद्धहोइ जलमाटी संग ॥ अस्नानादि सकल ए अंग ॥ जे जे प्रगट वेद अरु तंत्र ॥ ते ते सकल पढै मम मंत्र ॥ १३ ॥ संध्योपासन आदिजु कर्म ॥ प्रगटहि तिहूं वर्ण कै धर्म ॥ तिन तिनसौं नित मोकौं भजै ॥ होई निषेध सकलसौ तजै ॥ १४ ॥ जाहीकरि मम सुमरण होई ॥ काटै सब कर्मनिकौं सोई ॥ सोई सो

कहियै ममधर्म ॥ ममसुमरण विन बंधन कर्म ॥ १५ ॥ अब भाषौं प्रतिमाके भेद ॥ सेवत जिनहि मिटै भवखेद ॥ एक शिलाकी कहियैं मूरति ॥ एक काष्ठकी त्यौं ममसूरति ॥ ॥ १६ ॥ एक लेप चंदनकी करियें ॥ एक चित्र पुस्तक लिखिधरियें ॥ प्रतिमा एक सुवर्ण सवारि ॥ एक मनोमय मनमें धारि ॥ १७ ॥ एक मृत्तीका कीले कीनी ॥ एकरत्न मणिकी करि लीनी ॥ ए मम प्रतिमा अष्टप्रकार ॥ जानै मम मंदिर निजसार ॥ १८ ॥ तिनमें होवै निश्चल जेती ॥ सयनादिकन करावे तेती ॥ सालिगराम आदि हे जेती ॥ मेरौ तनजानै नित तेति ॥ १९ ॥ और सबनिकौं पूजाकाल ॥ किंवा जानै नित गोपाल ॥ लिपिलिखी कामार्ज नकैरै ॥ औरे स्नानादिक विस्तरै ॥ २० ॥ उत्तम सामग्रीसौं सेवै ॥ तन मन धन सब मोकौं देवै ॥ जो निहकाम कपट बिन होई ॥ करे भाववस मोकों सोई ॥ २१ ॥ उत्तम वस्तुनि मन करि ल्यावै ॥ प्रेमसहित सब मोहि चढावै ॥ उत्तमविधि अस्नान करावे ॥ वस्त्राभर्णादिक पहिरावै ॥ २२ ॥ अग्नि घृतादिक होमहि करै ॥ थरणी रवि अस्तुति विस्तरै ॥ जलकौं पूजे जल फलफूल ॥ जानै मोहि सकलको मूल ॥ २३ ॥ भक्तिसहित जो अर्पै तोई ॥ ताहूंमें मोकों सुखहोई ॥ तोजे धूप दीप नैवेद ॥ मोकौं बहुविधि करै निबेद ॥ २४ ॥ ताकी महिमा कहा बखानौं ॥ ज्यौंहै त्यौं मैंही पहिचानौं ॥ तातैं में नितप्रीति अधीन ॥ तोषन मानौ प्रीति बिही ॥ २५ ॥ अबभाषौं पूजाविधि तोसों ॥ सावधान ह्वै सुनियो मोसों ॥ होइ पवित्र करै अस्नान ॥ मनमें राखै मेरो ध्यान ॥ २६ ॥ पूजा साज प्रथम सबलेई ॥ फिरि उटबैकौं रहन न देई ॥ बैठे उत्तरके पुरवमुख ॥ निश्चल प्रतिमा केवल सन्मुख ॥ २७ ॥ दर्भनिको निज आसन

करै ॥ अंगनिकै न्यासहि बिस्तरै ॥ न्यासकरै मम मूरति अंग ॥ तब ठानैं अस्नान प्रसंग ॥२८॥ उत्तम कलस तोयसौं भरै ॥ दूजे जलके पात्रहि धरै ॥ जलमैं बहुत सुगंध मिलावै ॥ तासौं मोही स्नान करावै ॥ २९ ॥ अर्घपाद अरु विष्टर करै ॥ तीन पात्र तातें जल भरै ॥ गंध पुष्प तामें बहुधरै ॥ गायत्री अभिमंत्रनि करै ॥ ३० ॥ तब आपनौं करे तन शुद्ध ॥ कोऊ द्वार न होइ अशुद्ध ॥ हृदयमांहि ममरूपहि ध्यावै ॥ स्व ॐकार जहांतैं आवै ॥ ३१ ॥ जैसें गृहमें दीपप्रकास ॥ यों ध्यावै तनमांहि उजास ॥ पूजे प्रेम सुतनमय होई ॥ पुनि मूरतिमें थापै सोई ॥ ३२ ॥ सांगोपांग करै तनपूजा ॥ कोई भावन उपजै दूजा ॥ देवे अर्घपाद आचमन ॥ रचे अष्टदल पंकज भवन ॥ ३३ ॥ तापर थापे ले धर्मादी ॥ सकलशक्ति रवि शशि अग्न्यादी ॥ शंखरु चक्र गदा असि अस्त्र ॥ धनुष बान मूसल हल शस्त्र ॥ ३४ ॥ ए आठो आठेदिशि आनै ॥ वनमाला लत्ता उर जानै ॥ नंद सुनंद पहाबल चंड ॥ कुमुदेक्षण बल कुहुद प्रचंड ॥३५॥ अष्टदिशा पार्षदहि समग्र ॥ ठाढौ गरुड जोरिकर अग्र ॥ विष्वक्सेन व्यास गुरुदेवं ॥ गणपति दुर्गा अरु सबदेवं ॥ ३६ ॥ करजोरें हरि सन्मुख ठाढे ॥ हरषत बदन प्रेम अतिबाढे ॥ सबहिनकौं पूजे अर्घादी ॥ विनय नम्रता बंदन आदी ॥ ३७ ॥ चंदन अरु कपूर उशीर ॥ कुंकुम अगर सुगंधित नीर ॥ प्रथमहि कछु मधुपर्क चढावै ॥ निर्मल जल आचमन करावै ॥ ३८ ॥ पुनि सुगंध जलसों अस्नान ॥ मंत्र वंदन मन क्रम नहिं आन ॥ पुंडरीकलोचन भव भावन ॥ आदि पुरुष सबके उपजावन ॥ ३९ जय जय ब्रह्म सकल आधार ॥ नमो नमस्ते वारंवार ॥ ऐसें तंत्र मंत्र उच्चारै ॥ सहस्रशीर्षा श्रुति बिस्तारै ॥ ४० ॥ वस्त्र जनेऊ अरु आभरना ॥ अंग अंग

तिलकादिक करना ॥ उत्तम माला बहुत सुगंधा ॥ प्रेम सहित मोसें मन बंधा ॥ ४१ ॥ बालभोग
आचमन करावै ॥ कुसुम सुगंधहि धूप बनावै ॥ बहुत भांति आरती उतारै ॥ नानाविधि नैवेद
सवारै ॥ ४२ ॥ षीरषांड घृत दधी लापसी ॥ लाडू पुवा चूरमा सुरसी ॥ व्यंजन करै और बहुतेरे ॥
भोगलगावै बहुहिन मेरे ॥ ४३ ॥ नित दातुन ऊवटनौ तेल ॥ करे स्नान पंचामृत मेल ॥ अलंकार
दर्शन आदर्श ॥ गीत नृत्य वाजंत्र सुपर्श ॥ ४४ ॥ बहुत भांति नैवेद संवारे ॥ नित नाहीतो
पर्व न टारै ॥ बहुरि करै पावकमें पूजा ॥ मो बिन ताहि न जाने दूजा ॥ ४५ ॥ अग्निकुंडमैं
अग्निहि धरै ॥ समिध घृतादिक होमहि करै ॥ होमकरै पढि पढि मम मंत्र ॥ जिनकौं कहैं बेद
अरु तंत्र ॥ ४६ ॥ करी होम आचमन करावै ॥ ताकों मेरो रूपहि ध्यावै ॥ तप्तसुवर्ण तुल्यछबि
अंग ॥ चारु चतुर्भुज आयुध संग ॥ ४७ ॥ पीतबसन कुंडल बनमाला ॥ सीसमुकुट कटिसूत्र
विशाला ॥ भृगुलत्ता अरु लक्ष्मी आदी ॥ बहुविधि ध्यावै रूप अनादी ॥ ४८ ॥ पुनि नंदादि
पारषद जे ते ॥ बलि विधान सो पूजे ते ते ॥ जपै मूलमंत्र बहुवार ॥ जा विधि बढे प्रेम
अधिकार ॥ ४९ ॥ पीछे ता परसादहि लेवै ॥ लेकरी मम भक्तनकौं देवै ॥ आग्या पाई आप
तब पावै ॥ प्रीति सहित जेतो जिय भावै ॥ ५० ॥ पुनि अर्पे सुगंध तांबूल ॥ उत्तममाला उत्तम
फूल ॥ मेरै गुण ऊंचैसुर गावै ॥ नामानि भाषै प्रेम बढावै ॥ ५१ ॥ मेरे गुण अरु कर्म सराहै ॥
पूरणप्रेम सिंधु अवगाहै ॥ कथा नित्य मम सुने सुनावै ॥ मो बिन कहूं न पल ठहराहै ॥ ५२ ॥
चरण पलोटै सयल कराई ॥ मुषतें नाम न भूलीजाई ॥ प्राकृत संस्कृत स्तोत्ररु वेद ॥ जेई जे ॥८६॥
अस्तुतिके भेद ॥ ५३ ॥ तिन तिनसौं मम अस्तुति करै ॥ वारवार चरणनिमें परै ॥ पीछै धार

जोरिकर दोई ॥ करे दीन ह्वै बीनति सोई ॥ ५४ ॥ हेप्रभु भवसागरतें तारौ ॥ काल मृत्यु भय शोक निवारौ ॥ तुम बिन मेरै और न कोई ॥ पाऊं चरणनि कीजै सोई ॥ ५५ ॥ हृदयसु जोति जोतिमें धारै ॥ मूरतिकौं सज्या विस्तारै ॥ यौं आकार जहांलों देषै ॥ ते समस्त मम मूरति लेषै ॥ ५६ ॥ करे जथाविधि सबमें पूजा ॥ मौकों छांडि न जानै दूजा ॥ याविधि क्रिया जोग मन लावै ॥ सो नर भुक्तिमुक्ति फल पावै ॥ ५७ ॥ ममहित उत्तम ग्रह संवरावै ॥ तामें मम प्रतिमा पधरावै ॥ मोकौं करै बाग फुलवाई ॥ जन्म महोत्सवकी अधिकाई ॥ ५८ ॥ ममहित सदाव्रतादिक देवै ॥ बहुत भांति मम भक्तनि सेवै ॥ ममपूजा प्रवाहके हेत ॥ देय गाम पुरि हाटरु षेत ॥ ५९ ॥ सो मम सम ईश्वरता पावै ॥ तिहूं लोककौ ईश कहावै ॥ जो मम प्रतिमा थापन करै ॥ सो सब भूपति ह्वै अवतरे ॥ ६० ॥ जो मेरो मंदीर संवरावै ॥ तिहूं लोककी प्रभुता पावै । पूजादिकानि ब्रह्मको लोक ॥ जहां नहीं नाना भय शोक ॥ ६१ ॥ तीनौं किये लहै वैकुंट ॥ कालादिक सबहुतें अकुंठ ॥ जो यौं सेवे है निहकाम ॥ सो ममभक्ति लहै सुषधाम ॥ ६२ ॥ निहकामी भावे त्यौं सेवै ॥ जौ तन मन धन मौकों देवै ॥ सो पावे मेरो निजज्ञान ॥ लहैं मोहि छूटै सब आन ॥ ६३ ॥ वृत्ति सुरानि अरु विप्रनि केरी ॥ अरु जो करि होए कछु मेरी ॥ दई औरकी किंवा आपू ॥ ताकों हरेकऱ्यौ सब पापू ॥ ६४ ॥ सो होवै कृमि विष्ठा माहीं ॥ बर्षकोटि कहु निकसे नाहीं ॥ कर्त्ता प्रेरक तथा सहाई ॥ अनुमोदक जिन रुचि उपजाई ॥ ६५ ॥ सबहिनकौं फल होइ समान ॥ भावै उत्तम भावै आन ॥ तातें ममहित कर्मनि करै ॥ सो बहुतानि ले भवजल तरै ॥ ६६ ॥ ॥ दोहा ॥ या विधि पूजाकौं करै,

ताकौं उपजै ज्ञान ॥ जातैं मेरो पद लहै, ताकौं करौं वषान ॥ ६७ ॥ ॥
इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांसप्त
विंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥



दोहा ॥ अष्टाविंशति ध्यायमैं, ज्ञान योग पुनि सार ॥ श्रीधर श्रीउद्धव प्रती, वर्णत नंदकुमार ॥ १ ॥ पूर्व कहे विस्तारसों, ज्ञानयोग हरिजोई ॥ सारसबै संक्षेप कर, पुनि बरनत प्रभुसोई ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई॥उद्धव ताकैं भाषौं ज्ञान ॥ जातें लहै मोंहि तजि आन ॥ उत्तम मध्यम कर्म सुभाव ॥ जे सब जगके नाना भाव ॥ १ ॥ तिन तिनकी निंदा नहिं करै ॥ अरु कछु नहिं अस्तुति विस्तरै ॥ प्रकृति पुरुष निर्मित सब जानै ॥ एक जानि सबभेदहि मानै ॥ २ ॥ ब्रह्माआदि कीट परजंत ॥ एकरूप देषै मम संत ॥ जे जे बहुविधि कर्म सुभाव ॥ तिनकों आनौ भाव अभाव ॥ ३ ॥ तासों होई अर्थतें भ्रष्ट ॥ माया मोंह चित्त आक्रुष्ट ॥ मिथ्या मांहि चित्तकौं धरै ॥ तातें मूरख जनमें मरै ॥ ४ ॥ लीन होई जब इंद्रिय देह ॥ स्वप्न लहै तब आतम एह ॥ जहँ मनलग्यौ तहां तहँ जावै ॥ बहुत भांतिके सुखदुख पावै ॥५॥ पुनि सुषुप्तिमें होवै लीन ॥ मरणो कहैं अहं मम हीन ॥ यौं सुषुप्ति अरु देखत सुपना ॥ जन्म मरण बहु सुषदुष उपना ॥६॥ ज्यौं लगि सो बैत्यौं लगि पावे ॥ जागे कछु ए नहीं रहावे ॥ त्यौं यह सुख दुख पापरु पुन्य ॥ जन्म मरण सब मानो शुन्य ॥ ७ ॥ जापें यह सब द्वैत

असत्य ॥ मो बिन ओर कछू नहिं सत्य ॥ दृषन कह न सुननमें आवै ॥ मन अरु बुद्धि जहा लगि जावै ॥८८॥ ते समस्त जो कछुवै नाही ॥ तो शुभ अशुभ कहैका मांहीं ॥ जद्यपिहै मिथ्या संसार॥ तोहूं दुषकौं वार न पार ॥ ९ ॥ ज्यौं लगि देहबुद्धि नहिं छूटै ॥ त्यौं लगि भव भय पलक न टूटै ॥ जैसें अपने ध्वनिकी जाई ॥ अरु प्रतिबिंब सिंहकी न्यांई ॥ १० ॥ सीप रूप जेवरिमें साप ॥ अरु मृग तृष्णा मांहीं आप है नाहीं परिहै सो जाने ॥ तिनतें सुखदुख बहुविधि माने ॥ ११ ॥ ज्यौं लगि मिथ्या जाने नाहीं ॥ त्यौं लगि सकल अनर्थ न जाहीं ॥ ब्रह्मरूप हय सब संसार ॥ जहां लगे कछुहै आकार ॥ १२ ॥ ब्रह्मरूप ब्रह्माहि उपजावै ॥ ब्रम्ह ब्रह्म आधार रहावै ॥ ब्रह्महि करे ब्रह्मप्रतिपाल ॥ ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मको काल ॥ १३ ॥ जैसें जल बूद्‌बुद जल मांहीं ॥ जलकौंछोड द्वैत कछु नाहीं ॥ त्यौंही ब्रह्मरूप सब एक ॥ देषै भ्रमतें जीव अनेक ॥ १४ ॥ परि यह सब जानौ निर्मूल ॥ ज्यौं मृगवारि गगनमें फूल ॥ त्रिगुण रचित सब यह जगजानौं ॥ ते गुण मायाकेही मानौ ॥ १५ ॥ जो या बिधि सब मिथ्या जानै ॥ ब्रह्म भावना हृदये आनै ॥ परि जद्यपि सो जगमें रहै ॥ तो रवि त्यौं गुण दोष न गहै ॥ १६ ॥ या जगमें शुभ अशुभ न देषै ॥ मिथ्या जोनि भर्मकरि लेषै ॥ ज्यौं प्रत्यक्ष घटादिक देषै ॥ उपजत विन सत मिथ्या लेषै ॥ १७ ॥ धरनी आदि काल त्रय सत्य ॥ नाम रूपते सकल असत्य त्यौंही ब्रह्मसत्य तिहुंकाल ॥ नामरूप मिथ्या जंजाल ॥ १८ ॥ अरु त्यौं करि देषै अनुमान ॥ भाई यह जड तन मन प्रान ॥ शक्ति कौनकी चेतन रहै ॥ अपनै अपनै अर्थाने गहैं ॥ १९ ॥ निराकारतें चेतन होंई ॥ सब आकार जहांलों जोई ॥ तातें सब मिथ्या आकार ॥ चेतन ब्रह्म

सकल आधार ॥ २० ॥ अरु श्रुतिको परमाण विचारै ॥ नेति नति कहि वेदपुकारै ॥ अरु त्यौं
देषैं अनुभव माहीं ॥ नाम रूप यह कछुहे नहीं ॥ २१ ॥ अंत नरहै हुते नहिं आदी ॥ आतम
निश्चल ब्रह्म अनादी ॥ ऐसो बहुविधिको विस्तार ॥ मिथ्या जानै वरणाकार ॥ २२ ॥ मन
क्रम वचन होइ निहसंग ॥ ब्रह्मविचारहि करै अभंग ॥ ऐसें बचन कहे भगवान ॥ तब उद्धव
पूछ्यौ निज ज्ञान ॥ २३ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ ॥ हेप्रभु यह आतम अ-
विनासी ॥ चेतन रूप स्वयं प्रकासी ॥ निर्गुण निराकार नित सुद्ध ॥ सदा अनावृत सदा
प्रबुद्ध ॥ २४ ॥ ईहा रहित सदाआनंद ॥ सकल प्रकास कलिपै न दुंद ॥ अरुहै देह शक्तिकरि
हीन ॥ जड अशुद्ध है जावै लीन ॥ २५ ॥ तातैं तिनको संग न कोई ॥ महाविशेष परस्पर
होई ॥ कछु इच्छा नहिं आतम मांहीं ॥ अरु तनसों कछु होवै नाहीं ॥ २६ ॥ आतमकौं
बंधन नाहिं कोई ॥ अरु आतम आवर न होई ॥ यह संसार लहै सो कौन ॥ आतम शुद्ध
सदा सुषभौन ॥ २७ ॥ यह करि कृपा मोहि समुझावौ ॥ मेरे प्रभु संदेह मिटावौ ॥ ऐसें उद्धव
पूछ्यौ ज्ञान ॥ तब बोले भवपति भगवान ॥ २८ ॥ ॥ श्री भगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ आतमकौं
नाहीं संसार ॥ अरु तिनको नाहीं आकार ॥ तिन दोनोंते जो अविवेक ॥ ताहीकौं भवदुःख
अनेक ॥ २९ ॥ इंद्रिय प्राण देह मन बंध ॥ इनसों जो आतम संबंध ॥ तातें आभासै संसार ॥
महादुःख नाना परकार ॥ ३० ॥ ज्यौं लगिलों इनिसों संबंध ॥ त्यौं लगि आतम जाने बंध ॥
सो अज्ञान कऱ्यो सब जानौ ॥ नाहीं कछू सकल करि मानौ ॥ ३१ ॥ जद्यपि है मिथ्या संसार ॥ ॥८८॥
परितोहूं कहु वारन पार ॥ सदाजीव दुःखहिमें रहैं ॥ वार वार तनछोडे गहैं ॥ ३२ ॥ ज्यौं

सुपना कछुहोवै नाहीं ॥ परि सब साचे निद्रा मांहीं ॥ यों जे सुखदुख मनमें ध्यावे ॥ सो सो
सकल सुपनमें आवै ॥ ३३ ॥ है नाहिं परिहे सो जानै ॥ नानाविधिकै सुखदुखमानै ॥ जागेतें
कछु दीसत नाहीं ॥ सब व्यवहार वृथा व्हे जाहीं ॥ ३४ ॥ हर्ष शोक भय सौचरु लोभ ॥
इच्छा क्रोध असोभरु सोभ ॥ जन्मरु मरण विकार जहांलौं ॥ अहंकार के सकल तहांलौं
॥ ३५ ॥ अतम सदा एक रस रहे ॥ अहंकार संगाति दुष सहै ॥ इंद्रिय देह बुद्धि मन प्रान ॥
सूत्ररु महत्तत्त्व अभिमान ॥ ३६ ॥ इनिसौं मिलि करि आतम एक ॥ याके सुखदुख गहै
अनेक ॥ तिन तिनके हित कर्मनि करै ॥ कर्मनिके वश जनमैं मरै ॥ ३७ ॥ लिंगबद्ध देहनिमैं
जावै ॥ तिनकै संग महादुष पावै ॥ बुद्धि वचन मन प्राण समीर ॥ महतत इंद्रिय कर्म शरीर
॥ ३८ ॥ सुख अरु दुख ममता हंकार ॥ तिनकौ नानाविधि संसार ॥ सो निर्मूल सकलही
जानै ॥ ज्यौं जेवरी साप त्यौं मानै ॥ ३९ ॥ ज्ञान खड्ग भजि योहि उपावै ॥ गुरुसेवासो
सान धरावैं ॥ तासौं काटी व्है निहसंग ॥ विचरे सब देखत मम अंग ॥ ४० ॥ गुरुकै वचन
हृदयमैं धारै ॥ आदि अंतलौं श्रुती विचारै ॥ जन्ममरण देखे प्रत्यक्ष ॥ ताजि अज्ञानसु होवै
दक्ष ॥ ४१ ॥ साधन धर्म माहि थितहोई ॥ आतम देह विचारे दोई ॥ जो या जगके
आदिरु अंत ॥ सोई मध्य विचारै संत ॥ ४२ ॥ आदिरु अंत मध्यमें एक ॥ नामरूप भ्रमरूप
अनेक ॥ हेम एक जौं आदिरु अंत ॥ मध्यकिये आभर्ण अनंत ॥ ४३ ॥ तो कछु हेम
छोडि नाहि आन ॥ जो विचार करि देखे ज्ञान ॥ मिथ्या सकल नाम आकार ॥ हेम काल
२३ त्रय करे विचार ॥ ४४ ॥ त्यौं जग आदि मध्य अरु अंत ॥ मोहि अरूप विचारै संत ॥ आदि

अंतमें एक अरूप ॥ सोई मध्य वृथा सब रूप ॥ ४५ ॥ जाग्रत सुपन सुषुप्ति आवस्था ॥
आदिरु अंत मध्यमा स्वस्था ॥ इनके नाश भए जो रहै ॥ सकल छोडि ताको बुध गहै
॥ ४६ ॥ इंद्रिय वपु इंद्रियके देव ॥ इंद्रिय विषयनिके बहु भेव ॥ ते सब याहि एक बिन नाहीं ॥
सत्य ब्रह्म खोजो उरमांहीं ॥ ४७ ॥ जाहि प्रकासत सकल प्रकासैं ॥ जाकी शक्ति सत्यसे भासैं॥
मुखको मुख कर्णनिको कर्ण ॥ करको कर चरणनिको चर्ण ॥ ४८ ॥ नासा नास नैनको
नैन ॥ जिह्वा जीभ वैनको बैन ॥ याबिधि सकल प्रकासक एक ॥ ताविन मिथ्या सकल
अनेक ॥ ४९ ॥ एजे नाम रूप विस्तार ॥ जिनसौं पूरण सब संसार ॥ ते सब आदिहुते कछु
नाहीं ॥ अरु नहिं रहिये अंतहु मांहीं ॥ ५० ॥ तातैं अबहूं मिथ्या मानै ॥ कारण ब्रह्म निरंतर
जानै ॥ नामधार्‍यो सो सकल विकार ॥ तिहूं कालमें माटी सार ॥ ५१ ॥ यह जो कछु सो ब्रह्म
समस्त ॥ आदि मध्य अरु सबके अस्त ॥ ऐसें बहु विधि वेद वखाने ॥ ब्रह्मबताय द्वैत सब
भाने ॥ ५२ ॥ आदि समस्तहुतौ कछुनाहीं ॥ अब आभा सत है मधमाहीं ॥ यातें परे ब्रह्म मम
रूप ॥ सकल प्रकासक आप अनूप ॥ ५३ ॥ बहुविचित्रतामैं आभासैं ॥ ताकी शक्ती शक्ति
प्रकासैं ॥ तातैं सकल ब्रह्महिं लेखौ ॥ ताजिकरि रूप अरूपहि देखौ ॥ ५४ ॥ इनतें परे रूप मम
जानौ ॥ अरु ए सब मम रूपहि मानौ ॥ द्वैतछोडि निश्चल ह्वै रहौ ॥ जानि ब्रह्म ता ब्रह्महि
लहौ ॥ ५५ ॥ ऐसो जो नितकरै विचार ॥ मिथ्या जानै सब आकार ॥ गुरु सेवा करि ज्ञान
बढावै ॥ चेतन मोहि अखंडित ध्यावै ॥ ५६ ॥ यह जो तनसो आतम नाहीं ॥ तन घटरूप ॥८९॥
विचारो मांहीं ॥ अरु इंद्रिय ते दीप समान ॥ इनहि प्रकासक आतम ज्ञान ॥ ५७ ॥ अरु त्यौं

देव पवन मन बुद्धी ॥ आतमकी नहिं जाने सुद्धी ॥ क्षिति जल तेज पवन आकास ॥ अहं-
कार गुण चित्त प्रकास ॥ ५८ ॥ स्याम प्रकृति तन मात्रा पंच ॥ इनहीसौं सब द्वैत प्रपंच ॥ ते
जड आतमकों नहिं जानैं ॥ आतम शक्ति इहासो ठानैं ॥ ५९ ॥ सकल प्रकाशक आतम
एक ॥ ए जड जान न सकें अनेक ॥ याविधि जो ममरूप विचारै ॥ सकल उपाधि उरैकी
टारै ॥ ६० ॥ सो बनरहै इंद्रियनि थंभै ॥ किंवा पुरुष विषय आरंभै ॥ तोहूं ताकों नहिं गुणदोष॥
जीवतहीं जिन पायौ मोष ॥ ६१ ॥ जैसैं घन रवि आडे आए ॥ तो तिनसौं कछु रवि न
छिपाए ॥ अरु जो मेघ दूरि ह्वै गये ॥ तो कछु रवि न प्रकाशत भये ॥ ६२ ॥ रविहै परे उरै
घनवृंद ॥ जानैं लिप्त लोकमति मंद ॥ जैसैं प्रगट पवन घन तोई ॥ धूम धूल अरु दामनि
होई ॥ ६३ ॥ ऋतुकै गुणजु सीत उष्णादी ॥ उपजत बिनसत रहै अनादी ॥ परि नहिं लिप्त
अलिप्त अकास ॥ त्यौं आतमा परम परकास ॥ ६४ ॥ परितोहूं संगति नहिं करै॥ माया गुणानि दूरि
परिहरै॥ ज्यो लौं करि न दृढ ममभक्ति ॥ छूटि नहीं रज तम आशक्ति ॥ ६५ ॥ द्वैत भेद नहिं भूलै
तौलौं ॥ मम जन संगकरै नहिं जौलौं ॥ जैसे रोगहोई तन मांहीं ॥ दृढकरि मुल उखार्‍यौ नाहीं ॥ ६६ ॥
तजि औषधसु अपथ्यहि करै॥ तासों रोग बहुरि विस्तरै ॥ त्यौं हंकार रोग भवमूल ॥ सो न
भयो जबलग निर्मूल ॥ ६७ ॥ त्यौं लगि संग अपथ्यजु करे ॥ तो बहुरौ जगमैं अवतरे ॥ बंधु
कुटुंब शिष्य बहुतेरे ॥ आवैं सकल सुरनके प्रेरे ॥ ६८ ॥ ते ते अंतराय सबकरैं ॥ जोगीकौं
कर्मनि विस्तरैं ॥ सो तिनतैं पावै अवतार ॥ बहुर्‍यौ करै भक्ति विस्तार ॥ ६९ ॥ कर्मपंथमें भूलै
नाहीं ॥ मैं प्रेरक ताके उर मांहीं ॥ याविधि पाइ ज्ञान विज्ञान ॥ देखे मोहि मिटावे आन ॥ ७० ॥

 तब ताकौ तन कर्मनि करै ॥ लेंन देंन भोजन बिस्तरै ॥ पूरव संसकार करवावै ॥ विधिको 
लिष्यौ न मिथ्या जावै ॥ ७१ ॥ सो मुनि मग्न ब्रह्मसुषमांहीं ॥ तातें कर्त्ता जानें नाहीं ॥ जो
 बैठो अरु ठाढो होई ॥आवै जाइ कहूंजे सोई ॥ ७२ ॥ अन्न खाइ जलपीवैसोवै ॥ जो व्यवहार
देहको होवै ॥ सो सो कछू न जानै योगी ॥ निश्चल रहै ब्रह्मरस भोगी ॥ ७३ ॥ जो कबहूं
देखै संसार ॥ इंद्रिय गोचर विविध प्रकार ॥ ते ते कछू सत्य नहिं जानै ॥ स्वप्नहिं सम ज्यौं जागे
मानै ॥ ७४ ॥ प्रथम आतमाहु तो अबंध ॥ आपहि भयौ प्रकृतिसों बंध ॥ बहुर्‍यो
मोसों विद्या पावै ॥ तब दुख जानी प्रकृति मिटावै ॥ ७५ ॥ तब बहुर्‍यौ ताकों नहिं गहै ॥
मोहि जानि मोहिमें रहै ॥ प्रथमहि जब मोकौं नहिं जान्यौ ॥ तब माया सुख उत्तम मान्यौ
॥ ७६ ॥ बहुरि जब ममसरणहि आवै ॥ मम प्रसाद अज्ञान मिटावै ॥ तब मायाकों दुखमय
जानै ॥ परमानंद रूप मुहिमानै ॥ ७७ ॥ तातै आपहि गही उपाधी ॥ ताकौ तजै जानि
करिव्याधी ॥ सदा निरंतर मोमें रहै ॥ बहुर्‍यौ भवसागर नहिं बहै ॥ ७८ ॥ ज्यौं रवि अंश
सकलही अक्ष ॥ परि रवि विना न लखै प्रतक्ष ॥ रविसंयोग बहुरि जब होई ॥ तब समस्त देखे
सो सोई ॥ ७९ ॥ रविबिन अंधकार तब होवै ॥ तातें कोइ नेंन नहिं जोवै ॥ रविसंयोग
प्रकाशहि पावैं ॥ तब सब देखे तमहि मिटावैं ॥८० ॥ परिते नयन त्रिकाल अलेप ॥ अंधकारसों
होय न लेप ॥ ते त्यौं केत्यौं तमहीं माहीं ॥ परि रवि बिनु कछू देषें नाहीं ॥ ८१ ॥ रवितें तम
उपाधि परिहरैं ॥ पाइ प्रकाश प्रकाशहि करैं ॥ त्यौं यह आतम मेरो रूप ॥ स्वयंप्रकाशरु परम 
अनूप ॥ ८२ ॥ जन्ममरण मर्यादारहित ॥ काहूकरि कबहूं न ग्रिहित ॥ दूजे रहित आतमा

एक ॥ ताही करिए देह आनेक ॥ ८३ ॥ महानुभव सकल अनुभाव ॥ जामें कदैंन कर्म स्वभाव॥ नित्यानंद सदा अतिशुद्ध ॥ सदा निरीहरु सदाप्रबुद्ध ॥ ८४ ॥ जाकरि इंद्रिय तन मन प्राना॥ चेतन है वरतें विधि नाना ॥ जो लों मन अरु वचन न जावै ॥ और कौन विधिताकौं पावै ॥ ८५ ॥ परि जब मोतौ रहितजु भयौ ॥ तब ताकौ सब बल मिटिसायौ ॥ अंधकार आयौ अज्ञान ॥ जातें दूरि भयौमें भान ॥ ८६ ॥ जब बहुरै ममशरणहि आवै ॥ तब सो ज्ञानप्रकासहि पावै ॥ तातें छोंडे सकल उपाधी ॥ जो मोबिन करलीनी व्याधी ॥ ८७ ॥ ताकौं अबहूं परसै नाहीं ॥ परि मोबिना तजी नहिं जाहीं ॥ मोको पाइ सकल परिहरै ॥ मेरे चरणनिकौं अनुसैर ॥ ८८ ॥ रविप्रकास मिटै तम जैसें ॥ ममप्रकास द्वैत भ्रम ऐसें ॥ सो पुनि मोकौं नहिं विसरावै ॥ मोहि सेइ मोमांहिं समावै ॥ ८९ ॥ मोमेंहुते न माया ल्यावै ॥ ऐसो मायामें नहिं आवै ॥ तातें नित्यहि मोमें रहै ॥ मौमिलि परमानंदहि लहै ॥ ९० ॥ उंद्धव इतनोहिं अज्ञाना ॥ जो केवलमें जानै नाना ॥ ब्रह्म विना कछु दूजो नाहीं ॥ जैसें साप जेवरी मांहीं ॥ ९१ ॥ द्वैत देह जड मिथ्या जानै ॥ चेतन एक ब्रह्म थिरमानै ॥ अरु यह पंचवरन विस्तार ॥ उपजै विनसै वारंवार ॥ ९२ ॥ जाकौं मिथ्या बेदबखानै ॥ अरु त्यौंहीं गुरु साधू मानैं ॥ पुनि अनुभवतें त्यौंहीं देखै ॥ जागे सुपन जगत त्यौं लेखैं ॥ ९३ ॥ ऐसो जगत सत्यते जानै ॥ पुष्पितबानी बेद बखानै ॥ अंत न श्रुतिके वचन विचारै ॥ उरै कहे तेई उर धारै ॥ ९४ ॥ तातें कर्म काम बहु कहैं ॥ ते मूरष या भवमें बहैं ॥ कर्म विक्षेपित तिनकी बुद्धी ॥ तातें कदे न पावें सुद्धी ॥ ९५ ॥ तातें तिनकौं लगै न ज्ञान ॥ मूरष आपहि जानें जान ॥ तातें विषयी जीव समस्त ॥

तिनहि भ्रमाय करें ते अस्त ॥ ९६ ॥ तातें उद्धव एही ज्ञान ॥ ब्रह्मजानि करि छोडे आन ॥ मेरो भजन निरंतर करै ॥ जास प्रकाश द्वैत परिहरै ॥९७॥ अरु उद्धव जो योग कहावै ॥ अष्ट अंगको वेद बतावै ॥ सो ज्यौं और विधि त्यौं जानौं ॥ भव मोचक कबहूं मतिमानौ ॥ ९८ ॥ जब याके तन प्रबल विकार ॥ करि न सकै भक्ती अधिकार ॥ तातें बहुविध विधि विस्तारै ॥ मम विश्वास पाइ परिहरै ॥ ९९ ॥ प्रथमहि योग धारणा करै ॥ सीत उष्णसो गहि परिहरै ॥ एसें करि तप पाप निवारै ॥ मंत्रनिग्रह बाधादिक टारै ॥ १०० ॥ भोजन क्षुधा औषधी रोग ॥ यौं तन जतन एकहै योग ॥ कामादिक मानसत्रु विकार ॥ जीतै मम सुमरण आधार ॥ १०१ ॥ मम भक्तनकी सेवा करै ॥ ता परि दंभादिक परिहरै ॥ याविधि विघ्न समस्त निवारै ॥ मेरौ भजन हृदेमैं धारै ॥ १०२ ॥ अरु एके मूढनके राजा ॥ साधैं योग देहके काजा ॥ जो यह देह मिटाई चाहियैं ॥ देहमिटे मेरो पद लहियैं ॥ १०३ ॥ मेरो अंश आतमा एह ॥ याकौं दुष दाता यह देह ॥ ता देह हि जो राष्यौं चहैं ॥ ते आपुहि या भवमें वहै ॥ १०४ ॥ तनके रोग जरादिक टारै ॥ स्वास जीति करि मृत्यु निवारै ॥ अंत मृत्यु होवै कल्पंत ॥ बहुन्यो पावै देह अनंत ॥ १०५ ॥ तातें वृथा करै श्रम मूढ ॥ मेरो भजन न पावै गूढ ॥ तातें मैं हौं संतनि मांहीं ॥ तिनकौ कबहूं आदर नाहीं ॥ १०६ ॥ अरु प्रथमहि जो योगहि करै ॥ विघ्न निवारि भक्ति विस्तारै ॥ ताकौ तन जो निश्चल होई ॥ तोहूं आदर करें न कोई ॥ १०७ ॥ छोडै योग समाधि समेत ॥ गहि ममचरण बढावे हेत ॥ योग मांहि बाढै हंकार ॥ तातें नहिं छूटै संसार ॥ १०८ ॥ तातैं सब तजि मोकौं भजैं ॥ मम अधीन ह्वै आपो तजैं ॥ मम प्रसाद

तें मोकौं पावै ॥ बहुरौ शवदुषमें नहिं आवै ॥ १०९ ॥ जो होवै मेरे आधीन ॥ आपहि मानै सब बलहीन ॥ मैं आधीन होइ ता जनकै ॥ ज्यौं आधीन देह या मनकै ॥ ११० ॥ केवल जो ममसरणहि आवै ॥ ताहीकी सब इच्छा जावै ॥ तातैं विघ्न न आवै कोई ॥ विघ्न तहां जहँ इच्छा होई ॥ १११ ॥ मम आनंद रहै आनंदित ॥ सब देवनको होवै वंदित ॥ तातैं उद्धव एहि करनौ ॥ मेरो भजन हृदयमैं धरनौ ॥ ११२ ॥ जग अरु आप ब्रह्ममय जानै ॥ द्वैत भाव कबहूं नहिं आनैं ॥ ब्रह्मभावतें ब्रह्महि पावै ॥ जन्ममरणके दुख विसरावै ॥ ११३ ॥ ब्रह्म भावनहिं उपजै जोलौं ॥ जन्ममरण दुखमिटै न तोलौं ॥ तातैं ब्रह्मभावकौं करो ॥ दूजो सकल यत्न परिहरो ॥ ११४ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ एसो सुनि श्रीकृष्णसौं, अतिहीं दुष्करज्ञान ॥ पूछ्यो सुगम उपाय तब, उद्धव परमसुजान ॥ ११५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांअष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

॥ दोहा ॥ उनतीसैं अध्यायमैं, आगेको विष्तार ॥ श्रीधर भक्ती योग पुनि, कहे भक्त हित धार ॥ १ ॥ अती क्लेशवत जानिहिय, संपति योग असंग ॥ सुखोपाय पुनि कृष्णसों , पूछ्यो उद्धव अंग ॥ २ ॥ उद्धव उवाच ॥

चौपाई ॥ हेप्रभु तुम यह ज्ञान बषान्यौ ॥ सोतो मैं अति दुष्कर जान्यौ ॥ बशनाहीं इंद्रिय मन जिनकौ ॥ केसैं काज होय प्रभु तिनकौ ॥ १ ॥ जेहैं परमहंस दृढचित्त ॥ तिनकौं ब्रम्हदृष्टिहै नित्त ॥ और जे जे योगि विचारैं ॥ षैंचि षैंचि या मनकौं धारैं ॥ २ ॥ तिनकौ मन बशहोइ न ज्यौं ज्यौं ॥

महाकलेश लहैं ते त्यौं त्यौं ॥ तिनको मनबस होइ न क्यौंही ॥ श्रमकरि जन्म गमावें योंही ॥ ३ ॥
तव पद परमानंद समुद्र ॥ ताको भेद न जानें क्षुद्र ॥ करैं योग यज्ञादिक कर्म ॥ तिनतें कदे
न छूटै भर्म ॥ ४ ॥ यातें गर्व बढे जो करैं ॥ तातैं युग युग जनमें मरैं ॥ केवल भक्त तुमारे जे
ते ॥ परमानंद लहैं सब ते ते ॥ ५ ॥ जबहीं तें तव सरणहि आवैं। तबहीं ते तव चरणनि पावैं॥
तबहीते पूरणसुख पावैं ॥ माया निकट न तिनकौं आवैं ॥ ६ ॥ तातें सहजही जगत मिटावे ॥ तुम चर्ण-
निमें सहज समावैं ॥ तुम ब्रह्मादि सकलके नायक ॥ सब इनकौं प्रभुताके दायक ॥ ७ ॥ तिनके चरण
गहे जे दीन ॥ तुम तिनकौं होवो आधीन ॥ अरु यह कहा अचंभा स्वामी ॥ तुम सबके प्रभु
अंतर्यामी ॥ ८ ॥ तिनकौं सब ताजि सेवै जोई ॥ करै आपवश तुमकों सोई ॥ सीस मुकुटधारीहैं जे
ते ॥ तव पद भुक्ति विचारें ते ते ॥ ९ ॥ रामरूप तुम भए मुरारी ॥ तिन कीने वा नर अधिकारी ॥ वानर
सकल सषा तुम करे ॥ सबहिनके सबहित आचरे ॥ १० ॥ तातें जो तव कृतहि विचारै ॥ सो
क्यौं पल तुम भजन निवारै ॥ तुमहीं नष शिष देह सँवारी ॥ चेतन शक्ति तुमहि पुनिधारी
॥ ११ ॥ सदा रहे तुमरे आधार ॥ तुमहीं तिन प्रतिपालनहार ॥ तो परि जीव तुमहि नहिं जानै॥
कर्त्ता भर्त्ता औरनि मानै ॥ १२ ॥ तोहूं तुम अवगुण नहिं आनौ ॥ बहुविधि जहँ तहँ रक्षा
ठानौ ॥ पुनि जबहीं तव सरणहीं आवै ॥ तब तुमसौं चारौं फल पावैं ॥ १३ ॥ परि तथापि सो
अति अज्ञान ॥ तुमकौं सेई लेइ जो आन ॥ चारपदारथ सेवक ताकैं ॥ तुमरि भक्ति
विराजै जाकै ॥ १४ ॥ एक जहां नहिं तुमरो भजनौ ॥ नरक जानि सोई सो तजनौ ॥ तातें
जो होवै सर्वज्ञ ॥ तुमरे उपकारनिको तज्ञ ॥ १५ ॥ अरु विधि सम आयुर्बल पावै ॥ बहुविधि

प्रत्युपकार बतावै ॥ तोहूं तव अनृणि नहिं होई ॥ ब्रह्माआदि जहांलों जोई ॥ १६ ॥ जो तुम
बाहिर सतगुरु रूप ॥ भीतर चेतन शक्ति अनूप ॥ यौं जीवनिकै पाप निवारौ ॥ आपहि दे
भव संकट टारौ ॥ १७ ॥ तातें भाषे भजनानंद ॥ सहज मिलौं तब छूटे फंद ॥ ए सुनि प्रिय
उद्धवके बयन ॥ बोले कृष्ण कृपाके अयन ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ धन्य धन्य
उद्धव ममभक्त ॥ सब जीवनके हित अनुरक्त ॥ तोसौं कहौं आपनो धर्म ॥ जातें मिटैं सहज
सब कर्म ॥ १९ ॥ करते सुख आगे सुखपावे ॥ छोडि भवभय मोमें आवै ॥ उद्धव कर्मकरे नर
जे ते ॥ मेरेहेत करै सब ते ते ॥ २० ॥ कर्मनिमें भाषै मम नाम ॥ मेरे करि राषैं धनधाम ॥
मोमें अरपैं मनकी वृत्ती ॥ तातें सब आचरणनि वृत्ती ॥ २१ ॥ मेरी प्रीतिकरै जो करै ॥ मेरी
प्रीति रहित परिहरे ॥ जिन देसनिमें मेरे भक्त ॥ तिनकरि बास होइ अनुरक्त ॥ २२ ॥ सुर
अरु असुर नरनिमें जे ते ॥ मेरे भक्त भयहें के ते ॥ तिन तिनके आचरणनि जानै ॥ त्यौंहीं
त्यौं आपै नित ठानैं ॥ २३ ॥ मेरेयज्ञ महोत्सव करै ॥ पर्वणिमैं मिलाय विस्तरै ॥ मेरी जहँ जहँ
यात्रा होई ॥ ताहां ताहां चलिजावै सोई ॥ २४ ॥ गीत नृत्य वाजंत्र करावै ॥ छत्र चमर
आदिक अधिकावै ॥ अति उदारता करि सब ठानैं ॥ ममहित लगै भलो सो जानै ॥ २५ ॥
सब भुतानिमें मोकौ देषैं ॥ अंतर बाहिर एकहि लेषै ॥ आप आदि जग मोमें जानै ॥ ज्यौं
आकाश आनावृत्त मानै ॥ २६ ॥ यों सबमें जानै ममभाव ॥ त्यागे सकल प्रवृत्ति सुभाव ॥
सबहिनकों सतकारहि करै ॥ ज्ञान दृष्टि भेदहि परिहरै ॥ २७ ॥ एके विप्र वेद अधिकारी ॥
२४ एके अंतज महाविकारी ॥ एके विप्रनिके धनहरता ॥ अरु एके धनकै विस्तरता ॥ २८ ॥


एके तेजहीन बहु देखे ॥ तेजवंत एकै बहु पेखै ॥ एकै क्रूर सकल दुखदाई ॥ एके सात्विक सकल सहाई ॥ २९ ॥ इत्यादिक नाना विधिदेषै ॥ परि जो भेद कहूं नहिं लेषै ॥ मेरी दृष्टि सबनिमें आनै ॥ मम जन पंडित ताहि बखानै ॥ ३० ॥ या विधि सबमें मोकौं जानैं ॥ देह भेद कछु वेनाहिं आनै ॥ थौरे कालमांहि ता जनके ॥ सब विकार मिटजावैं मनकै ॥ ३१ ॥ स्पर्धा तिरस्कार हंकार ॥ सकलमिटैं कछु लगै न वार ॥ तातैं देह दृष्टि नहिं धरै ॥ लोक कुटुं-ब लाज परिहरै ॥ ३२ ॥ हासीकरैं सकल ही लोक ॥ परिसो आनै हर्ष न शोक ॥ तिनकी कछु मनमें नहिं आनै ॥ सब जीवनमैं मोकौं जानै ॥ ३३ ॥ षर षच्चर चाडांलनि अंत ॥ जा लौ मेरि श्रष्टि अनंत ॥ नमस्कार तिन तिनकौं करै ॥ दंड समान धरनिमैं परै ॥ ३४ ॥ जा लगि थावर जंगम मांहिं ॥ मेरो भाव होइ थिरनाहिं ॥ त्यौं लगि मन बचन काय समेत ॥ यों सबमें ठानै ममहेत ॥ ३५ ॥ या विधि करत रहे नर जोई ॥ ताकौं सकल ब्रह्ममय होई ॥ मिटै अविद्या विद्या पावै ॥ तातैं बंधन सकल मिटावै ॥ ३६ ॥ उद्धव सकल मतेहैं जे ते ॥ ममरूपहि जानै सब ते ते ॥ उद्धव इसो धर्महै मेरो ॥ कथा प्रभाव कहौं तिनकेरो ॥ ३७ ॥ मन क्रम वचन जहांलों जे ते ॥ वेदमध्यमैं भाषे ते ते ॥ तिनमें एह मतो ममसार ॥ जाते वेगि मिटैं संसार ॥३८॥ अणुरूप प्रगट जो होई ॥ क्यौंहीं बहुरि मिटे नहिं सोई ॥ जहां लगें गुणनिर्मित वस्तू ॥ तहांलगें सब होवै अस्तू ॥ ३९ ॥ मै निर्गुण सबगुणानि प्रकासी ॥ तातें ममधर्महि अविनासी मेरो नास कदे नहिं क्यौंहीं ॥ ममधर्मसु थोरोहूं त्यौंहीं ॥ ४० ॥ अरु उद्धव यह कहा कहीजै ॥ मेरो धर्म कदै नहिं छीजै ॥ उद्धव जो लौकिक व्यवहारा ॥ राजस तामस विविध प्रकारा ॥

॥९३॥

॥ ४१ ॥ जिनतें केवल होइ अनर्थ ॥ प्रवृत्तिहूंकौ मिटे न अर्थ ॥ नरकनि मांहीं डारनहार ॥ काम क्रोध द्वेषादि विकार ॥ ४२ ॥ जे तेऊने मोमें करैं ॥ तोहूं मोहि लहै भवतरैं ॥ जेसें कंस मरण भयकर्‍यौ ॥ मेरो धर्म नहीं आचर्‍यौ ॥ ४३ ॥ परिसो भयहि करी मोमांहीं ॥ ममपद पहूंच्यो भवमें नाहीं ॥ अरु गोपीनि किये व्यभिचार ॥ लंघे वेद तजे भरतार ॥ ४४ ॥ परि बिभिचारसु मोमें कर्‍यौ ॥ तोहू तिन भवसागर तर्‍यौ ॥ अरु जो द्वेषकियो शिशुपाल ॥ जातें जीवन ग्रासे काल ॥ ४५ ॥ परिसोऊ मोमें करि दोष ॥ भवजल तजि करि पहुच्यौ मोष ॥ योविष रूप विकारहि जे ते ॥ मोमें ए अमृत भए ते ते ॥ ४६ ॥ तातें यहि विवेक चतुराई ॥ यही बुद्धि दूजी नहिं काई ॥ जो जूठे सों साचहि लीजैं ॥ पूरणकाज आपनौ कीजैं ॥ ४७ ॥ यह जूठो क्षणभंगुर देह ॥ सकल बिकारनिको है गेह ॥ ताकरि पइयें हरि अविनासी ॥ निर्विकार पूर्ण सुखरासी ॥ ४८ ॥ यह सब ब्रह्मज्ञानकौ सार ॥ जातें मिटै सहज संसार ॥ मै संक्षेप मांहि सब कह्यौ ॥ जातें सार न कहिवे रह्यौ ॥ ४९ ॥ यह नर तन अरु यह ममज्ञान ॥ देवनिकौं दुर्लभहीं जान ॥ जद्यपि जीवलहै नरदेह ॥ तोहूं ज्ञान न पावै एह ॥ ५० ॥ तातें में भाष्यौ निजज्ञान ॥ यातें मोहि लहै तजि आन ॥ उद्धव प्रश्न करी तुम जेती ॥ उत्तर सहित कहीमें तेती ॥ ५१ ॥ ते सब तत्त्व बेदकौ जानौ ॥ मेरो परमरूप करि मानौ ॥ यह तुमरो मेरो संवाद ॥ अध्यातम परमातम वाद ॥ ५२ ॥ ताकौं सुनी हृदयमें धारै ॥ पावै मोहि आपकौं तारै ॥ जो यह मेरो पूरणज्ञान ॥ मेरे भक्तनि देवै दान ॥ ५३ ॥ सो कहिय तुहै मेरो दाता ॥ जहा तहा कहियत विख्याता ॥ जो जो देइ लहै सो सोई ॥ लोक बेद भाषतहै दोई

॥ ५४ ॥ तातें दान देइजो मेरो ॥ में आधीन होइ तिनकेरो ॥ मोहि देइ सो मोकौं पावै ॥
तिनकौं ले मोमांहि समावै ॥ ५५ ॥ जो जन याकौं नितहीं पढै ॥ ता जनको मोसों हित बढै ॥
 सो जनमेरो अतिप्रिय होई ॥ ताके सम दूजो नहिं कोई ॥ ५६ ॥ जो यह सुनै नितहि करि
सादर ॥ और सकलकौ करै अनादर ॥ सो कर्मनिसौं लिप्त न होई ॥ मेरी भक्ति लहै दृढ सोई ॥ ५७ ॥
में यह परमज्ञान उचार्यो ॥ उद्धव तुम कछु हृदये धार्यो ॥शोक मोह भय भयो निवर्त ॥
निश्चल भयो हृदय आवर्त्त ॥ ५८ ॥ उद्धव यह मेरो है ज्ञान ॥ सो मतिजानौ मोतें आन ॥ तातें
दंभसहित जो होई ॥ नास्तिक कलह कुवासा सोई ॥ ५९ ॥ प्रीति न जानैं नहिं ममभक्ती ॥
दुर्विनीत विषयनि आशक्ती ॥ तिनकौं ज्ञान न देनौ एह ॥ ज्यौं कल्लर भूबजिरु मेह ॥ ६० ॥
इन दोषनि करि होइँ विहीन ॥ मेरे भक्त प्रीति दृढदीन ॥ इस्त्री सूद्र इसो जो होई ॥ तिनहीसौं
अंतर नहिं कोई ॥ ६१ ॥ ऐसी विधि सुज्ञान हिकहियैं ॥ तो तिन सहित परमपद लहियैं ॥
जो यह मेरो जानै ज्ञान ॥ ताहि जानवो रह्यो न आन ॥ ६२ ॥ ज्यौं कोई पीवै पीयूष ॥
ताके दुजी रहै न भूष ॥ ज्ञानरु कर्म जोग अष्टांग ॥ कृषि वाणिज्य नीति सब अंग ॥ ६३ ॥
अर्थरु धर्म मोष अरु काम ॥ इन सबहिनको मोमें धाम ॥ तातें आवै मोमें जोई ॥ इन सबहि-
नकौं पावै सोई ॥ ६४ ॥ मेरो जन कछू न लेवै ॥ सकल त्याग करि मोकौं सेवै ॥ तातें साध्यरु
साधन जे ते ॥ ममजन देषे मोमें ते ते ॥ ६५ ॥ सब ताजि जब चरणानि मम सेवै ॥ आपनि
वेदै कछु नहिं लेवै ॥ ताकै समदूजो प्रिय नाहीं ॥ सो नित मोमें में तामांहीं ॥ ६६ ॥ जब सुनि एसैं हरि- 
के बैन ॥ उद्धव अश्रुकुलाकुल नैन ॥ आगे ठाढौ अंजुलि बंध ॥ प्रेममगन तन मन दृढ संध ॥ ६७ ॥

बैनहुतें बोल्यौ नहिं जावै ॥ कंठहु तैं गदगद सुरु आवै ॥ तातैं उद्धव चुपकरि रहै ॥ कछु बेर कछु बैन न कहै ॥ ६८ ॥ बहुऱ्यौ जित्तथंभ करि धीरज ॥ पूरण प्रेम भयौ अब कीरज ॥ निश्चल आपुकृता रथ मान्यौ ॥ सब संदेह हृदेतें भान्यौ ॥ ६९ ॥ हरिके चरणनि माथे धाऱ्यौ ॥ उद्धव भक्त वचन उचाऱ्यौ ॥ जिनतें हरि सो बाढे प्रेम ॥ जिनसौं कहि सुनि उपजै क्षेम॥७०॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ ॥ नाथ अजन्मा अरु अविनासी ॥ परमानंद परम परकासी॥ मैं तव सन्निधान जब आयौ ॥ तबहीं सब अज्ञान मिटायौ ॥ ७१ ॥सान्निधान पावकके जावै ॥ सहज हितम भयसीत गमावै ॥ अरु तापरतुम परम दयालु ॥ मो निजजनपर भये कृपालु ॥ ७२ ॥ यह विज्ञानदीप मुहि दीनौ ॥ जातें सकल शुभाशुभ चीनौ ॥ तुमरै चरण सरण भुवमांहीं ॥ दुजो ठौर कदे सुख नाहीं ॥ ७३ ॥ जो कोई तुम कृतकौं जानै ॥ अरु तो परि भवकौं दुखमानै ॥ जो तुम चरण सरण नहिं आवै ॥ तो दूजै कहँते सुख पावै ॥७४ ॥ प्रभुजी तुम अतिकरुणा करी ॥ मम माया फासी परिहरी ॥ सकल जादवनिमांहिस्नेह ॥ अरु जुवत सुत वित ग्रह देह ॥ ७५ ॥ ए सब मेरे मनतें टरै ॥ अपने चरणकमलचित धरै ॥ तुम विस्तार अपानी माया ॥ जिन यह सकल जगत भरमाया ॥ ७६ ॥ सो तुम ज्ञान षड्गसौं छेदी ॥ व्है कृपाल निजप्रीति निवेदी ॥ नमोनमस्ते ज्ञान प्रकासी ॥ योगेस्वर ईस्वर अविनासी ॥ ७७ ॥ दीजैं मोहि एकवर देवा ॥ निश्चल हृदय तुमारी सेवा ॥ तुमहि छोडि दूजो नहिं जानौं ॥ परि सेवक व्है सेवा ठानौं ॥ ७८ ॥ मोहि प्रसाद दीजिये एह ॥ तुमसौं निश्चल बढै सनेह ॥ यों करि विनति उद्धव भक्त ॥ बोलैं हरिजी व्है अनुरक्त ॥ ७९ ॥ ॥श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥

तथा अस्तु उद्धव ममभक्त ॥ ममचरणनि निश्चल आसक्त ॥ अब तुम उद्धव ऐसी करौ ॥ लोकनिकौं शिक्षा विस्तरौ ॥ ८० ॥ बदरिषंड आश्रम है मेरौ ॥ अति पुनीत दर्शन तिनकेरौ ॥ तहँ तीरथ ममचर्णनिकौ जल ॥ दरसपरस अस्नान हरेमल ॥ ८१ ॥ नाम अलक नंदा सो गंगा ॥ निर्मल करै दरस सब अंगा ॥ जहां जाइ तुम वासा करौ ॥ फल भच्छान तन बलकल धरौ ॥ ८२ ॥ द्वंद्वसीत उष्णादिक सहौ ॥ विनयादिक सुभलक्षण गहौ ॥ इंद्रियके अर्थनि परिहरौ ॥ यह विज्ञान ज्ञान उरधरौ ॥ ८३ ॥ मोतें सिखे ज्ञान तुम जोई ॥ बैठि एकांत विचारो सोई ॥ बचन चित्त सब मोमें धरौ ॥ मेरो धर्म सदा विस्तरौ ॥ ८४ ॥ तब गुण तीनोकों परिहरि हौ ॥ मम निर्गुण पदकों अनुसरिहौ ॥ यह उद्धव प्रतिज्ञा मेरी ॥ फिरि उत्पत्ति न व्है है तेरी ॥ ८५ ॥ याविधि कृष्ण वचन उचारे ॥ ते उद्धवले मस्तक धारे ॥ चरणनि परि प्रदक्षिणा दीनी ॥ तब चलवेकी इच्छाकीनी ॥ ८६ ॥ जद्यपि द्वंद्व हृदे नहिं आवे ॥ तोहूं हरिजी तजे न जावे ॥ अश्रुकंठ अति आतुर बुद्धी ॥ तन्मय भयौ न तनकी सुद्धी ॥ ८७ ॥ कृष्णवियोगनि क्यौं करिसहैं ॥ वारवार चलि फिरि फिरिरहे ॥ तब अंतर जामी गोपाल ॥ जनकौं जानै प्रेम विहाल ॥ ८८ ॥ निकट बुलाइ मिले दे अंग ॥ ज्ञान रूप कीने सर्वंग ॥ तब आपनी पावरी दीनी ॥ ते उद्धव जन माथे लीनी ॥ ८९ ॥ तोहू प्रमथहि कृष्णपधारै ॥ जादव ले परभास सिधारैं ॥ तबहि तहां उद्धव चालि आये ॥ कृष्ण एकही बैठे पाये ॥ ९० ॥ पुनि मैत्रेय पधारे तहां ॥ कृष्णदेव बैठे थे जहां ॥ दुहूंकियो हरिकौं परनाम ॥ दर्शन पायो अति अभिराम ॥ ९१ ॥ ठढे भए जोरि कर दोई ॥ प्रेममग्न कछु कहै न कोई ॥

तब तिनकौं हरिभाष्यौ ज्ञान ॥ जैसैं अंधकारकौं भान ॥ ९२ ॥ मैत्रेयकौं दीनौ आदेस ॥
विदुरहि कहियौ यह उपदेस ॥ आग्यादीनी उद्धव जनकौं ॥ अपनी शक्ति कियो थिर मनकौं
॥ ९३ ॥ तब उद्धव हरिचरणनि परे ॥ हरिहृदये निश्चल करि धरे ॥ पुनि उद्धवजन पहुचे
तहां ॥ नरनारायण प्रगटे जहां ॥ ९४ ॥ तहां जाइ कीने आचरण ॥ जे जे हरिभाषे ते करण ॥
बलकल अंबर फल आहार ॥ प्रेममग्न नित ब्रह्मविचार ॥ ९५ ॥ तब त्रय गुण बिस्तार मिटायौ ॥
उद्धव ब्रह्म निरंजन पायौ ॥ यह हरि उद्धवको संवाद ॥ हरिजीको है परम प्रसाद ॥ ९६ ॥
जाकौं कृपाकरे सो पावे ॥ तजि भवसिंधु ब्रह्ममें जावे ॥ जबतें याकौं भाषे सुनै ॥ प्रेमसहित
हृदयेंमें गुनैं ॥ ९७ ॥ तबतें पावे परमानंद ॥ श्रमही विना मिटै दुषद्वंद ॥ यह स्वयमेव आप
हरिकह्यौ ॥ जामें कछु संदेह न रह्यौ ॥ ९८ ॥ यामें एसो कृष्ण प्रभाव ॥ मिटे जगत उपजै हरिभाव ॥
जिन हरि प्रगट अमृत द्वै करे ॥ भक्तिनि पाइ सकल दुषहरे ॥ ९९ ॥ एक जलधितें अमृत उपा-
यौ ॥ निजाधीर देवनिकौं पायौं ॥ जरा रोग आदिक दुषहरै ॥ बल उपजाइ विगत भयकरै
॥ १०० ॥ अरु दूजो यह अमृत एक ॥ वेद सिंधुतें ब्रह्मविवेक ॥ सो आपनें जन निकौं पायरो ॥
जन्म मरण भव भयहि मिटायौ ॥ १०१ ॥ ऐसैं आदिपुरुष अविनासी ॥ सुनत मिटे जिनही
भवफासी ॥ कृष्णराम लीनौ अवतार ॥ तिनकौं वंदन वारंवार ॥ १०२ ॥ ॥

दोहा ॥ ऐसौ श्रुनि शुकदेवसौं, परम तत्त्व उपदेश ॥ कृष्णकथाके प्रेमसैं,
कीनौं प्रश्न नरेस ॥ १०३ ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभ-

गवदुद्धवसंवादेभाषायांउद्धवमुक्तिनिरूपणंनामएकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः॥ ॥ २९ ॥ ॥ इतिभगवदुद्धवसंवादसंपूर्ण ॥



दोहा ॥ ॥ इच्छाहै निजधामकी, मूशल छलकौं धार ॥ कहत तीसवें ध्यायमें, यदुकुलको संहार ॥ १ ॥ प्रथम सुनी संक्षेपजो, अबपूछीं बिस्तार ॥ श्रीधर कथाऽवसानमैं नृपप्राति श्रीशुकसार ॥ २ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हेप्रभु हरिकी कथा सुनावो ॥ कर्णपूट अमृत यह पावो ॥ हरि उपदेश उद्धवहि दीनौ ॥ पीछै आप कहा तिन कीनौ ॥ १ ॥ यादव कुलकों प्रगटौ श्राप ॥ हरिजी कहाकर्‍यौ तब आप ॥ ईश्वरकौं बाधा नहिं कोई ॥ अरु द्विजशाप न मिथ्या होई ॥ २ ॥ सबके तन मन मोहन देह ॥ परमानंद सुधाको गेह ॥ जो नारी हरि दर्शन पावैं ॥ तिनसौं नैन न षेंचे जावें ॥ ३ ॥ अरु जे हरिके रूपहि गावै ॥ बानी सहित मानते पावै ॥ अरु जे सुनिकरि हृदये धरै ॥ ते पलको नहिं छोडे परै ॥ ४ ॥ भारतमें अर्जुन रथमांहीं ॥ बैठे दर्श लहै जा जाहीं ॥ तिन तिन हरिकी समता पाई ॥ सब संसृति ततकाल गमाई ॥ ५ ॥ ऐसो तन हरि त्याग्यौ कैसैं ॥ कोई हरै नागमणि जैसैं ॥ ऐसैं वचन कहे नर देव ॥ उत्तर दीनौ श्रीशुकदेव ॥ ६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ ॥ चौपाई ॥ द्वारावति ऊठे उत्पात ॥ तिनकौं देषि कही हरिबात ॥ उग्रसेन आदिक सबलोक ॥ सभा सुधर्मा हर्ष न सोक ॥ ७ ॥ तिनसौं कृष्णवचन उचारे ॥ हरिको मर्म न लषे विचारे ॥ निजमायासों मोहित करे ॥ ज्ञान विवेक सबानिके हरे ॥ ८ ॥ ॥श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हेयादवो सुनो मम बात ॥ द्वारावती बहुत उत्पात ॥ ए उत्पातहि मृत्यु निसा

ना ॥ तातैं तजिये यह अस्थाना ॥ ९ ॥ युवती बाल वृद्ध सब जे ते ॥ संखोद्धार पैठेयें ते ते ॥
औरो सकल प्रभासहि जैयें ॥ तहँ पश्चिम सरस्वति अहैयें ॥ १० ॥ करी स्नान तन निर्मल
करियें ॥ सुद्ध हृदय तीरथ वृतधरियें ॥ जे जे बहुत पितृ अरु देवा ॥ तिनकी करियें पूजा सेवा
॥ ११ ॥ अरु विप्रनकी पूजा कीजैं ॥ करि सन्मान दान बहू दीजैं ॥ गाइ भूमि सोसों वस्त्रादी ॥
हय हाथी रथ अन्न गृहादी ॥ १२ ॥ आशीर्वाद द्विजनको लीजैं ॥ जातें विघ्न सकल हू
छीजैं ॥ देवरु विप्र गाइकी पूजा ॥ पापहरण विधि धर्म न दूजा ॥ १३ ॥ ऐसी सुनि हरि-
जीकी बानी ॥ सब यादवनि भलीकरि मानी ॥ नावनि बैठि सिंधुतें उतरै ॥ चढि करि रथनि
प्रयाणौ करै ॥ १४ ॥ ज्यौं हरि तिनकौं आग्यादीनी ॥ त्यौं बसनि सबै विधिकीनी ॥ करि अस्नान
धर्म बहुठानैं ॥ मध्य प्रभास आप बहूमानैं ॥ १५ ॥ तब तिनकीयौ मदिरा पान ॥ जातें भूलिगयेसब
ज्ञान ॥ तबते मत्त सकलहीं भये ॥ हरि माया विवेक हरिलये ॥ १६ ॥ तिनमैं कलह भयौ उत्पन्न ॥ सब-
में प्रगटे हरि प्रछन्न ॥ तब तिनकी ता सभा मझारी ॥ सात्याकि वीर गिराउच्चारी ॥ १७ ॥ कृत-
वर्माको करि अपमान ॥ सात्यकि छोडे बाणीबान ॥ भाई जो क्षत्रिय तनधारी ॥ अरु बहुमें कहियें
अधिकारी ॥ १८ ॥ सो ऐसी क्यौं करै ॥ सोबत बालनिकै सिरहरै ॥ यह प्रद्युम्नवचन सत
कार्‍यौ ॥ कृतवर्माकौं अति धिकार्‍यौं ॥ १९ ॥ तब कृतवर्मा कीनौ क्रुद्ध ॥ वाणीबाण प्रकास्यौ
जूद्ध ॥ अरे करे क्षत्रियको ऐसी ॥ व्याध क्रूरतें कीनी जैसी ॥ २० ॥ भूरीश्रवा निरायुध
भयौ ॥ जाकौ बाहु जुलग कटि गयौं ॥ ताकौ वधतें कीको एसैं ॥ व्याध कसाइ
२५ करै नाहिं जैसैं ॥ २१ ॥ तब सात्यकि उठि बोलै बानी ॥ सूनोसूनोहे सारंगपानी ॥

इनको यश अरु आयु सरायौ ॥ तातैं इसौ मतो ह्वै आयौ ॥ २२ ॥ एकहि वचन षड्ग तिनकाढयौ ॥ कृतवर्माकौ मस्तक बाढयौं ॥ यद्यपि सबमिलि बहुत निवान्यौं ॥ तोंहूं सात्यकि क्रोध न टान्यौं ॥ २३ ॥ तातैं सकल भये ते क्रुद्ध ॥ सात्यकिहीसो ठान्यो युद्ध ॥ तातैं सकल भए द्वै ओर ॥ युद्ध रच्यौ सागरतट घोर ॥ २४ ॥ केई धनुष बानसौं लैरैं ॥ केई षड्गगहें संहरैं ॥ केई फरसी गदा कुठार ॥ केई ले हसि हाथप्रहार ॥२५॥ केई गुरंज गोफना केई ॥ वृक्षादिकनि लैरैं ते तेई ॥ हरषित सबै करैं संग्राम ॥ बैठे देखैं कृष्णरु राम ॥२६॥ हायसौं हयहाथीसो हाथी ॥ रथसो रथ साथीसौं साथी ॥ खरसौं खर ऊंठे ऊंठैनिसौं ॥ महिषरु महिष बैल बैलनिसौं ॥ २७ ॥ षचरसौं षच्चरमिलि लैरैं ॥ नरसो नरसौं नरमिलि युद्धहि करैं ॥ महामत्त ह्वै लरहिं ऐसे ॥ युद्ध करै बनमैं गज जैसैं ॥ २८ ॥ सांब प्रद्युम्न न ठान्यो युद्ध ॥ त्यौं अक्रूर भोज अतिक्रुद्ध ॥ अरु संग्राम जीत सुभद्र ॥ करैं युद्ध वीरनकौ भद्र ॥ २९ ॥ गदसे नाम कृष्णको भ्राता ॥ नामसु चारु पुत्र विख्याता ॥ त्यौं सात्यकिसौं मिलि अनिरुद्ध ॥ सुरथ सुमित्र करैं मिलियुद्ध ॥ ३० ॥ उल्मुकनि सठ सहस्र सतजीत ॥ जोधा भानु आदि अमीत ॥ आपु आपुमैं युद्धहि ठानैं ॥ हरिकरि मोहित कछु नाहिं जानैं ॥ ३१ ॥ वृष्णिवंश दाशारहवंश ॥ सात्वत अंधक भोजवतंश ॥ अर्बुद सूरसेन मधुमाथुर ॥ देश विसर्जन कुंतय कुकुर ॥ ३२ ॥ आपु आपुमिलि युद्धहि ठान्यौ ॥ सबनि परस्पर सुहृदय भान्यौ ॥ पुत्र पिता भाई अरु भाई ॥ मामा अरु भानेज लराई ॥ ३३ ॥ काके भतिजे नाती नाना ॥ मित्र मित्रमिलि युद्धहि ठाना ॥ सुहृद सुहृद ज्ञातिनसौं ज्ञाती ॥ सबमिलि भए परस्पर घाती ॥ ३४ ॥ तब सरक्षीण भए सब तिनके ॥ टूटे धनुष तथा सब जिनके ॥

आयुध सकल छीन जब भए ॥ तब तिन करनि ऐरकालए ॥ ३५ ॥ भइ मूसल चूरणतैं जेतें ॥ वज्रसमान सिंधुतट ते ते ॥ सकल करनि करिलीनै ॥ हरिसौं युद्ध क्रोधहीं कीनै ॥ ३६ ॥ रामकृष्ण बहुभांति निवारै ॥ परितें मुरख कछु न विचारै ॥ रामकृष्णकौं रिपुकरि जानै ॥ युद्ध बुद्धि अंतर्गत आनै ॥ ३७ ॥ तब आपहूं कियो तिनकोप ॥ कऱ्यौ चहैं सबहिनको लोप ॥ तब ऐरका करनि तिनलिये ॥ थोरे मांहि प्रलय सबकीये ॥ ३८ ॥ विप्रशाप आच्छादित करैं ॥ हरिमाया विचार सबहरै ॥ प्रकटक्रोध अग्निक तहँ भयो ॥ वांसविपिन कुलजरि मरि गयौ ॥ ३९ ॥ तब कुल सकल नष्ट हरि देख्यौ ॥ भूको भार उताऱ्यौ लेख्यौ ॥ जाकारण लीनौ अवतार ॥ सो परिहऱ्यौ धरणिको भार ॥ ४० ॥ तब समुद्रतटमें बलिभद्र ॥ कीनौ ब्रह्मध्यान अतिभद्र ॥ आपुहि ब्रह्ममांहि लेराख्यौ ॥ मानव देह दूरिकरि नाख्यौ ॥ ४१ ॥ रामप्रयाण लख्यौ हरि जबहीं ॥ लघुपिप्पलतलि बैठे तबहीं ॥ निर्मलरूप चतुरभुज धाऱ्यौ ॥ दशहु दिशाको तिमिर निवाऱ्यौ ॥ ४२ ॥ ज्यौं बिनधूम अनल परकासा ॥ ऐसो प्रगटहि भयो उजासा ॥ पीतवसन नूतन घनस्याम ॥ तप्तहेम सोभा अभिराम ॥ ४३ ॥ सुंदरहाससहित मुखपद्म ॥ कमलनयन सोभाके सद्म ॥ कर्णनि कुंडल मकराकार ॥ शीसमुकुट सोभा अधिकार ॥ ४४ ॥ रुचिर नील शिरकेश विसाल ॥ उर भृगुलता मणी बनमाल ॥ गलकौस्तुभ कटिसूत्र विराजे ॥ छुद्रघंटिका नूपर राजै ॥ ४५ ॥ बहु आभूषण भूषण अंग ॥ देखत मोहे अमित अनंग ॥ आयुध मूरतिवंत समस्त ॥ तजि नहि होई भय अस्त ॥ ४६ ॥ उत्तम चरणकमल सुमरि आरक्त ॥ जिनकौं उर ध्यावै नितभक्त ॥ दक्षिण जंघानीचै कऱ्यौ ॥ वाम चरण ता उपर

धर्‌यौ ॥ ४७ ॥ यौ निश्चल ह्वै बैठे कृष्ण ॥ सुमर तजि नाहि मिटै भव तृष्ण ॥ अतिलघु मूशल
षंडजु रह्यौ ॥ जलमें डार्‌यौ मच्छहि गह्यौ ॥ ४८ ॥ सो वह मच्छ जालमैं आयौ ॥ ताके उदर
लोहसो पायौ ॥ जरा व्याध भलकासो कीनौ ॥ लेकरि शरके आगै दीनौ ॥ ४९ ॥ सो वह
व्याधहुतो बनमांहीं ॥ हरिको पद तिन जान्यो नाहीं ॥ हरिको चरण दृढ जब पर्‌यौ ॥ मृग
मुष जाति घात तिन कर्‌यौ ॥५० ॥ सोई बाण लगायो चरण ॥ विप्रवचन नहिं मिथ्या करण ॥
सो वह बाधिक निकट चालि आयौ ॥ रूप चतुर्भुज दर्शन पायौ ॥ ५१ ॥ चरणलग्यौ तब
देष्यौ बान ॥ जराभयो तब मृतक समान ॥ चरणनि परि बोल्यो भयभीत ॥ कंपत अंग
लग्यो ज्यौं सीत ॥ ५२ ॥ हेप्रभु मैं कीनौ अपराध ॥ तुमहि न जान्यौ मूरख व्याध ॥ यह मैं
कीनौ सकल अजानै ॥ बान चलायौ मृगमुष जानै ॥ ५३ ॥ यह अपराध तुमहिप्रभुटारौ ॥ जे तुम नाम
लियेतें तारौ ॥ तुम सुमरण सब पाप विनासै ॥ मिटि अज्ञानहि ज्ञान प्रकासै ॥ ५४ ॥ ब्रह्मआदि
करें आराध ॥ तिनको मैं कीनौ अपराध ॥ तातैं प्रभुजि बिलंब न करौ ॥ मो पापीके प्राणनि हरौ ॥ ५५ ॥
जातैं बहुरौं करौं न ऐसो ॥ यह अपराध कर्‌यौ मैं जैसो ॥ जिनकी मायाकौ विस्तार ॥ ब्रह्मा
शिव सनकादिकुमार ॥ ५६ ॥ औरै श्रुति दृष्टाहैं जे ते ॥ क्यौंही जानिसकैं नहिं ते ते ॥
मोहित सकल तुमारी माया ॥ तातैं किन्हूं पार न पाया ॥ ५७ ॥ तिनकौं पापयोनि हम जे
ते ॥ कौन भांतिकरि जानै ते ते ॥ तातैं अब दूजी न विचारौ ॥ बेगी मो पापीकौं मारौ ॥ ५८ ॥
ऐसी जरा बधिककी बानी ॥ सुनि निहकपटहि सारंगपानी ॥ तब प्रभु आप वचन उचार्‌यौ ॥ ॥९८॥
ताकौ सकल सोकभय टार्‌यौ ॥ ५९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उठ उठ जराभयहि मति

आनौ ॥ अपनो कर्यौ पाप मति जानौ ॥ यह समस्त लीलाहै मेरी ॥ यामें कहा शक्तिहै तेरी
॥ ६० ॥ मेरी कृपा जाई तूं स्वर्ग ॥ जहां महासुष नहिं उपवर्ग ॥ ऐसें बचन कहै हरि जबहीं ॥
ढर्यौ विमान स्वर्गतें तबहीं ॥ ६१ ॥ तीन परीक्रम अरु परनाम ॥ करिकें बधिक गयो सुरधाम ॥
चढि विमान स्वरलोकही गयौ ॥ जय जय शब्द जहां तहँ भयौ ॥ ६२ ॥ तब रथ लिये सारथी
देषै ॥ परि हरिजीकौं कहूं न पेषै ॥ तुलसी गंध पवन जब पायौ ॥ ताकौं षोज कृष्णपें आयौ
॥ ६३ ॥ पिप्पलमूल कियो हे आसन ॥ प्रभा मनहू शशिसूरहुताशन ॥ आयुध आगे
मूरतिवंत ॥ यो देषेनिजपति भगवंत ॥ ६४ ॥ तव दारुक धीरज नहिं कर्यौ ॥ रथ तजि
विन्हल चरणनि पर्यौ ॥ उमग्यौ हृदय नैनजल छाये ॥ प्रेममगन मुषबैन न आये ॥ ६५ ॥
तबकरि धरिज आंसु निवारै ॥ करुणासहित वचन उच्चारै ॥ हेप्रभु में तुमचरण न देषे ॥ ते
पल पलक कलपकरि लेषे ॥ ६६ ॥ जबतें नष्ट दृष्टमें भयौ ॥ सबदुष एकवार अनुभयौ ॥ भूलि
दिशान कहूं सुषपायौ ॥ ज्यौं उडुपति निसिमांहि छिपायौ ॥ ६७ ॥ तुम बिनमें ज्यौं तनबिन
प्रान ॥ जैसे नैन अंधबिन भान ॥ एसें वचन कहतही सूत ॥ देष्यौ एकचरित
अदभूत ॥ ६८ ॥ गगनहुतें उत्तम रथआयौ ॥ हयनि सहित अरु गरुड सुहायौ ॥ मूर्तिवंत
हरि आयुध जे ते ॥ रथमें जाइ चैढ सब ते ते ॥ ६९ ॥ यह चरित्र दारुक जब देष्यौ ॥ विस्मय
भयौ अचंभा लेष्यौ ॥ तब हरि सूतहि बचन सुनाए ॥ करि सन्मान दुःख विसराए ॥ ७० ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ सूत द्वारिकाकौं तुम जावौ ॥ समाचार सब जाइ सुनावौ ॥
सबकौ मरण राम निर्याणो ॥ अरु मैंहुं अब करत प्रयाणो ॥ ७१ ॥ द्वारावती रहो मतिकोई ॥

तनके धारि जहालौं जोई ॥ यह नरलोक तजौं में जबहीं ॥ सिंधु द्वारिका बोरै तबहीं
॥ ७२ ॥ हमरै मातपितादिक जेई ॥ ले अपने लोकानि ते तेई ॥ दिल्ली जईयो अर्जुन संगा ॥
 रहे द्वारिका ह्वै हो भंगा ॥ ७३ ॥ तिनकौं यह संदेश सुनावौ ॥ अरु तुम मम धर्मनि मन
लावौ ॥ मम मांया रचना जानौ ॥ नाम रूप सब मिथ्यामानो ॥ ७४ ॥ क्षणभंगुर सब नाना
रूप ॥ निश्चल जानौ मोहि अनूप ॥ जहँ तहँ व्यापक मोकौं जानौं ॥ नाम रूप मम मायामानौ
॥ ७५ ॥ मेरे चरण निरंतर भजौ ॥ दूजी सकल वासना तजौ ॥ ऐसें ह्वै आवो मोमांहीं ॥ जातें
फिरि दुष पावौ नाहीं ॥ ७६ ॥ यह सुनि सूत कृष्णसों ज्ञान ॥ छोडे सोक मोह भय आन ॥
नमस्कार करि वारंवार ॥ प्रदक्षिणादे विविध प्रकार ॥ ७७ ॥ हरि बियोगतें अतिदुष पायो ॥
ज्ञानविचार चित्त ठहरायौ ॥ हरिके चरणकमल चितधारै ॥ तब दारुक द्वारिका पधारै ॥ ७८ ॥
दोहा ॥ यह नृपमैं तुमसौं कह्यौ, यदुकुलकौ संहार ॥ अब भाषौं हरिको गमन, अरु
हरिजन उद्धार ॥ ७९ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीशुकपरी-
क्षितसंवादेभाषायांबलदेवनिर्याणोनामत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ ॥
॥ दोहा ॥ ॥ कृष्णपधारे धामकौं, एकतीसवेंऽध्याय ॥ तिनके पीछै प्रीतितें, वसु-
देवादिक जाय ॥ १ ॥ हरिभजनके हेतकौं, लीला विग्रहरूप ॥ श्रीधरभजे
सुभावतें, तजै अंध भवकूप ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ तब ब्रह्मा 
सनकादिनि लिये ॥ भृग्वादिकनि तथा संगकिये ॥ सहित भवानी शंकरदेव ॥ इंद्रादिक अरु

सुर उपदेव ॥ १ ॥ विद्याधर किन्नर गंधर्व ॥ पितर महोरग चारण सर्व ॥ गरुड लोक पंक्षी अरु सिद्ध ॥ हरिके दर्श कामनाविद्ध ॥ २ ॥ सबमिलि हरिदर्शनकौं आए ॥ सब मिलि हरिके दर्शन पाए ॥ हरिके जन्म कर्म गुन गावैं ॥ सबमिलि जय जय शब्द सुनावैं ॥ ३ ॥ सकल विमाननि छायौ गगन ॥ वरषें पुष्प प्रेमकरि मगन ॥ वारंवार करैं परनाम ॥ मुषतें भाषें हरिको नाम ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक सब कृष्णाविभूती ॥ कृष्णाहि करि तिनकी उदभूती ॥ ते समस्त देषै भगवान ॥ नैन मुंदित बठान्यौ ध्यान ॥ ५ ॥ ब्रह्मरु आप एककरि ध्यायौ ॥ द्वैतभाव सब दूरि बहायौ ॥ निजतन लोकनिकौ अभिराम ॥ ध्यान धारणा मंगलधाम ॥ ६ ॥ ताकौं अग्नि धारणा करि ॥ अग्निउपाय भस्मसो करि ॥ तब हरिजी वैकुंठ सिधारे ॥ याविधि सबके कारज सारे ॥ ७ ॥ तब दुंदुभि बाजे सुरलोक ॥ उपज्यौ हर्ष मिट्यो भयशोक ॥ सत्यरु कीरति धीरज धर्म ॥ सोभा अरु जे उत्तमकर्म ॥ ८ ॥ ते सब गए संग जगदीश ॥ जातें हरि सबहिनके ईश ॥ तातें जहांकथाहरिजीकी ॥ पूजाध्यानधारणानीकी ॥ ९ ॥ तहांसमस्तरहैंतेईते ॥ इत्यादिक सब विधि जेईते ॥ ब्रह्मा आदि सकल सुरजेते ॥ हरिकी गती न जानैं ते ते ॥ १० ॥ हरि वैकुंठ प्रयाणो कर्‍यौ ॥ सो किनहूंकौं जान न पर्‍यौ ॥ कहूं नहीं तिन हरिकौं देख्यौ ॥ बडो अंचभा सबहि न लख्यौ ॥ ११ ॥ जेसैं मेघ होइ आकाश ॥ अरु दामनी प्रगट घनपाश ॥ ह्वै करि प्रगट गुप्त ह्वै जावैं ॥ ताको षोज न कोई पावै ॥ १२ ॥ त्यौं हरिकियो प्रयाणो जबहीं ॥ काहू तिनहीं न देख्यौ तबहीं ॥ भूमें प्रगट हुते तब देखे ॥ गुप्त भए किनहूं नहिं पेखे ॥ १३ ॥ हे नृप एह अचंभा नाहीं ॥ शक्ति अनंत सदा हरिमांहीं ॥ यदुकुलमैं हरिकौ अवतार ॥ अरु

करिवौ नाना व्यवहार ॥ १४ ॥ सो समस्त माया करि जानौ ॥ हरिकी शक्ति होत सब मानौ ॥
हरिजी सदा एक रस रहै ॥ कर्म न करै जन्म नहिं गहै ॥ १५ ॥ औरै कर्म करत सह जानैं ॥
जन्मलियौ हरिजीको मानैं ॥ ए सब देहनिके व्यवहार ॥ हरिजी इन सबहिनके पार ॥ १६ ॥
जैसैं नटबाजी विस्तारे ॥ बहुर्यौ आपहि सकल निवारैं ॥ बाजीगरहि सकलतै न्यारा ॥
यौं हरि कर्म अरु अवतारा ॥ १७ ॥ जिन हरि रच्यौ त्रिगुण संसारा ॥ नानाभांति प्रगट आकारा ॥
आप प्रवेश कियौ तिन तिनमें ॥ सब बरताइ बिनासै छिनमैं ॥ १८ ॥ अंत आपकै आप
हि रहैं ॥ त्यौंहीइन अवतारनि गहै ॥ गुरुको मृतक पुत्र जिन आन्यौ ॥ काल मृत्यु
को गर्वही भान्यो ॥ १९ ॥ ब्रह्मशस्त्रतै तुमहिं बचायो ॥ बधिकोहि स्वर्ग सदेह पठायो ॥
तेजो अपनी रक्षाकरते ॥ तो तिनकौं काहे परि हरते ॥ २० ॥ सब जगकी उत्पत्ति
प्रतिपाल ॥ नासकरै जिनकै बलकाल ॥ ऐसैं सकल शक्तिमय देवा ॥ ब्रह्मा आदिकरैं जा
सेवा ॥ २१ ॥ हरिवेकौं धरनिको भार ॥ धर्यो हु तौ मानुष अवतार ॥ तासौं भूको भार उतार्यो ॥
पीछेउहै दूरिकरि डार्यौ ॥ २२ ॥ ज्यौं कांटो लाटो पगमांहीं ॥ सो काटे बिन निकसे नाहीं
कांटे कांटो काढ्यो जबहीं ॥ सोऊ डारिदियो पुनि तबहीं ॥ २३ ॥ त्यौं हरि मृतक देह क्यौं
राषै ॥ निजानंद पदसौं नाषैं ॥ अरु एके अतिही अज्ञान ॥ तिनकौं प्रगट दिषायौ ज्ञान ॥ २४ ॥
योग साधिकरि राषे देह ॥ पुरुषारथ करि मानैं एह ॥ सकल विकारनिको आगार ॥
ताकौं राषितजैं सुख सार ॥ २५ ॥ तातैं तिनको मोह मिटायौ ॥ देह तजे तें ब्रह्म बतायो ॥
ऐसैं तनकौ कियो अनादर ॥ तातैं कोई करै नहिं आदर ॥ २६ ॥ तातैं हरि वैकुंठ पधारे ॥

बाजी ज्यौं देहादि निवारे ॥ ब्रह्मा हर इंद्रादिक जे ते ॥ देषि प्रयाणो हरिको तेते ॥ २७ ॥ विस्मय भए कृष्ण गुणगावें ॥ अपनें अपनें लोकनि जावें ॥ जो हरिचरित पढे उठि प्रात ॥ कृष्णदेवका निर्मल बात ॥ २८ ॥ सो दृढभक्ति कृष्णकी पावै ॥ जातैं कृष्णलोकमैं जावै ॥ हरि दारुक द्वारिका पाठ्यौ ॥ सो वसुदेव नृपतिपैं आयौ ॥ २९ ॥ भयो वियोग विकल अतिचित्त ॥ जेसै कृपण गएतें वित्त ॥ आंसु प्रवाह चले नैननितैं ॥ अति व्याकुल अटपट बैननितैं ॥ ३० ॥ सब यदुकुलको नास सुनायो ॥ अरु बलको निर्याण जनायो ॥ तिन दोनोंके चरणनि परे ॥ तब सारथी वचन उच्चरे ॥ ३१ ॥ यौं सुनिलोक तप्त सब भये ॥ करत विलाप प्रभासहि गये ॥ तहां जाइ हरिजी नहिं देषे ॥ तब वैकुंठ गए करि लेषे ॥ ३२ ॥ तब रोहिणि देवकि वसुदेव ॥ उग्रसेन राजा नरदेव ॥ हरि विजोगतें उपज्यौ सोक ॥ तातैं चहूं तज्यौ नरलोक ॥ ३३ ॥ रामकृष्णको इसो विजोग ॥ जातें मिठ्यौ देह संजोग ॥ बल युवती सब ले बलदेह ॥ अग्नि प्रवेश कियो अतिनेह ॥ ३४ ॥ वसुदेवहि ले षोडश नारी ॥ किय सह गमन चिता संवारी ॥ प्रद्युम्नहि जहांलौं जे ते ॥ तिनकी त्रियानि लिये सब तेते ॥ ३५ ॥ सबहिनकै अति कृष्णविजोग ॥ जातैं कर्‍यौ अग्नि संजोग ॥ हरिकी वधू जहांलौं जेती ॥ रुकमानि आदि सकल मिलि तेती ॥ ३६ ॥ हरिकौ रूप हृदेमें धर्‍यौ ॥ अग्नि प्रवेश सकल मिलि कर्‍यौ ॥ अर्जुन परमसखा हरिजीकौ ॥ कृष्णवियोग प्रहारकजीकौ ॥ ३७ ॥ तातें अर्जुन अति दुखपायौ ॥ कृष्णज्ञान तब हृदये आयौ ॥ गीता मांहि कह्यौ हरिज्ञान ॥ मिथ्या देह सत्य भगवान ॥ ३८ ॥ ऐसै बहुविधि ज्ञान विचार्‍यौ ॥ कृष्णवियोग शोक सबटार्‍यौ ॥ आप आपमैं मारे जे ते ॥

 अपनै बंधु ज्ञाति प्रिय ते ते ॥ ३९ ॥ तिनकौं जो पिंडादिक दाना ॥ मृतक क्रिया जेती विधि 
नाना ॥ सोई सों अर्जुन सब करि ॥ कृष्ण प्रीतितैं नहिं परिहरि ॥ ४० ॥ तब द्वारिका
 कृष्णबिनु भई ॥ सायर बोरि पलकमें लई ॥ केवल हरिजीके ग्रह जे ते ॥ त्यौंहि रहै
सकलही ते ते ॥ ४१ ॥ नितबिहार जहां हरिजीकौं ॥ सुमरत सुतन उधारणजीकौ ॥ मंगल
सकल मंगलनि केरौ ॥ त्रिभुवन सुखहोंवे नितचेरौ ॥ ४२ ॥ स्त्री बाल वृद्ध सब जेते ॥
मरत मरत उबरे केते ॥ ते अर्जुनहि दिली ले आए ॥ समाचार पांडवनि सुनाए ॥ ४३ ॥
तुमरे सकल पितामह जेते ॥ कृष्ण प्रयाणो सुनिकरि ते ते ॥ तुमहि वंशधर राजाकियौ ॥
मथुरा तिलक वज्रकों दियौ ॥ ४४ ॥ ते सब तजि उत्तरदिशि गए ॥ कृष्णहि सेइ कृष्णमय भए ॥
जो यह हरिजीको अवतार ॥ जामें कर्मरु गुणविस्तार ॥ ४५ ॥ तिनकौं कहैं सुने नित जोई ॥
सब पापनितैं छूटे सोई ॥ याविधि हरिजीके अवतार ॥ बालपनतें कर्म अपार ॥ ४६ ॥
लोकवेदमें प्रगटहि जेते ॥ गावैं सुनैंविचारै तेते ॥ तब ते लहैं परम आनंद ॥ मिलै कृष्ण छूटै
भवफंद ॥ ४७ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥यह हरिको अवतारमैं, तुमसौं कह्यौ सुनाइ ॥ याकौं
कहि सुनि सुमरि नर, नारायण मिलि जाइ ॥४८॥ ॥ चौपाई ॥ ब्रह्म निरीह निरंजन
स्वामी ॥ सकल लोकके अंतरजामी ॥ भक्तानि हेतधरे अवतार ॥ नाना भांति करै उद्धार ॥ ४९ ॥
तिनमें कृष्ण स्वयं भगवान ॥ ज्ञान क्रिया सब शक्ति प्रधान ॥ जिनकै गुणानि कहै शुकदेव ॥ 
सुनत हि तऱ्यौं परिक्षित देव ॥ ५० ॥ जिनको नामलिये भवनाहीं ॥ लेकरि राषै निजपद मांहीं ॥

ऐसें कृष्ण संतकौवित्त ॥ नमस्कार नित प्रभुकों नित्त ॥ ५१ ॥ तें अब संतदाससें नाम ॥ देहध-री जीवनके काम ॥ कृपानिधान भक्तिकरवावै ॥ अपनी शक्ति हृदयमैं ल्यावै ॥ ५२ ॥ ऐसी विधि भवदुःख मिटावैं ॥ अपनें परमहि पद पहुंचावैं ॥ कृष्णरूप तिन ज्ञान सुनायौ ॥ उद्धवजन निजपद पहुंचायौ ॥ ५३ ॥ सो ले कह्यौ संस्कृत ब्यास ॥ तातें होइन अर्थ प्रकास ॥ जो पंडित तिहिजानें सोई ॥ दूजो कदे न जाने कोई ॥ ५४ ॥ तातैं तिन अब क-रुणा कीनी ॥ मो सेवककों आग्यादीनी ॥ सब लोकनिके हित मनधारी ॥ मम उर ह्वै भाषा विस्तारी ॥ ५५ ॥ याकों वाचे सुनैं सुनावैं ॥ ध्यानकरैं उंचै स्वर्गावैं ॥ ते ते लहैं ज्ञान वैराग ॥ प्रेम भक्ति हरिको अनुराग ॥ ५६ ॥ प्रेम प्रवाह मगन नितरहैं ॥ भव दावानल कदे न दहैं॥ एसें ह्वै करि ब्रह्मसमावैं ॥ तजि आनंद जगत नहिं आवैं ॥ ५७ ॥ कबहूं करै कामना कोई ॥ यातैं लहै सकल सो सोई ॥ तातें जे जे होइ सकाम ॥ अरु जे बडभागी निहकाम ॥ ५८ ॥ तिन सबनीकौं भाषा एह ॥ भुक्ति अरु मुक्तीको गेह ॥ तातैं यासौं कीजैं प्रीती ॥ यह है सब संतनकी रीती ॥ ५९ ॥ संवत सोलह शत बांणवा ॥ ज्येष्ठशुक्ल षष्ठी कुजदिवा ॥ संत दास गुरु आज्ञादीनी ॥ चतुरदास यह भाषाकीनी ॥ ६० ॥ दोहा ॥ परमज्ञान परगट कियौ, ममघट ह्वै निजदेव ॥ ते मेरे उर नितवसें, संतदास गुरुदेव॥ ६१ ॥ ॥ कुंडलिया ॥ चतुरदास कृत ग्रंथ यह ॥ सोध्यो श्रीधरसाम ॥ अब चम्पक सोधन कियो

पीताबरसें नाम ॥ पीताबरसें नाम रामको मारग देख्यौ ॥ लघु गुरु अच्छर सोधि बोधिकें छंदसु पेख्यो ॥ अपभ्रंश जे शब्द शुद्ध संस्कृत कियसतुर ॥ जांहि पेखि ह्वै लोक गोप शब्दनिमें चतुर ॥ १ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणएकादशस्कंधेश्रीशुकपरीक्षितसंवादेभाषायांश्रीकृष्णप्रयाणोनाम एकात्रिंशतमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥

हरिप्रसाद भगीरथजीने नेटिव ओपिनियन प्रेसमें छपवाकर प्रसिद्ध किया.

हरिप्रसाद भगीरथजी,
कालकादेवीरोड–रामवाडी
मुंबई.

Printed by Vinayak Balkrishna Paranjpe at the Native Opinion Press No. 2, Angria's Wadi, Girgaon, Bombay and published by Vrajavalabha Hariprasad Bhagiasthaji, House No- 331, Kalkadevi Road, Bombay No. 2

# महाभारतभाषा।

## सबलसिंह-चौहानकृ-१८-पर्व.

भगवान् वेदव्यासप्रणीत विश्वविख्यात श्रीमहाभारतका पाठकोंको परिचय दिलाना जगत्साक्षी श्रीसूर्यनारायणको दीपककी सहायतासे दूसरोंको दिखानेकी चेष्टाके समान ही हास्यास्पद नहीं, बरन्, उससेभी बहुत बढकर है, अतएव वैसा न करके केवल इतना कहे विना भी हमसे रहा नहीं जाता कि इतिहासके नामसे अथवा पञ्चम वेद कहकर पुकारा जानेवाला यही विराट् ग्रन्थ हमारा सच्चा इतिहास और हमारी उच्चताका सच्चा नमूना है ; कि जिसके गर्भमें भगवद्गीताके समान अनेक अनन्त अनुपम रत्न भरे हुए हैं। हमारी ऐसी गिरी दशामें भी जबतक हमारे ऐसे ग्रन्थ जगतीमें जाग्रत् हैं तबतक हमसे आगे जानेकी कौन कहे, हमारी बराबरी करनेको भी किसीको साहस नहीं होसकता। यद्यपि हमने अपना मार्ग छोड़ दिया है और इधर उधर भटक रहे हैं तथापि अनेक खाई खन्दकोंमें बेरबेर ठोकरें खाते रहने पर भी हमें अबतक अपने घरका रास्ता नहीं मिला, इससे हम बेहद बरबाद ही नहीं हो चुके हैं; प्रत्युत दिनबदिन बरबाद ही होते जारहे हैं; तथापि हम तबतक बिलकुल निराश नहीं हैं, जबतक हमारा सच्चा पथदर्शक महाभारत महीमण्डलमें विद्यमान है। शोक है कि उस देववाणीसे हम बहुत दूर हैं कि जिसकी बदौलत हमारे पास दैवी संपत्तिका भण्डार भराहुआथा और हम देव कह कर पुकारे जाते थे। इसीसे महाभारतरूपी कल्पतरुकी छायामें बैठे रहनेपरभी उसके प्रभावको न जानकर आज हम दरिद्रजनित असह्य कष्ट सह रहे हैं। हमारी आशाको किसी अंशमें पूरी करनेके लियेही श्रीमान् सबलसिंह चौहानने तुलसीकृत रामायणके ढँगपर दोहा चौपाइयोंमें संक्षेपसे संपूर्ण महाभारतका ऐसे ढँगपर अनुवाद किया है कि जिससे सर्व साधारण महाभारतके असाधारण गूढ रहस्योंको समझलेनेमें समर्थ होसकेंगे। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके यद्यपि अन्यत्र भी अनेक संस्करण हुए हैं तथापि यह उन सबसे विलक्षण है यह बात विचक्षण पाठकगण सहजमें जान सकेंगे। इसकी विलक्षणताके कारण इसकी शुद्धता, छपाईकी सफाई, टाइपकी बड़ाई व निकाई और जिल्दकी सुघराई आदि अनेक होनेपर भी आदिमें दिया हुआ वक्ता व्यास देव और लेखक गणेशदेवका इस रंगोंवाला रंगीन चित्र विशेष चित्ताकर्षक है कि जिसके देखते ही दर्शकके हृदयमें एक विशेष भावका अङ्कुर उदय होता है। की. रु. ३॥ डा. ।। तथा रफ कागद की. रु. ३ डा. ।।

पुस्तक मिलनेका ठिकाणा.

हरिप्रसाद भगीरथजी, कालकादेवी रामवाडी-मुंबई.

इति श्रीमद्भागवतएकादशस्कंधभाषा

